इकाई–1 : रीतिकालीन काव्य साहित्य

संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 रीतिकाल
  1.2.1 रीतिकाल का नामकरण और उसका औचित्य
  1.2.2 रीतिकाल का सीमा निर्धारण
  1.2.3 रीतिकाल –प्रमुख प्रवर्तक –केशव, चिन्तामणि
1.3 रीतिकालीन प्रेरक परिस्थितियाँ
  1.3.1 राजनीतिक
  1.3.2 सामाजिक
  1.3.3 सांस्कृतिक
  1.3.4 साहित्य और कला की स्थिति
1.4 रीतिकालीन कविगणों की काव्यधाराएं
  1.4.1 रीतिबद्ध
  1.4.2 रीतिमुक्त
  1.4.3 रीतिसिद्ध
1.5 रीतिकालीन प्रवृत्तिगत विश्लेषण
  1.5.1 श्रृंगाररस की प्रधानता
  1.5.2 आचार्यत्व प्रदर्शन
  1.5.3 प्रेम की प्रधानता
  1.5.4 भक्ति और नीति की धारणा
  1.5.5 भावना प्रधानता प्रेम का पक्ष
  1.5.6 अलंकरण के प्रति पक्ष
  1.5.7 प्रकृति निरूपण संयोग वियोग पक्ष
  1.5.8 नारी चित्रण
  1.5.9 शिल्प सौन्दर्य
  1.5.10 कृत्रिम व्यापारों का परित्याग
  1.5.11 अनुभूति और रस
  1.5.12 काव्यरूप
  1.5.13 वीर रस एवं हास्य रसात्मक रचनाएं
  1.5.14 बिम्बात्मकता
  1.5.15 ब्रज की प्रधानता
1.6 रीतिधारा की प्रमुख विशेषताएँ
  1.6.1 रीतिबद्ध काव्यधारा
    1.6.1.1 आचार्यत्व के प्रति आकर्षण
    1.6.1.2 श्रृंगार को महत्व
    1.6.1.3 नारी के दैहिक सौन्दर्य की अधिकता
    1.6.1.4 कवित्व शक्ति की अवहेलना
    1.6.1.5 मौलिक चिन्तन का अभाव
    1.6.1.6 प्रकृति वर्णन
    1.6.1.7 आश्रयदाता की प्रशंसा
    1.6.1.8 नीति और भक्ति
    1.6.1.9 विभिन्न शैलियों का प्रयोग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.6.2 रीतिसिद्ध कवियों की विशेषताएँ
1.6.3 रीतिमुक्त काव्यधारा
1.6.3.1 परम्परामुक्त मार्ग का अनुसरण
1.6.3.2 व्यक्तिप्रधान काव्य
1.6.3.3 वेदनायुक्त प्रेम दर्शन
1.6.3.4 प्राचीन काव्य परम्पराओं का परित्याग
1.6.3.5 भावात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति
1.6.3.6 सहज–निश्छत्र भाषा का प्रयोग
1.7 निष्कर्ष

1.0 प्रस्तावना

"प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ के जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, अतः यह निश्चित है कि चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।" (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास) जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनैतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है। इस कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का दिग्दर्शन भी साथ साथ आवश्यक होता है। इस दृष्टि से रीतिकाल का पूर्ण विवेचन करने में यह बात अवश्य ध्यान में रखनी होगी कि किस विशेष समय में लोगों में किस रुचि विशेष का संचार होने लगा।

हिन्दी काव्य अब पूर्ण प्रौढ़ता पर पहुँच चुका था। संवत् 1348 में कृपाराम ने रस निरूपण किया। उसी समय के लगभग चरखारी के मोहनलाल मिश्र ने 'श्रृंगार सागर' नामक एक ग्रन्थ श्रृंगार के सम्बन्ध में लिखा। नरहरि कवि के साथी कवि करसेन ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' नामक तीन ग्रन्थ अलंकार सम्बन्धी लिखे रसनिरूपण और अलंकार निरूपण हो जाने पर केशव ने काव्य के सभी अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक् समावेश सर्वप्रथम आचार्य केशव ने ही किया था। किन्तु हिन्दी में रीति ग्रन्थों की अविरल और अखण्डित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्रायः पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।

हिन्दी रीति ग्रन्थों की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली। अतः रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से माना जाना चाहिये। उन्होंने संवत् 1700 के आस–पास 'काव्य विवेक', 'कविकुलकल्पतरु' और 'काव्यप्रकाश' तीन ग्रन्थ लिखकर काव्य के सभी अंगों का सुन्दर निरूपण किया।

जब परिस्थितियाँ बदलती हैं तो मानव की मनोदशा भी स्वतः ही परिवर्तित होने लग जाती है, परिणामस्वरूप साहित्य भी उसी परिवर्तित सोच के अनुसार नई राह पकड़ लेता है। भक्ति के पश्चात् विकसित श्रृंगार भाव से पुष्ट रीति साहित्य इसी नियम से सामने आया है। इस साहित्य को पढ़कर स्पष्ट होता है कि इस काल के कवि सच्चे अर्थों में यौवन और जीवन के भौतिक पक्ष के कवि थे। अपने समय से प्रेरित और पुष्ट होकर रीति साहित्य पाण्डित्य–प्रदर्शन और कवि–कर्म साथ–साथ निभाता रहा है। ..... रीतिबद्ध और रीति मुक्त दोनों वर्गों के कवियों का धरातल अलग–अलग रहा है। रीतिबद्ध कवियों ने शास्त्रीय परम्परा को आधार मानकर काव्य–रचना की तो रीति मुक्त कवि स्वनिर्गित स्वच्छन्द मार्ग पर चले। रीतिबद्धता में कविता प्रयत्नज और आचार्यत्व के रंग में रंगी हुई लगती है तो रीतिमुक्त होकर वह सहज, स्वतःस्फूर्त और हृदय से फूटी हुई लगती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य काल को 'रीतिकाल' माना है और इसकी अवधि संवत् 1700 वि. से सं. 1900 वि. तक स्वीकार की है, कुछ विद्वान इस अवधि को 'श्रृंगार काल' कहते हैं। किन्तु आचार्य रामचन्द्र ने प्रवृत्तिगत आधार पर उपरोक्त नाम दिया है।

निःसंदेह रीतिकाल के कवि अत्यधिक प्रतिभा सम्पन्न एवं कलम की शक्ति के मालिक थे। उनमें अपरिमित रचना सामर्थ्य या भावों की गहराई और सूक्ष्मता की कमी नहीं थी। शब्द की क्षमता व अर्थ की गुरुता को वे अच्छी प्रकार से समझते थे। उनको शब्द गुणों की प्रकृति की पहचान थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस बात को माना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कि प्रतिभाएँ दो प्रकार की होती हैं– कारयित्री एवं भावयित्री। कवि में कारयित्री प्रतिभा होती है, उसी के बल पर वह नवीन उद्भावनाओं को प्रस्तुत करता है। भावयित्री भावना समीक्षक में होती है, जिसके बल पर वह काव्य की अन्तः प्रकृति का विश्लेषण और प्रमुख विशेषताओं का उद्घाटन करता है। किसी भी काव्य शास्त्र आचार्य में भावयित्री प्रतिभा होनी चाहिये। दोनों प्रतिभाओं का सहज मणि–कांचन संयोग तो कभी किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त हो सकता है किन्तु दोनों में से एक को अपने गुण व स्वभाव के आधार पर कोई भी व्यक्ति विकसित कर सकता है। हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन रचनाकारों ने कारयित्री प्रतिभा के बल पर कवि भी बनना चाहा और भावयित्री प्रतिभा विकसित करके आचार्य भी। इसी प्रपंच के कारण उनका कवि पक्ष कमजोर प्रमाणित हुआ और आचार्य पक्ष भी।

हिन्दी के रीतिकालीन रचनाकारों को दोहरी भूमिका निभानी पड़ती थी। वे लक्षण भी अपनी ओर से प्रस्तुत करते और उनके उदाहरण के रूप में कविता भी स्वयं लिखते थे जो उनके लिये एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी का काम था। जिसे उन्होंने बखूबी निभाया और निभाने का भरसक प्रयास किया था फिर भी उसमें कुछ कमी रह गई तो इसमें उनका दोष नहीं था। वैसे उक्त कार्य से उन्होंने अपनी कमियों को नहीं दर्शाया, बल्कि साहस का परिचय दिया और बड़ी कुशलता के साथ उनके उदाहरणों में काव्य शक्ति का प्रदर्शन किया गया था।

वैसे संस्कृत रीतिकाव्य के प्रभाव से ही हिन्दी रीति काव्य का आविर्भाव हुआ। साहित्य के इतिहासकारों ने हिन्दी के प्रथम रचनाकार के रूप में पुष्पदन्त या पुष्यदन्त का नामोल्लेख किया इससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी में भी रीति ग्रन्थ लेखन की प्रवृत्ति उतनी ही पुरानी है जितनी कि संस्कृत साहित्य की। आदिकाल के संधिकाल में कवि विद्यापति ने भी लक्षण–ग्रन्थ लिखे। भक्तिकाल में कवि अब्दुल रहीम खानखाना जो संत तुलसीदास के परम मित्र थे। उन्होंने तुलसी की भक्ति धारा के प्रवाह से 'बरवै नायिका भेद' नामक लक्षण ग्रन्थ लिखा।

रीतिकाल की काव्यशास्त्रीय लक्षण ग्रन्थ लिखने का श्रीगणेश काफी पहले से हो चुका था और इसकी समाप्ति भी 1900 वि. में ही नहीं हो गई थी इसके बाद भी रीति ग्रन्थ लिखे जाते रहे।

आचार्य बलदेव उपाध्याय, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य विश्वेश्वर, डॉ. नगेन्द्र, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्याम सुन्दर दास, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. भोला शंकर व्यास, डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित, डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा, स्वामी सुरजन दास आदि रचनाकारों ने काव्यशास्त्र के अंगों पर आधुनिक शैली में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। अतः हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि रीतिकाल की सीमावधि के बाद रीति ग्रन्थ लेखन की प्रवृत्ति समाप्त हो गई थी। सोचने–समझने के ढंग बदलते हैं तो व्याख्या की शैली बदल जाती है और तुलनात्मक पद्धति का सहारा लिया जाता है और तब तत्त्व निर्धारण की प्रवृत्ति विकसित की गई साथ ही निर्णय देने में वैयक्तिक रुचि को नहीं, तथ्यपरक दृष्टि को आधार बनाया गया।

रीतिकाल प्रवृत्तियों के विषय विचार का तरीका अब वह नहीं है जो प्रारम्भिक साहित्यकारों के द्वारा अपनाया गया। प्राचीन दृष्टि प्राचीन ग्रन्थों में सही थी किन्तु अब वह दृष्टि पुरानी हो गई और उनके आधार पर लिये जाने वाले निष्कर्ष भी यह अपेक्षा करते हैं कि उन पर पुनर्विचार किया जाये। इस संदर्भ में दो तथ्य विचारणीय हैं – सं. 1700 से 1900 वि. की कालावधि का साहित्य भक्तिकाल के साहित्य का उत्तरवर्ती है। इसमें भाषा अत्यन्त संश्लिष्ट होती चली गई। घनानन्द, सेनापति, पद्माकर और जगन्नाथ दास रत्नाकर की भाषा ही भक्तिकाल की भाषा से उत्कृष्ट है। सौन्दर्य और अर्थ गौरव दोनों ही दृष्टियों में विशिष्टता स्पष्ट रूप से पहचानने में आती है। स्वस्थ एवं सामंजस्यवादी दृष्टि को अपनाकर ही रीतिकालीन काव्य का अध्ययन किया जा सकता है। दुराग्रह भरी दृष्टि से इस काव्य को नहीं पढ़ा जा सकता है। श्रृंगार को रसराज माना जाता है और जीवन के साथ उसका गहरा सम्बन्ध है और प्रवृत्तिगत विस्तार भी अधिक है। श्रृंगार का स्थायी भाव रति है जो अनेक भावों में जीवन में व्याप्त है। भक्ति, वात्सल्य, मैत्री आदि के मूल में रति भाव विद्यमान है। जब श्रृंगार की व्यापकता के प्रति अध्येताओं ने उदासीनता बरती तो भक्ति रस, वात्सल्य रस, प्रकृति रस आदि की कल्पनाएँ की जाने लगी। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि उत्तर मध्ययुगीन काव्य को एक स्वस्थ और सम्पूर्ण दृष्टि से अध्ययन का विषय बनाया जाये और उसकी सामाजिकता और रससिक्तता के विषय में अधिक युक्तिसंगत धारणाएँ विकसित की जाये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.1 उद्देश्य

यह इकाई रीतिकाव्य से संबंधित है जो मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। इसमें रीति काव्य प्रवृत्ति की विशेषता बताते हुये प्रमुख रीतिकवियों का परिचय दिया गया है। तत्पश्चात काव्यशास्त्र आलोचना सम्प्रदायों का परिचय दिया गया है। इसे पढ़ने के बाद आप–

- रीतिकाव्य का समय, परिस्थितियां और नामकरण की जानकारी दे सकेंगे। रीतिकालीन रीतिबद्ध, रीतिमुक्त, रीतिसिद्ध काव्यधाराओं का परिचय और प्रवृत्तियां समझा सकेंगे।
- प्रमुख रीतिकवियों के काव्य से परिचय पाकर उनसे संबंधित रचनाओं की व्याख्या कर सकेंगे।
- रीतिकाव्य और काव्यशास्त्रीय विभिन्न मानदण्डों की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकेंगे।
- विक्रमी संवत और इसवी सन का अन्तर समझा सकेंगे।

1.2 रीतिकाल

भक्त कवियों ने जन–जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर परम्परा से चले आ रहे काव्य रूपों और काव्यादर्शों को ग्रहण कर नवीन मार्ग का सृजन किया। उनका प्रभाव अत्यन्त व्यापक था। कृष्ण–भक्त कवियों ने तो भगवान की प्रेम लीलाओं का वर्णन करते समय लौकिकता का समावेश किया है। नन्ददास ने रसमंजरी में नायिका भेद तक का निरूपण किया है। भक्त कवियों ने रीति कवियों द्वारा गृहीत कृष्ण को रस का पोषक माना है साथ ही संस्कृत ग्रन्थों का आश्रय भी ग्रहण किया है।

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल धार्मिक या भक्तिकाल का ह्रास–युग है। धार्मिक आंदोलन की पवित्रता तो सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही समाप्त प्रायः हो गई थी। प्रेम और ऐहिकता पर श्रृंगार के प्राधान्य से वासना को प्रश्रय मिला। राधा और कृष्ण का लीला रूप अब कवित्त और सवैयों में रस, अलंकार और नायक–नायिका रूप में आने लगा। वास्तव में हिन्दी का रीति साहित्य संस्कृत रीति साहित्य, वर्तमान 'सतसई', संस्कृत के भक्ति परक मुक्तकों और शास्त्र की मिली–जुली परम्परा का विकास है। रस, अलंकार, काव्यशास्त्र आदि का प्राधान्य होने के कारण से ही यह रीति काल के नाम से पुकारा जाता है।

इस परिवर्तन के कारण जीवन की तत्कालीन परिस्थिति में पाये जाते हैं। मुगल सम्राट अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में हिन्दी प्रदेश में चारों ओर सुख, शान्ति और समृद्धि थी, चारों ओर वैभव था। लोगों के पास अपार धन था। युद्ध हिन्दी प्रदेश से काफी दूर रहते थे। उस समय तक मुस्लिम अत्याचार भी प्रायः समाप्त हो चले थे। उन्होंने पूरी तरह से अपने आप को भारत का बना लिया था। अतः ऐसे शान्तिपूर्ण वातावरण में दरबारी जीवन का श्रृंगार पूर्ण हो जाना स्वाभाविक है। उस समय राजा ही सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र बन गये थे और वे ही कला के कद्रदान बन गये थे। साहित्य मनोदशा का मुक्त उद्‌गार है। परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण मानव मनोदशा स्वतः ही परिवर्तित होती रहती है। यही कारण है कि साहित्य भी उसी परिवर्तित मनोदशा के अनुरूप अपना रूप–स्वरूप बना लेता है। इन्हीं परिवर्तित मनोदशाओं के साथ साहित्य परम्परा का सामंजस्य स्थापित करना साहित्य का इतिहास कहलाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक लम्बी परम्परा है। सुविधा के लिये इस सुदीर्घ परम्परा को विद्वानों ने आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में विभाजित कर दिया है।

पं. रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहा है और इसको संवत् 1700 वि. से संवत् 1900 वि. तक माना जाता है। कुछ विद्वानों ने इस काल को 'श्रृंगार काल' भी कहा है। शुक्लजी ने रीतिकाल नाम प्रवृत्तिगत आधार पर दिया है। संस्कृत सहित्य में सं. 600 वि. से 1700 वि. तक लक्षण ग्रन्थों की रचना हो रही थी। काव्यशास्त्र के वामन, दण्डी, भामह, रुद्रट, कैय्यट, मम्मट, क्षेमेन्द्र, कुन्तक, विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों ने अपने काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना इसी काल में की। हिन्दी साहित्य में काव्य शास्त्र सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ लिखने की परम्परा संस्कृत साहित्य के प्रभाव के कारण ही चली।

1.2.1 रीतिकाल का नामकरण

रीति का आधुनिक अर्थ शैली माना जाता है। संस्कृत साहित्य में आचार्य वामन ने रीति को 'काव्य की आत्मा' घोषित किया है। हिन्दी साहित्य का रीतिकाल दो सौ वर्षों की लम्बी अवधि को अपने में समेटे हुए है। इन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वर्षों में जो साहित्य रचा गया उसमें जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। तत्कालीन साहित्य को पढकर स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस काल के कवि सच्चे अर्थों में जीवन के भौतिक पक्ष और यौवन के कवि थे।

यह लोक साहित्य का समय भले ही न हो परन्तु भौतिकवादी साहित्य का काल अवश्य था। अपने समय की परिस्थितियों से प्रेरित और पुष्ट होकर रीतिकालीन साहित्य पाण्डित्य प्रदर्शन और कवि कर्म दोनों साथ–साथ निभाता रहा। जिसे हम रीतिकाल कहते हैं उसके संदर्भ में अनेक समस्याएँ हमारे सामने आती हैं। इस काल के नामकरण, सीमा निर्धारण और प्रवर्तन को लेकर भी अनेक मत–मतान्तर प्रचलित हैं। आचार्य शुक्ल ने इस काल को रीतिकाल कहा है तो मिश्र बन्धुओं ने अलंकृत काल। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे श्रृंगार काल कहना उचित समझा। डॉ. रसाल ने उसे कथाकाल कहा। इसी संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि "यहाँ साहित्य को गति देने में अलंकार शास्त्र का ही जोर रहा है जिसे उस काल में रीति, कवित्त–रीति, सुकवि–रीति कहा जाता था, संभवतः इन शब्दों से प्रेरणा पाकर शुक्ल जी ने इस श्रेणी की रचनाओं को रीतिकाव्य कहा है।" इस मत से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य शुक्ल ने इसके नामकरण में बाह्यांग विधान को अपनी दृष्टि में रखा है। संस्कृत काव्य शास्त्र में रीति शब्द काव्यांग विशेष का सूचक रहा है। आचार्य वामन ने 'विशिष्टपदरचनारीतिः' और 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। हिन्दी आचार्यों ने रीति का प्रयोग कवित्त–रीति, कवि–रीति, काव्यरीति, अलंकार–रीति, रसरीति, मुक्तक–रीति, वर्णन–पंथ और कवि पंथ आदि के लिये किया है। सामान्यतः रीति शब्द काव्य रचना की पद्धति के लिये प्रयुक्त हुआ है।

रीतिकाल के लिये श्रृंगारकाल नाम उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि भले ही इस काल के कवियों की रुचि श्रृंगारिकता की ओर अधिक रही हो तब भी ऐसे कितने ही कवि थे जो इस रस में रुचि नहीं रखते थे। फिर नीति, भक्ति और वीर भावना को आधार मानकर रचना करने वाले कवि भी कम नहीं थे। अतः श्रृंगारकाल में अव्याप्ति दोष है।

उत्तर मध्यकाल नामकरण का औचित्य

इस काल को कला काल अथवा अलंकार काल कहना भी उचित नहीं होगा क्योंकि इनमें से किसी एक का नाम स्वीकार कर लेने से इस काल का भाव पक्ष छूट जाता है। यह माना जाता है कि उस काल के कवि कला शिल्प के कवि थे, पाण्डित्य प्रदर्शन में पूरी–पूरी रुचि रखते थे, फिर भी यह सत्य है कि जो ऐसे थे, उनका भी काव्य भावोत्कर्ष का अच्छा ही नहीं बल्कि श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस काल को अलंकार काल कहना तो पूरी तरह अनुपयुक्त है। रीतिकाल नामकरण के संदर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में अनेक कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने रीतिपंथ की अवहेलना करते हुए काव्य रचनाएं की हैं। ऐसी स्थिति में रीतिकाल नाम भी चिन्तनीय हो जाता है। वास्तविकता यह है कि काव्य के बहिरंग विधान पर ध्यान देने के साथ–साथ इस काल के रसों में श्रृंगार को प्रमुखता प्राप्त हुई है। श्रृंगार के अतिरिक्त भक्ति, नीति और वीर जैसे भावों की भी पर्याप्त रचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। अतः श्रृंगारकाल, अलंकारकाल और कलाकाल जैसे नाम तो एकांगी प्रतीत होते हैं ऐसी स्थिति में आचार्य शुक्ल जी द्वारा दिया गया नाम रीतिकाल ही अधिक समीचीन होता है। "रीति" शब्द भले ही व्यापक अर्थ वाला है किन्तु इसमें भक्ति, नीति और वीर भावों का समावेश नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में जब तक कोई ऐसा शब्द सामने नहीं अये जो सबका द्योतक हो अथवा सभी स्थितियों को अपने में समेट ले तब तक इसे 'उत्तर मध्यकाल कहना' अधिक उपयुक्त होगा। मेरी दृष्टि में यह नाम इसलिये भी अधिक उचित लगता है कि इससे हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के पूर्वार्द्ध से इसका अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। पूर्वमध्यकाल में जैसे भक्ति और नीति की प्रधानता रही है, वैसे ही उत्तर मध्यकाल में श्रृंगार, वीर की प्रधानता रही है।

1.2.2 रीतिकाल की सीमा का निर्धारण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सं. 1700–1900 वि. तक की कालावधि को उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल की संज्ञा दी है। इस काल की एक यह समस्या है कि इसकी सीमा का निर्धारण कैसे किया जाये? क्योंकि साहित्य के इतिहास में किसी भी काल विशेष की कोई निश्चित पार्थक्य रेखा खींचकर विशेष प्रकार की प्रवृत्तियों को अलग नहीं किया गया है। अनेक प्रवृत्तियाँ साहित्य में एक साथ चलती रही हैं, इन्हीं में से किसी एक या दो प्रवृत्तियाँ किसी काल विशेष में तीव्र रूप धारण कर लेती है। जब एक प्रवृत्ति प्रधान हो जाती है तब दूसरी स्वतः ही गौण हो जाती है। हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में भक्ति भावना प्रमुख थी, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उस समय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

श्रृंगार की प्रवृत्ति थी ही नहीं। यदि ध्यान से देखा जाये तो भक्तिकाल में भी श्रृंगारिकता खुलकर सामने आई थी। अनेक कवि राधा और कृष्ण के माध्यम से श्रृंगार के विलासितापूर्ण सरस और उत्तेजक चित्र प्रस्तुत करने लगे यह स्थिति रीतिकाल के लिये प्रेरक बिन्दु बनकर सामने आई है।

1.2.3 रीतिकाल : प्रमुख प्रवर्तक

इस संदर्भ में दो प्रकार के मत प्रचलित हैं– विद्वानों का एक वर्ग रीतिकाल का प्रवर्तक आचार्य केशव को मानता है और दूसरा आचार्य चिन्तामणि को। आचार्य शुल्ल ने केशव को श्रेष्ठ आचार्य तो माना है, किन्तु प्रवर्तक नहीं माना है। उन्होंने श्रृंगारकाल के मुख्य प्रवर्तक का ताज आचार्य चिन्तामणि को पहनाया है। उनका इस संदर्भ में कथन है कि 'हिन्दी में रीति–ग्रन्थों की अविरल और अखण्डित परम्परा का प्रवाह केशव की कविप्रिया के पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श लेकर, केशव का आदर्श लेकर नहीं। ..... हिन्दी रीति ग्रन्थों की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली। अतः रीति काव्य परम्परा का आरम्भ इन्हीं से मानना चाहिये। आचार्य केशव को श्रृंगारकाल का प्रवर्तक न मानने के पक्ष में आचार्य शुक्ल ने तीन कारण प्रस्तुत किये हैं– रीति की अखण्ड परम्परा का केशव के पचास वर्ष बाद चलना, परवर्ती कवियों द्वारा भिन्न आदर्श को अपनाना और केशव का भक्तियुग में पड़ना।

1.3 रीतिकालीन प्रेरक परिस्थितियाँ

किसी भी भाषा अथवा देश, काल विशेष के साहित्य के सम्यक् मूल्यांकन के लिये सर्वप्रथम यह जानकारी आवश्यक है कि जिस समय सम्बन्धित साहित्य लिखा गया, उस समय परिस्थितियाँ किस प्रकार की थीं। इस दृष्टि से यदि रीतिकाल का मूल्यांकन करना है तो उसकी प्रेरक परिस्थितियों को जान लेना आवश्यक है। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि रीतिकाव्य जिस रूप में उपलब्ध है, उसके मूल में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा कला एवं साहित्यपरक परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ रहा है–

1.3.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल तथा रीतिकाल जिन परिस्थितियों में विकसित होकर सामने आया, वे उस समय की वास्तविकता को अपने में समेटे हुए थी। ध्यान देने पर स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि उस समय सर्वत्र अव्यवस्था फैली हुई थी। मुगल साम्राज्य के वैभव का सूर्य अस्तोन्मुख दिशा की ओर तेजी से बढ़ता चला जा रहा था। सम्पूर्ण देश युद्ध और विप्लव का प्रांगण बना हुआ था। राजनैतिक अधःपतन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी, औरंगजेब के बाद गिरते हुए मुगल साम्राज्य के विशाल भवन को संभालने वाला कोई नहीं था। नादिरशाह और अब्दाली के आक्रमणों ने इस विनाशकारी अव्यवस्था को और अधिक गति प्रदान की। सामन्तशाही जर्जर अवस्था में थी किन्तु जनता को दलित और मर्दित करने में नहीं चूक रही थी। औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता से हिन्दू वर्ग कमजोर हो गया था और मुसलमान वर्ग विलास में डूबे रहने के कारण अपनी शक्ति को खो चुका था। ऐसी स्थिति में नागरिकों की औसतन स्थिति संतोषजनक नहीं थी। मेहनतकश किसान अच्छी पैदावार करते थे, किन्तु उनको दो समय की रोटी भी चैन से मयस्सर नहीं हो पाती थी। यह सम्पूर्ण समय मुगल साम्राज्य के ह्रास, हिन्दू शक्तियों के उत्थान तथा पतन और अंग्रेजी शक्तियों के क्रमिक विकास का इतिहास है। इस संदर्भ में डॉ. महेन्द्र कुमार ने लिखा है कि "जहाँ तक प्रदेशों का प्रश्न है, रीतिकालीन रचना के क्षेत्र – अवध, राजस्थान और बुंदेलखण्ड की कथा भी ऐसी ही है। अवध के विलासी शासकों का अन्त भी मुगल साम्राज्य के समान ही कारुणिक रहा। राजस्थान में भी विलास और बहु पत्नी प्रथा इतनी बढ़ गई कि औरंगजेब के बाद राजपुरुष कुचक्रों, षड़यंत्रों व आन्तरिक कलह का शिकार बन गये थे और वे इतने निर्वीर्य हो गये थे कि पतनोन्मुख मुगलों से अपने पुराने गौरव और राज्य को भी प्राप्त न कर सके। बुन्देलों ने अवश्य ही मराठों के साथ लाभ उठाने का प्रयास किया किन्तु राजपूतों के थोथे अहंकार एवं पारस्परिक विद्वेष के कारण सफलता प्राप्त करने में असफल रहे।

1.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ

सम्पूर्ण देश पर युद्ध के काले बादल मण्डरा रहे थे, आये दिन विप्लव की आग जनसाधारण को अपनी भभकती हुई ज्वाला में भस्मसात् करने की स्थिति बना रही थी। प्रायः नित्य प्रति युद्धों की चोट सहते रहने के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कारण भारतीय जनता निष्प्राण हो गई थी और उनका व्यक्तित्व पददलित होता हुआ क्षीण प्रायः हो गया था। सर्वत्र अराजकता फैल चुकी थी और समुचे देश में ठगों, चोरों, डाकुओं और युद्ध विचारक लोगों का बोलबाला बन चुका था। समाज की आत्मा संकुचित बन चुकी थी। दूर–दूर तक नव जागृति व नव–चैतन्य की किरणें दिखाई नहीं दे रही थी। कवि और कलाकार बड़े–बड़े प्रासादों में, शक्तिशाली लोगों की छत्र–छाया में सरस्वती की वीणा पर अपनी ऊँगली चलाये जा रहे थे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् इन कलाकारों को छोटे–छोटे राजाओं और नवाबों का आश्रय लेने के लिये विवश होना पड़ गया था। मुगल सल्तनत अपने विलास और वैभव के लिये सर्वाधिक प्रसिद्ध रही है। रीति काव्य की दूरियाँ शाही हरम के लिये बुद्धिनी का काम करने वाली स्त्रियों का ही एक रूप थी। विलास भावना और श्रृंगारिकता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। वासना के प्रबल प्रवाह ने देश के संयम को बुरी तरह झकझोर दिया था। हिन्दुओं में जाति भेद की भावना सिर उठाने लग चुकी थी ऐसे राजनैतिक और सामाजिक पतन के युग में देश की नैतिकता भला कैसे सुरक्षित रह सकती है, परिणामतः सर्वत्र अनैतिकता हावी हो चुकी थी और जो सदाशयता थी वह लुप्त हो चुकी थी और पवित्रता तो न जाने कहाँ छुप कर अपनी अंतिम साँसें ले रही थी।

जब किसी देश का समाज वासना के कीचड़ में डूबता जा रहा हो, अनैतिकता हावी होती जा रही हो, तब उस देश में धर्म भी कैसे सुरक्षित रह सकता है? धर्म का आधार मंदिरों और मठों में भी नहीं रह गया था। मंदिरों और मठों की देव दासियाँ भगवान की पूजा के साथ–साथ भक्तों की सेवा के लिये अपना शरीर भी अर्पित कर अपनी वासना को तृप्त करती थी। ऐसी धार्मिक विपन्नता के वातावरण में जातीय बुद्धि का धरातल निरन्तर नीचे गिरता जा रहा था। अतः हम कह सकते हैं कि रीतिकालीन साहित्य की श्रृंगारिकता और कला, रस, अलंकार आदि के पूर्ण विकास के लिए उस समय की सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ पूरी तरह से अनुकूल थी। कृषक और मजदूर वर्ग पूरी तरह शोषण के चक्र में फंस चुका था। जनसाधारण गरीबी के दलदल में पूरी तरह फंस चुका था, शासक वर्ग बिना किसी श्रम के ही सम्पन्न होते जा रहे थे। ऐसी स्थिति में यदि लोग भाग्यवादी अथवा नैतिक मूल्यों से रहित हो तो यह कोई आश्चर्य नहीं था। कार्य सिद्धि के लिये भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति भी निरन्तर परवान चढती जा रही थी।

1.3.3 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों की भाँति इस युग की सांस्कृतिक स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय थी। अकबर, शाहजहाँ और जहाँगीर की उदारतावादी नीति तथा संतों और सूफियों के उपदेशों के फलस्वरूप हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों के पास आने का या सामंजस्य का जो प्रयास किया गया था वह औरंगजेब की कट्टरता के कारण समाप्त हो गया था। विलास वैभव का खुला प्रदर्शन होने लगा तथा इसी विलास के कारण धार्मिक भावों का दृढ़ता से पालन करना मुश्किल हो गया था। मंदिरों में ऐश्वर्य और भोग–विलास की खुले आम लीला चलने लगी थी। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई थी कि हिन्दू अपने आराध्य राम और कृष्ण का आवश्यकता से अधिक श्रृंगार तो करने ही लगे थे परन्तु उनकी लीलाओं में अपने भोगी दृष्टिकोण को भी खोजने लगे थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म के सिद्धान्तों से निरन्तर अलग होते जा रहे थे। लोगों के पास बाह्याचरण ही मात्र धर्म पालन रह गया था। इस भोग विलास की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण निम्न वर्ग के लोग अंधविश्वासों के फेर में पड़कर निष्क्रिय हो गये थे। हिन्दू मंदिरों में और मुसलमान फेरों के तकियों पर जाकर अपने–अपने स्वार्थों की सिद्धि में लीन हो गये परिणामतः जनता के भोलेपन व उनके अंधविश्वास का पूरा–पूरा फायदा पुजारी, मौलाना, मौलवी आदि उठाने लग गये थे। धर्म के स्थान पर भ्रष्टाचार, पापाचार के केन्द्र सभी धार्मिक स्थल बन चुके थे और नैतिक प्रभाव समाप्त हो गया था।

1.3.4 साहित्य और कला की स्थिति

मुगल साम्राज्य के समय शिल्प कला, चित्रकला, संगीत, लेखन कार्य आदि ने अपने–अपने क्षेत्र में पर्याप्त उत्कर्ष प्राप्त कर लिया था। ललित कला और उपयोगी कला दोनों ही अभूतपूर्व उन्नति कर चुकी थी। कला प्रेमी मुगल शासकों ने फारसी और हिन्दू शैली के समन्वय से एक नई शैली का निर्माण किया, जिसकी छाप उस समय के स्थापत्य चित्रण, आलेखन आदि ललित कलाओं व सोने–चांदी, हीरे–जवाहरात के काम पर भी स्पष्ट अंकित रहती थी। इन सभी कलाओं में जहाँ एक ओर उस समय का ऐश्वर्य झलकता था वहीं दूसरी ओर उल्लास व श्रृंगार का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रसीलापन टपकता था। संगीत के क्षेत्र में भी गंभीरता नहीं रह गई थी। संगीत पूरी तरह से श्रृंगारिक भावों के अधीन होता चला जा रहा था। ऐसा लगने लगा था जैसे संगीत और श्रृंगार एक दूसरे के पर्याय बनकर जा खड़े हुए हों।

साहित्य और कला की दृष्टि से इस युग को समृद्ध कहा जा सकता है। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह दिखाई देती है कि कवि और कलाकार राजाओं के आश्रय में रहते थे और वहीं राजाओं की रुचि के अनुसार उनको लिखना पड़ता था जिससे उनकी जीविका चलती थी और वे स्वतंत्रतापूर्वक सृजन नहीं कर पाते थे। यही कारण था कि श्रेष्ठ कलाकारों की कला दब कर रह गई थी। चमत्कार प्रदर्शन, पाण्डित्य प्रदर्शन और दरबारों में वाह–वाह लूटने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। इस प्रवृत्ति के कारण जहाँ एक ओर कविता का विकास हुआ वहीं दूसरी ओर वह कविता आश्रयदाताओं के इशारे पर चलने वाली बन गई।

1.4 रीतिकालीन कविगणों की काव्यधाराएं

हिन्दी साहित्य के रीतिकाव्य में जिन कवियों ने काव्य सृजन किया है, उन कवियों को तीन प्रकार की काव्य धाराओं में विभाजित किया जा सकता है – रीतिबद्ध कवि, रीतिमुक्त कवि और रीतिसिद्ध कवि।

1.4.1 रीतिबद्ध कवि

रीतिबद्ध एक काव्य धारा है जिसका श्रीगणेश भक्तिकाल में ही हो चुका था। जिनमें आचार्य केशव का नाम सम्माननीय और अग्रगण्य है। रीतिबद्ध कवियों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में रखा गया है – अलंकार निरूपक आचार्य, रस और नायिका भेद के निरूपक आचार्य और सर्वांग निरूपक आचार्य। कुछ समीक्षकों ने पिंगल निरूपक आचार्यों की भी एक चौथी कोटि निर्धारित की है। सर्वांग निरूपक आचार्यों ने सभी विषयों पर अपना ध्यान आकर्षित किया – आचार्य चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, देव, सूरति मिश्र, कुमारमणि शास्त्री, सोमनाथ, श्रीपति, भिखारीदास, प्रतापसिंह आदि आचार्य इस क्षेत्र के प्रमुख थे। अलंकार निरूपक आचार्यों ने अपने लक्षण ग्रन्थों के निर्माण के लिये चन्द्रलोक, कुवलयानन्द आदि पूर्ववर्ती ह्रासोन्मुख ग्रन्थों को ही आधार बनाया था। इन आचार्यों में केशव, जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण, गोप, रसिक गोविन्द, दूलह, गोकुलनाथ और पद्माकर के नाम लिये जा सकते हैं। रस और नायिका भेद के निरूपक आचार्यों की दो कोटियाँ हैं – कतिपय आचार्यों ने मूल रूप से नायिका भेद और स्थूल रूप से श्रृंगार रस का निरूपण किया है। कुछ आचार्य ऐसे भी रहे जिन्होंने सभी रसों पर विचार किया। किन्तु सभी की दृष्टि श्रृंगार रस की ओर अधिक केन्द्रित रही। इस वर्ग के आचार्यों में तोष कवि, मतिराम, देव, कालिदास, कृष्ण भट्ट, श्रीपति, उदयनाथ, सोमनाथ, रसलीन, भिखारीदास, उजियारे, रामसिंह, गोविन्द, बेनी और पद्माकर आदि प्रमुख थे।

देव द्वारा किया गया रस–विवेचन अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और मौलिक है। मतिराम, पद्माकर आदि के लक्षण उदाहरण न केवल सटीक हैं अपितु सरस भी हैं। रीतिकाल की रसिकता और सरसता के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करने वाले ये ही कवि हैं। रीति ग्रन्थों के प्रस्तोता आचार्य केशव ही माने जाते हैं।

'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' दोनों ही उत्तम कोटि के ग्रन्थ माने गये हैं। रीति काल के जसवंत सिंह ने भाषा भूषण की रचना कर अपने आचार्यत्व का साक्षात्कार कराया है। भूषण का 'शिव भूषण' ग्रन्थ एक अलंकार निरूपक ग्रन्थ है। मतिराम का कवि रूप आचार्य की तुलना में कहीं अधिक प्रबल है। आचार्य देव का आचार्य और कवि रूप दोनों ही समान रूप से अपना महत्त्वपूर्ण परिचय देता है। देव के सृजन में काव्यत्व के साथ–साथ एक श्रेष्ठ आचार्य तुल्य मौलिक चिन्तन भी स्वतः समाविष्ट हो गया है। भावों की सूक्ष्मता, भाषा पर असाधारण अधिकार, शब्दों की सगोत्रता, सरसता और इसके साथ–साथ उक्ति वैचित्र्य पर देव ने पूरा ध्यान आकर्षित किया है। श्रृंगार कालीन आचार्यों में भिखारीदास सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं। ध्वनि, रस, अलंकार, गुण, दोष आदि सभी विषयों पर भिखारीदास ने लक्षण उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। रीतिबद्ध कवियों ने लक्षण ग्रंथों के आधार पर व्रत में काव्य रचना की इन्हें हम आचार्य वादी कह सकते हैं।

1.4.2 रीतिमुक्त कवि

रीति काव्य की एक दूसरी धारा रीतिमुक्त कवियों की हैं। इसे 'स्वच्छन्द काव्यधारा' भी कहा जाता है। इस वर्ग के प्रमुख कवियों में घनानन्द, बोधा, ठाकुर, आलम आदि विशिष्ट रहे हैं। ये वे कवि हैं जिन्होंने प्रयत्न करके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कविता नहीं लिखी है अपितु कविता तो स्वयं इनके हृदय से प्रस्फुटित होकर मुक्त कण्ठ से प्रवाहित हुई है। रीतिबद्ध कवियों ने चमत्कार की अभिव्यक्ति के लिये बुद्धि प्रेरित कविताएँ लिखीं; जबकि रीतिमुक्त कवियों ने भाव भावित कविता लिखी, जिसका प्रमाण समुचा रीति काव्य है। रीतिमुक्त कवियों ने काव्य को साधन रूप में नहीं बल्कि साध्य रूप में ग्रहण किया है। घनानन्द ने कहा है कि –

'लोग है लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'

प्रस्तुत उक्ति केवल घनानन्द पर ही चरितार्थ नहीं होती है, अपितु समुचे रीतिमुक्त काव्य पर लागू है। घनानन्द की कविता में संकलनकर्त्ता बृजनाथ ने भी इसी दृष्टिकोण से अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा **'जग की कविताई के धोखे रहे, ह्याँ प्रवीनन की मति जाती जकी।'** अर्थात् रीतियुक्त कवियों की कविता को नेत्रों से नहीं बल्कि हृदय की आँखों से पढ़ा जाना चाहिये।

1.4.3 रीतिसिद्ध कवि

रीति काल के अन्तर्गत एक मात्र कवि बिहारी ऐसे हैं, जिन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जा सकता है, क्योंकि उन्होंने किसी भी प्रकार से किसी लक्षण ग्रन्थ का निर्माण नहीं किया है, अपितु रीति परिपाटी की सभी विशेषताएँ उनकी 'बिहारी सतसई' में सहज–स्वाभाविकता उपलब्ध है। उनकी सतसई में रस, भाव, नायिका भेद, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति आदि को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस संदर्भ में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने तर्क में कहा है कि "बिहारी ने आचार्य कर्म से दूर रहकर जो सतसई रची उसमें रीतियाँ स्वतः ही सिद्ध होती चली गई हैं, इसलिये उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जा सकता है।" बिहारी को रससिद्ध कवि कहा जा सकता है। बिहारी की विख्यात रचना सतसई ने अप्रत्याशित लोकप्रियता प्राप्त की है क्योंकि उसमें मुक्तक शैली और रसात्मकता है। रसात्मकता ही बिहारी सतसई में प्रधान है अतः बिहारी उच्च कोटि के रीतिसिद्ध कवि रहे हैं। आचार्यत्व एवं कवित्व का मनोहारी संगम बिहारी में दिखाई देता है।

बोध–प्रश्न

सही पर्याय चुनिये (वस्तुनिष्ठ प्रश्न)–

1. रीतिकाल यह नामकरण किसने किया?
   (क) मिश्रबंधु (ख) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (ग) रामचन्द्र शुक्ल
2. लक्षण ग्रंथों का निर्माण किन कवियों ने किया?
   (क) रीतिसिद्ध (ख) रीतिबद्ध (ग) रीतिमुक्त
3. रीतिसिद्ध कवि कौन है?
   (क) बिहारी (ख) देव (ग) घनानंद

1.5 रीतिकालीन प्रवृत्तिगत विश्लेषण

रीतिकाल में दिल्ली में मुगल शासन था जिसमें विलासिता सामन्तवादी का वातावरण निरन्तर गुणोत्तर ढंग से बढ रहा था। जो सामान्य जनजीवन को अपने ही ढंग से प्रभावित कर रहा था। उस समय सृजनधर्मी रचनाकारों के सामने दो ही परिस्थितियाँ थीं– या तो सामन्तों और सम्राटों के साथ बैठकर विलासी बन जाये या उस वातावरण को विद्रोह भारी चुनौती दे। उस काल के कवियों ने दोनों ही मार्गों को अपनाया। कुछ कवियों ने राजा के आश्रय में रहकर अपनी सृजन धर्मी प्रवृत्ति को सफल बनाया और कुछ सामन्तों व शासकों को चुनौती देते थे। उस समय की परिस्थितियों से प्रेरित होकर और पुष्ट होकर जो परिस्थितियाँ सामने आईं उनमें शृंगारिकता अलंकारिकता और आचार्यत्व प्रदर्शन की प्रवृत्तियाँ प्रमुख थी। इनके अतिरिक्त नीति, भक्ति, वीररस की कविताएँ भी लिखी गई। उस काल में प्रकृति निरूपण भी हुआ किन्तु उसे उद्दीपन रूप में अधिक किया गया क्योंकि कवियों की दृष्टि नारी के प्रति उपभोग प्रधान रही, प्रेम का उदात्त पक्ष उपेक्षित रहा और उसका सम्भोगपरक और स्थूल पक्ष ही प्रधानतः कविता का विषय बना। रीतिमुक्त कवियों ने अति सूधो सनेह को मारग है।' कहकर प्रेम की उदात्तता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के साथ–साथ अपने सौन्दर्यबोध की सूक्ष्मता, प्रेमगत समर्पणशीलता, उच्चता और विरहानुभूति की तीव्रता और स्वाभाविकता पर सर्वाधिक ध्यान दिया है। यहीं कारण है कि रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा रीतिमुक्त कवियों की अभिव्यंजना पद्धति में सहजता और अकृत्रिमता अधिक परिलक्षित होती है। इस काव्य में न तो पाण्डित्य का बोध होता है और न बौद्धिक चमत्कार है और न प्रदर्शन की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत जो कुछ है वह हृदय से निकलती हुई स्वर लहरी है जो सीधे हृदय में प्रवेश कर जाती है। रीतिकालीन काव्यगत प्रवृतियों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं–

1.5.1 शृंगाररस की प्रधानता

यद्यपि शृंगार रस से युक्त रचनाएं भक्तिकाल से ही प्रारम्भ हो चुकी थी, किन्तु रीतिकाल में यह प्रधान रूप से सामने आई। इस काल की जो शृंगारिकता है उसमें किसी प्रकार का दुराव–छुपाव नहीं है और न दमन से उत्पन्न कोई भी ग्रन्थियाँ हैं और न ही इन कवियों ने प्रेम को अतीन्द्रिय रूप भी प्रदान किया है। उन्होंने तो कुण्ठा रहित होकर के उन्मुक्त भाव से शृंगार सरिता में आकण्ठ निमग्न होकर अपनी मनोवृत्तियों की अभिव्यंजना की है। शृंगारिकता के लिये उन्होंने सौन्दर्य निरूपण, नायक–नायिकाओं के चित्रण और सौन्दर्य में भी शोभा, कान्ति, दीप्ति आदि को प्रधानता दी है। इस काल में ऐसे शृंगारिक चित्र अधिक हैं, जिनमें ऐन्द्रियता है और 'इमोशनल रेस्पोन्स' है। संयोग और वियोग के चित्र भी इस काल में शृंगारिक मनोवृत्ति को स्पष्ट करते हैं। इस युग में जो संयोग सुख का वर्णन हुआ है, वह रूपासक्ति का परिणाम है। संयोग वर्णन में कवियों ने बहिर्केन्द्रीय सन्निकर्ष, हावादिजन्य चेष्टाओं, सुरत बिहार मद्यपान आदि के वर्णन किये हैं। दर्शन, स्पर्श, श्रवण, संलाप आदि इसी के अन्तर्गत हैं। इनकी प्रतिक्रियाएँ हाव, अनुभाव आदि में व्यक्त की गई हैं। वियोग वर्णन के अन्तर्गत पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण के वर्णन अधिक मिलते हैं, इसमें भी रूपासक्ति प्रमुख रही है। वियोग में स्मृति, गुण कथन आदि दसो मानसिक दशाओं के वर्णन द्वारा अवचेतन मन के रहस्योद्घाटन का निरूपण भी इस काव्य धारा के अन्तर्गत पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

संयोग और वियोग– रीतिकालीन कवियों ने संयोग को तो कभी समझा ही नहीं। केवल प्रेम की पूर्णता प्रतिष्ठित करने के लिये विरहाग्नि में तप–तप कर उसका कंचन्वर्णी रूप और उनके यौवन पूरित अंगों व प्रत्यंगों का रचनाओं में चित्रित किया है। प्रथम तो इस काल के वियों ने संयोग को अपनी रचना में स्थान ही नहीं दिया और यदि दिया भी तो उसमें भी वियोग ही झलकता दिखाई देता है।

इस काल के कवियों का विरह रीतिमार्गी कवियों से पृथक है। रीतिबद्ध कविता में विरह का वर्णन शास्त्रानुमोदित है। वहाँ पर कभी तो माघ की लू चलती है और कभी सखियाँ जाड़े में विरहिणी नायिका को देखने के लिये गीले कपड़े पहनकर आती है। रीति कवियों का विरह वर्णन अट्टात्मक और बेजानशास्त्रीय अधिक हो गया है। रीतिमुक्त कवियों ने इसके विपरीत आत्मानुभूति को काव्य का विषय बनाया है। व्यक्तिगत जीवन की निराशा और पीड़ा में काव्य के उदात्तीकरण के परिणाम स्वरूप उनकी कविताओं में प्रभाविता व मार्मिकता अधिक है।

रैन–दिन घुटिवो करै प्रान, झरै दुखिया अंखिया झरनासी।।

उसके साथ ही विरह की वेदना अनुभवगमय अधिक है अतः रीतिमुक्त कवियों की विरह–वेदना को समझने के लिये मन की आँखें चाहिए–

समुझै कविता घन आनन्द की,हिय ऑखिन नेह की पीर तकी।

1.5.2 आचार्यत्व प्रदर्शन

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य काल में शृंगारिकता के बाद यदि कोई महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति उभरकर सामने आई तो वह भी आचार्यत्व के प्रदर्शन की प्रवृत्ति। अधिकांश कवियों ने लक्षण निरूपण के नाम पर संस्कृत के साहित्य शास्त्र का अनुवाद कार्य जैसा किया है। 'हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ में डॉ. भगीरथ मिश्र ने अपने वक्तव्य में कहा कि हिन्दी लक्षणकारों या रीति ग्रन्थकारों के सामने कोई वास्तविक काव्य शास्त्रीय समस्या नहीं थी। इनका उद्देश्य विद्वानों के लिये काव्य शास्त्रों के ग्रन्थों का निर्माण नहीं था वरन् कवियों और रसिकों को काव्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शास्त्र के विषयों से परिचित कराना था'। इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि इस काल में आचार्यत्व प्रदर्शन की प्रकृति तो मिलती है किन्तु इस प्रवृत्ति से कोई नया पन सामने उभरकर नहीं आया।

1.5.3 प्रेम की प्रधानता

इस धारा के कवियों की यह एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है। इस काव्य के कवि प्रेमी–मन रहे हैं और उमंग से कविता लिखते थे। उनके लिये प्रेम भावना की अभिव्यक्ति ही कविता का विषय बनी हुई थी। उनके काव्यों में भी प्रेम का यह रूप शायद ही आ पाता, यदि ये मनोवेगों के प्रवाह में बह कर कविता न लिखते–

लोग लागि कवित्त बनावत।

मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।।

प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि घनानन्द के विषय में कही गयी हैं। इनकी इसी पैठ को पाकर प्रेमानुभूति राजमार्ग पर शुद्ध सात्विक भाव से चलने लगा। इन कवियों ने प्रेम को शारीरिक भूख की तृप्ति का साधन ही नहीं माना है अपितु आगे चलकर वह अलौकिकता की ओर भी झुका दिखाई देता है। कहते हैं कि घनानन्द की सुजान लौकिक होकर भी अलौकिक है। प्रेम का बाह्य पक्ष इसी कारण कमजोर हो गया और उसके विपरीत अन्तः पक्ष शक्ति सम्पन्न हो गया। अतः रीति कालीन कवियों ने अपनी कलम को प्रेम रस से सराबोर कर रखा था। रीतिकाल के अन्य कवियों ने प्रेम और श्रृंगार पर अनेक ग्रन्थ लिखें। उस काल में एक चौथाई लोग भक्त होते थे, एक चौथाई प्रेमी और दो चौथाई कवि व आचार्य। इसीलिये स्वच्छन्द प्रेम का एकाकी रूप काव्य में नहीं आ पाया। रीति मुक्त धारा के कवियों में प्रेम की चपलता का अभाव रहा है। शुद्ध सात्विक प्रेम, शुद्ध हृदय की शुद्ध अनुभूतियाँ ही उनकी कविता का आधार बनी।

प्रेम का पक्ष – रीतिकालीन कवियों ने प्रेम के लौकिक पक्ष को स्वीकार किया है जिनमें रसखान, ठाकुर, बोधा प्रेमानुभूति पक्ष के गायक रहे हैं। प्रसिद्ध कवि बोधा की प्रस्तुत पंक्तियाँ –

जब से बिछुरे कवि बोधा हितू,
चित नैक हमारा थिरातो नहीं।
हम कौन सों आपनी पीर कहैं,
दिलदार तो कोउ दिखातो नहीं।।

कवि बोधा और ठाकुर की कविताओं का लोक पक्ष बड़ा ही संयत है। कष्टों से पीड़ित प्रेमी भी प्रेम मार्ग से विरत हो सकता है। सच्चा प्रेमी इन सांसारिक बाधाओं से नहीं डरता है वह हर हालत में अपने प्रेमी जीवन की साधना को पूर्ण करता है।

यह प्रेम का पंथ कराल महा,
तलवार की धार पै धावनो है।

1.5.4 भक्ति व नीति की धारणा – रीतिकालीन कवियों की धारणा श्रृंगार से युक्त रही साथ ही अलंकारों के प्रति भी उनका मोह रहा किन्तु उनका एक ऐसा पक्ष भी रहा है जो इस काव्य को श्रृंगारेतर भावों से अलग कर देता है जिसकी वजह से अनेक कवियों ने नीति व भक्ति से युक्त रचनाएँ भी लिखीं। इन कवियों ने भक्ति संकलित रचनाएँ तभी प्रस्तुत की जब ये श्रृंगारिकता के आधिक्य से ऊब गये थे।

1.5.5 भावना प्रधान – रीतिकालीन कवियों की रचनाएँ प्रेम की शुद्ध और निश्छल अभिव्यक्ति के कारण भावना को अधिक महत्त्व देती है और जो भाव प्रियता हमें प्रेम प्रणाली में मिलती हैं वह कविता की भाषा में भी दिखाई देती है। बुद्धि को तो उस समय के कवियों ने गौण स्थन दिया है। प्रधान स्थान तो भावना को ही प्रदान किया गया है। रीतिकाव्य की रानी बुद्धि है और भाव उसका किंकर। परन्तु स्वच्छन्दता काव्य की रानी है और अनुभूति व बुद्धि उसकी दासी मानी गई है।

इस संदर्भ में घनानन्द ने कहा है कि –

रीझि सुजान सची पटरानी।
बची बुद्धि बाबरी हवै करि दासी।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यह धारा भाव प्रेरित है, बुद्धि–प्रधान नहीं। यही कारण है कि इस समय की रचनाएँ अनुभूति की गंभीरता रखती है जो कविता का आन्तरिक गुण है।

1.5.6 अलंकरण के प्रति आग्रह – रीतिकालीन रचनाओं में अलंकारिकता के प्रति आग्रह सर्वत्र परिलक्षित होता है। सम्पूर्ण काल में साधर्म्यमूलक और संभावनामूलक अलंकारों की प्रचुरता रही है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक और श्लेष के सफलतम प्रयोग किये गये हैं। विरोधाभास, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का अच्छा खासा प्रयोग कवि घनानन्द ने किया है। रीतिबद्ध कवियों ने अलंकार प्रयोग में गहरी रुचि प्रदर्शित की है, जबकि रीतिमुक्त कवियों ने सहज भाव से काव्य सृजन करते हुए अलंकरण प्रवृत्ति को स्थान दिया है।

1.5.7 प्रकृति निरूपण – रीतिकालीन रचनाओं में प्रकृति का भी अत्यन्त सुन्दर व मनमोहक निरूपण किया गया है। विशेष बात यह है कि रीतिकालीन प्रकृति चित्रण ऋतु वर्णन तक ही केन्द्रित रहा। जहाँ कहीं भी प्रकृति का निरूपण किया गया वहाँ प्रकृति ऋतुओं के अतिरिक्त उद्दीपन रूप में अधिक सामने आया है। संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में प्रवृत्ति को महत्त्व दिया गया है। जब बसंत ऋतु आती है तो 'औरे मन, औरे तन, औरे बन' तो हो ही जाते हैं, उनकी छवि के प्रसार के साथ–साथ नायिकाएँ भी छलिया, छबीले और छैल का चुनाव करने लगती हैं। फाग वर्णन भी बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर सभी में परिलक्षित होते हैं जो अपने आपमें मोहकता व रोमांच का गुण समाहित किये हुए हैं।

1.5.8 नारी चित्रण – रीतिकालीन कवियों की रुचि नारी के रूप–सौन्दर्य और उनके अंग–प्रत्यंगों का वर्णन करने में अधिक रही। विशेष बात यह रही कि इस काल के कवियों की दृष्टि में नारी मात्र विलासिनी ही थी। नारी के जननी, गृहणी, देवी, भगिनी आदि पवित्र रूप उनकी कलम और दृष्टि में नहीं बंध पाए। ऐसा लगता है जैसे नारी इस युग में भावनात्मक दृष्टि से रुग्ण थी। कवियों को नारी के अंग–प्रत्यंगों से वासना ही टपकती नजर आती थी, उन्हें इसके अतिरिक्त उनकी नजर में नारी का कोई महत्त्व दिखता ही नहीं था। उस समय में पुरुष भी इतने विकृत भाव वाले हो गये थे कि अपनी परिणिता की सेज को सूनी छोड़कर पर–नारियों के बिस्तर गरम करते थे और प्रातः होते ही रति अवशेषों को लेकर अपनी पत्नियों के सामने उपस्थित हो जाते थे, परिणामतः उन्हें रति वेदना और अधिक सताती थी जिससे उनके मनोभाव भी पर–पुरुषों के प्रति आकृष्ट होने लगते थे। उस समय की नारी स्थिति को देखकर ऐसा लगता है कि कवि का नारी विषयक दृष्टिकोण भी सामन्तीय था। उनका मानना था कि नारी समाज की चेतन इकाई न होकर एक निर्जीव वस्तु उपकरण मात्र है।

1.5.9 शिल्प सौन्दर्य – रीतिकालीन कवियों की दृष्टि कला से अधिक भाव की ओर थी। कवि ठाकुर और घनानन्द ने भी कला को कम महत्त्व दिया है –

'लोग है लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इनका कलापक्ष कमजोर था, वह तो व्यवस्थित, रागृद्ध और परिमार्जित है क्योंकि वह भावानुमोदित है और भाव भाषा के सहचर हैं। लोकोक्तियों व मुहावरों से भाषा को समृद्ध बनाया गया है। भावों की गहराई और प्रेमभाव की एकनिष्ठता के परिचय के लिये हम जान सकते हैं कि –

ऊधौ! वे अँखियाँ जर जाई जो सावरो, छाँड़ि तकै तन गोरो।'

घनानन्द ने आगे के कवियों का मार्ग प्रशस्त किया है लाक्षणिक व ध्वन्यात्मक शब्दावली के प्रयोग से। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल का मत है कि "लक्षणा व व्यंजना का मैदान इतना विस्तृत व खुला था, फिर भी उसमें दौड़ लगाने की पहल केवल घनानन्द ने ही की।' भाषा पर इनका अचूक अधिकार था। अलंकारों में मानवीकरण और संवेदना ध्वन्यात्मक विरोधाभास के सुन्दर प्रयोग घनानन्द के काव्य में पर्याप्त रूप से विद्यमान हैं।

'उजरानि बसी है हमारी अँखियन देखो,
सुबस सुदेस जहाँ रावरे बसत हों।'

रीतिमुक्त स्वच्छंद धारा का अपना अलग महत्त्व है, जो समूचे रीतिकाल से पृथक अपना सम्बन्ध रखती है। प्रेमानुभूति की तीव्रता, सौन्दर्य का आन्तरिक विश्लेषण, भावनाओं की विभेदपूर्ण अभिव्यंजना, वियोग की अन्तर्मंथन वाली उक्तियाँ और भाषा का शुद्धतम और भावानुमोदित प्रयोग इस धारा की मुख्य विशेषताएं हैं।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ranchi

1.5.10 कृत्रिम व्यापारों का परित्याग– रीतिकालीन कवियों ने प्रेम के मार्ग में बाहरी अस्वाभाविक व्यवहार को छोड़कर स्वाभाविक व आन्तरिक अनुभूतियों को अधिक महत्त्व दिया है जिसके कारण ये सफल व सच्चे प्रेमी कवि कहलाये। कवि बोधा और ठाकुर इस संदर्भ में यही कहा करते हैं कि प्रेम को उद्घाटित करने का अर्थ ही उसका उपहास करना है। इस संदर्भ में कवि घनानन्द ने कहा है कि –

'अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेक सयानप बाँक नहीं।'

1.5.11 अनुभूति और रस – अनुभूति को उसके तरल और व्यापक रूप में अभिव्यंजित करने का सवाल जटिल भले ही हो, परन्तु रीति कवि उसमें सक्षम अवश्य रहा है। संयोग और वियोग श्रृंगार के माध्यम से रीति की अनुभूति को कई रूपों और स्थितियों में प्रस्तुत करने में रीति कवि कदाचित् साहित्य की समग्र परम्परा का उपयोग करते हुए पूरे अतीत को लांघ गया है। संयोग और वियोग तो स्थितियाँ हैं, इन स्थितियों के भीतर अनुभवों के विस्तृत क्षेत्र हैं, भावों की अनन्त राशि है और जगत का व्यापक उपयोग है। मूलवृत्ति रीति को अनेक रूपों और सूक्ष्मताओं में रीति कवि ने देखा है। भावों, अनुभावों और विभावों की परिभाषागत और सूचिबद्ध संकेतों तथा प्रतीकों का उपयोग करते हुए भी उसमें अनुभूति की सरसता और सहजता को बनाये रखने तथा उसकी आह्लादक शक्ति को बढ़ा देने की क्षमता इनका व्यापक प्रमाण है। रीतिकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में स्थितियाँ उत्पन्न की हैं जो मनोभाव और शारीरिक प्रतिक्रिया का परिणाम होती है और कामेच्छा को उद्दीप्त करती है। बिहारी और देव दोनों ने विलास का व्यापक प्रयोग किया है। नायिका की प्रगल्भता और आकर्षित करने की पद्धति विलास का मुख्य गुण है, इसलिये यह सामन्तशाही ढाँचे के उपयुक्त भी है विशेष तौर पर वहाँ, जहाँ विलास दरबार की स्वाभाविक क्रिया थी। रति कवियों की इन योजनाओं में परिभाषाओं का विशेष ध्यान रखा है। बिहारी और देव दोनों ने नायिका के सचेष्ट संकेतों को ध्यान में रखते हुए भी स्थिति और नायिका के संकेत के संदर्भ में नए अर्थों का प्रयोग किया है। कार्य व्यापार को भी अनुभूति बना देना बड़ा अद्भूत है –

'नासा मोर नचाय दृग, करी ककी की सौहं।
फाटे से कसकत हिये बहै कटीली भौंह।।
भौंह उचै आँचरि उलटि, मोरि मुह मोरि।
नीठि–नीठि भीतर गई, दीठि–दीठि सों जोरि।।'

1.5.12 काव्य रूप – काव्य रूप की दृष्टि से यदि रीतिकाल के साहित्य सृजन को देखा जाये तो यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इस काल में मुख्य रूप से मुक्तक काव्य ही लिखा गया था। कवित्त, सवैया, दोहा आदि में रचित रीतिकाव्य मुक्तक शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है। अपवाद स्वरूप कुछ प्रबन्ध काव्यों की रचना अवश्य हुई है किन्तु वे अधिक उल्लेखनीय नहीं है।

1.5.13 वीररस एवं हास्य रसात्मक रचनाएँ – रीतिकाल में प्रशस्तिपरक अथवा वीर रसात्मक रचनाएँ भी हुई हैं जिनमें भूषण का नाम सर्वोपरि आता है। रीतिकाव्य के अन्तर्गत वीर काव्य की पाँच पद्धतियाँ हमें मिलती हैं – शुद्धवीर काव्य, श्रृंगार मिश्रित वीर काव्य, भक्तियुक्त वीर काव्य, अनूदित वीर काव्य और प्रकीर्ण वीर काव्य। इन रचनाकारों में केशव, भूषण, पदमाकर आदि प्रमुख हैं। कुछ समीक्षकों में भूषण को वीर काव्य का प्रणेता होने के साथ–साथ जातीयता से ओत–प्रोत भी माना है।

रीतिकाल की एक प्रवृत्ति हास्य रस से भी जुड़ी हुई है। यद्यपि यह अपवाद स्वरूप ही रही प्रवृत्ति है किन्तु काव्य में प्रणयन अवश्य हुआ है। संस्कृत में तो हास्य के आलम्बन महादेवजी रहे हैं और वे ही श्रृंगारकालीन हास्य की रचनाओं में प्रमुख स्थान पर रहे हैं।

1.5.14 बिम्बात्मकता – रीतिकाव्य चित्रात्मकता में अकेला रहा है। इस काल के कवियों ने उपयुक्त शब्दों का चयन करते हुए अपने सौन्दर्य बोध को चित्रात्मक शैली में प्रयुक्त किया है। नायक–नायिकाओं के मनभावन चित्र प्रस्तुत किये गये हैं जिन्हें कोई भी चित्रकार उन दोहों, कवित्तों और सवैयों को पढ़ लेने मात्र से अद्भूत व मौलिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चित्र प्रस्तुत कर सकता है ये रेखाचित्र, वर्णचित्र, वर्णों का मिश्रण चित्र, विरोधी वर्ण योजना और वर्ण परिवर्तन के सहारे खड़े किये गये चित्र भी हैं।

1.5.15 ब्रज भाषा की प्रधानता – रीति काव्य की भाषा प्रधानतया ब्रज भाषा ही है। इसका परिष्कृत, सहज, सरल और कोमल रूप रीति काव्य में देखने को मिलता है इसमें अवधी, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, उर्दू, फारसी आदि के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में काम आये हैं। भाषा की सम्प्रेषण शक्ति को बढ़ावा देने के लिये कवियों ने मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा कि "भाषा के भी विश्रामदायक और विरोधी गुणों का इस काव्य में खूब मार्जन हुआ है, परन्तु इसे इस योग्य बनाने का प्रयत्न किसी ने भी नहीं किया कि यह गंभीर विचार प्रणाली का उपयुक्त वाहन बन सके।"

1.6 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

रीतिकाल की रचनाएँ अपने आप में अनेक विशेषताओं को लिये हुए हैं। इन विशेषताओं का विवेचन हम निम्नलिखित आधार पर कर सकते हैं –

1.6.1 रीतिबद्ध कवियों की विशेषताएँ

1.6.1.1 आचार्यत्व के प्रति आकर्षण – रीतिबद्ध कवियों में चिन्तामणि, मतिराम, भूषण, पद्माकर, सेनापति आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। इन्होंने लक्षण ग्रन्थों की रचना की। कुछ कवि रस–सम्प्रदाय से जुड़े हुए थे, जबकि कुछ अलंकार सम्प्रदाय से जुड़कर काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन कर रहे थे। इनको पूरा विश्वास था कि लक्षण ग्रन्थ रचकर ये बहुत बड़े आचार्य कहलाएँ। इन ग्रन्थों की रचना अपने ही आश्रयदाताओं के आदेश से की गई थी। केशवदास ने प्रवीण राय को काव्य–शास्त्र पढ़ाने के लिये 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' की रचना की।

1.6.1.2 शृंगार को महत्त्व – रीतिबद्ध कवियों में शृंगारिकता की भावना सर्वाधिक पाई गई है, यद्यपि शृंगारपरक रचनाएँ भक्तिकाल के कवियों ने भी की किन्तु रीति कालीन रीतिबद्ध कवियों ने इसे खुले रूप में अधिक किया है। इनकी जो शृंगारिकता है इसमें कोई दुराव–छुपाव नहीं है और न दमन से उत्पन्न कोई ग्रन्थियाँ हैं। इन कवियों ने प्रेम को अतीन्द्रिय रूप भी प्रदान नहीं किया। उन्होंने तो कुण्ठा रहित होकर उन्मुक्त भाव से शृंगार सरिता में आकण्ठ निमग्न होकर अपनी मनोवृत्तियों का अभिव्यंजन किया है। शृंगारिकता के लिये उन्होंने सौन्दर्य–निरूपण, नायक–नायिकाओं के चित्रण और सौन्दर्य में भी शोभा, कान्ति, दीप्ति आदि को प्रधानता दी है। वैसे रीतिबद्ध कवियों ने अपने–अपने ढंग से अपनाया। कृष्ण भक्ति परम्परा में रीतिकाल के प्रभाव से माधुर्य भाव को प्रधानता मिली। रामभक्ति धारा को मर्यादावादी दृष्टिकोण से जाना जाता है। इसमें भी सखी सम्प्रदाय चल निकला और प्रेम–लीलाओं का अति रंजित रूप वर्णन में आया। संयोग–वियोग भी इस युग की शृंगारिक मनोवृत्ति को स्पष्ट करते हैं। इस युग में जिस संयोग का वर्णन किया गया है वह रूपासक्ति का परिणाम है।

1.6.1.3 नारी के दैहिक सौन्दर्य की अधिकता – इस काल के रीतिबद्ध कवियों की रुचि नारी चित्रण की ओर अधिक रही। विशेष बात यह है कि इन कवियों ने नारी को केवल विलास की वस्तु माना। नारी का नख–शिख वर्णन चटखारे के साथ किया। ऐसा लगता है कि नारी के देवी, शक्ति, प्रेरणा मातृ, समर्पित व त्याग की प्रतिमा जैसे रूप तो उनकी कलम व दृष्टि में बँध ही नहीं पाये थे और सामयिक प्रभाव से प्रेरित होकर उसके रूप सौन्दर्य का चित्रण करने में ही सारी शक्ति लगा दी। इन कवियों के द्वारा नायिका भेद को प्रमुख रूप से चित्रित किया गया। शायद रीतिबद्ध कवि यह नहीं जानते थे कि प्रेम का अर्थ रूप लालसा के अतिरिक्त भी कुछ और होता है। इस काव्य में प्रेम का कोई उच्च आदर्श प्रस्तुत किया ही नहीं। ये नारी को समाज की चेतन इकाई न मानकर मात्र उपकरण ही मानते रहे।

1.6.1.4 कवित्त शक्ति की अवहेलना – रीतिबद्ध कवियों ने अपने मूलतः कवि रूप का तिरस्कार किया। उन्होंने अपने लक्षण ग्रन्थों में विभिन्न मत प्रस्तुत कर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। उन कवियों में एक ही तथ्य पर भाँति–भाँति की परिभाषाएँ लिखकर अभिव्यक्त करने की क्षमता थी, किन्तु उन्होंने अपने कवित्व गुण का सदुपयोग नहीं किया। अन्ततः अपनी ही दृष्टि से अपनी क्षमता को प्रकट करने का प्रयास किया गया था।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.6.1.5 मौलिक चिन्तन का अभाव – रीतिकालीन आचार्यों ने अपने मौलिक ग्रन्थ न लिखकर उनमें संस्कृत आचार्यों के विचारों और सिद्धान्तों को ही अपनाया गया, जिसमें भी मौलिकता का पूर्णतः अभाव रहा। कहीं–कहीं प्राचीन लक्षण से हटकर कुछ लिखना भी चाहा तो वह हास्यास्पद बन गया। ऐसा लगता है कि इस काल के कविगण व मुख्य आचार्यो ने अपने आप को रूढिवादिता से जोड़े रखना ही उचित समझा। मौलिक दृष्टि विकसित करने की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। यदि वे उपयुक्त ध्यान देते तो उन्हें चिन्तन की मौलिकता में सफलता सुनिश्चित थी।

1.6.1.6 प्रकृति वर्णन – रीतिबद्ध कवियों की दृष्टि में प्रकृति केवल नायक–नायिकाओं की प्रेम लीलाओं के उद्दीपन का साधन रही। आलम्बन के रूप में प्रकृति का चित्रण किसी ने भी नहीं किया। इस युग का प्रकृति चित्रण ऋतु वर्णन तक ही सीमित था। संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में प्रकृति को महत्त्व दिया गया। बसंत के आगमन के साथ ही उस युग की नायिका अपने प्रियतम के मिलन व रति क्रिया की स्थिति का अनुभव करने लगती है।

1.6.1.7 आश्रयदाता की प्रशंसा – रीतिकालीन अधिकतर कविगण किसी न किसी राजा या अन्य शासकों के आश्रय में रहकर अपना सृजन कार्य कर रहे थे और युग प्रवृत्ति के अनुसार उन्होंने जमकर उनकी प्रशंसा अपनी रचनाओं के माध्यम से की। यहाँ तक कि इन कवियों ने उनकी प्रशंसा में जो भी वर्णन किया, वह अतिशयोक्तिपूर्ण किया। कई रचनाकारों ने तो अपनी रचनाएँ आश्रयदाताओं को ही समर्पित कर दी और उनका नामकरण भी उन्हीं आश्रयदाताओं के नाम पर किया गया।

1.6.1.8 नीति और भक्ति – रीतिकाल में भक्ति प्रदर्शन का अंग बन गई। यहाँ तक कि इन कवियों के द्वारा भक्ति के अनेक बहाने खोजे जाने लगे और इन्हीं बहानों के रूप में रीतिकालीन प्रवृत्तियों को अपनाया गया। भक्ति आस्था नहीं रही, आराधना नहीं रही। यहाँ तक कि भक्ति को घटते हुए देखकर जीवन मूल्यों के बहाने उसे बचाने की आवश्यकता महसूस होने लगी। उस भक्ति के पीछे भी शृंगारिकता की प्रेरणा भी रही है। इन कवियों ने भक्ति से सम्बन्धित रचनाएँ तभी की जब ये श्रृंगार से ऊब गये थे और इसलिये भी ये कुछ समय के लिये नायक–नायिकाओं के शारीरिक सम्बन्धों को भुला सकें।

1.6.1.9 विभिन्न शैलियों का प्रयोग – रीतिकाल में रीतिबद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं में किसी ने तो कवित्त और छप्पय शैली को अपनाया, किसी ने सवैया शैली को और किसी ने कुण्डलिया शैली को अपनाया। गोस्वामी तुलसीदास और मलिक मोहम्मद जायसी की दोहा–चौपाई शैली का बहुत प्रयोग किया गया। बिहारी ने तो काव्य रचना के लिये केवल दोहा शैली का ही आश्रय लिया। केशव ने अपनी रचना 'रामचन्द्रिका' को तो छन्दों का अजायबघर ही बना दिया। रीतिकाल में प्रबन्ध काव्य कम लिखे गये। अधिकतर रचनाकारों ने मुक्तक छन्दों में अपने भावों को व्यक्त किया और उन्हें निबद्ध किया। उनको सुनाकर वे राज दरबारों में प्रचुर पुरस्कार प्राप्त किया करते थे।

1.6.2 रीतिसिद्ध कवियों की विशेषताएँ

रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवियों में बिहारी का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। यद्यपि उन्होंने किसी रीतिग्रन्थ को नहीं लिखा किन्तु उनकी एकमात्र रचना 'सतसई' को पढ़ने के उपरान्त उस काल के वातावरण को आसानी से समझा जा सकता है। जो प्रसिद्धि 'सतसई' को मिली, उतनी तो रीतिकालीन किसी अन्य रचना को नहीं मिली। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने 'बिहारी विहार' में निम्नलिखित दोहा लिखकर उनके जीवन व जन्म के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है –

संवत् जुग सर रस सहित, भूमि रीति गिन लीन।
कार्तिक सुदि बुद्ध अष्टमी, जन्म हमें विधि दीन।।

बिहारी का बचपन बुन्देलखण्ड में व्यतीत हुआ और विवाह पश्चात् बिहारी मथुरा आ गये। मुगल सम्राट शाहजहाँ के निमन्त्रण के साथ वे आगरा चले गये। वहाँ पर बिहारी का परिचय अनेक राजाओं से हुआ और इसी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परिचय के परिणामस्वरूप बिहारी जयपुर नरेश जयसिंह के आश्रय में रहने लगे। यद्यपि इन्होंने एक ही कृति लिखी है, किन्तु उसी के आधार पर बिहारी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। प्रतिभाशाली होने के कारण बिहारी का काव्य तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव से पूर्ण दिखाई देता है। इनकी रचना में श्रृंगार भी है, भक्ति भी है, नीति भी है, किन्तु युगीन प्रभाव के कारण श्रृंगार सब पर हावी रहा है। शब्द शक्तियों का सामंजस्यपूर्ण प्रयोग इनकी रचना में परिलक्षित होता है। इनकी रचना का प्रत्येक दोहा **'गागर में सागर भरने वाला'** है। प्रत्येक दोहा काव्यात्मक और कलात्मक है। बिहारी के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. कवि बिहारी की रचना में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का आकर्षक चित्रण किया गया है। संयोग श्रृंगार का वर्णन शास्त्रीय आधार पर किया है। यद्यपि उनके इस वर्णन में कहीं–कहीं मर्यादा का उल्लंघन ही दिखाई देता है, किन्तु उनकी सरसता और मोहकता आज भी पाठकों के मन और मस्तिष्क में विद्यमान है और लोगों को मुग्ध करती रहती है। संयोग की भाँति वियोग का वर्णन भी किया गया है किन्तु संयोग रचनाओं के तुल्य सफलता नहीं मिल सकी।
2. बिहारी की रचना में कला के प्रति अत्यधिक आग्रह परिलक्षित होता है कहीं–कहीं तो शब्द योजना का चमत्कार चरम सीमा तक पहुँच गया है।
3. बिहारी के दोहे काव्यपरक व रसपरक हैं।
4. भक्ति और विनय के दोहे काफी प्रभावपूर्ण हैं।
5. नीति व दर्शन सम्बन्धी दोहे यद्यपि संख्या में कम हैं, किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली हैं।
6. बिहारी के दोहों में जहाँ कल्पना की समाहार शक्ति है, वहीं भाषा की समास शक्ति की प्रबलता भी देखी जा सकती है।
7. अनुभवों के आधार पर भावों की तीव्रता, प्रखरता व गहनता से विषय वस्तु का सजीव वर्णन किया गया है।
8. बिहारी की भाषा चलती हुई होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर हुआ है।
9. रीतियाँ सामयिक प्रभाव से स्वयं ही सिद्ध हो जाती हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि बिहारी रीतिकाल के सुप्रसिद्ध कवि थे उनके 'सतसई' में सभी प्रकार की रुचि रखने वाले लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया है। यद्यपि इनकी रचना में श्रृंगार की प्रमुखता है किन्तु उसमें भक्त के लिये भक्ति, नीतिज्ञ के लिये नीति, प्रेमी के लिये प्रेम समाहित है।

1.6.3 रीतिमुक्त काव्य धारा

रीतिमुक्त कवि वे कवि हैं जो काव्य शास्त्रीय नियमों से मुक्त रहकर काव्य सृजन में प्रवृत्त हुए। रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दोनों कवियों के धरातल भिन्न हैं। इनका काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण भी दो विरोधी रेखाओं को छूता है। रीतिबद्ध कवियों ने शास्त्रीय परम्परा को आधार बनाकर काव्य रचना की है तो रीति मुक्त कवियों ने परम्परागत मार्ग को नहीं अपनाया। काव्य को अनुभूति प्रेरक मानकर उन्होंने भाव को प्रमुख और भाषा को गौण स्थान दिया। रीतिमुक्त का सीधा सा अर्थ है – रीति, बंधन और परिपाटी से मुक्त। रीतिकाल की यह स्वच्छन्द काव्यधारा मुक्त कवियों की मुक्त धारा है। हम इसे स्वच्छन्द धारा इस दृष्टि से मानते हैं कि इसमें काव्य परिपाटी से अलग हटकर काव्य सर्जना हुई है। इस धारा के कवि वे कवि हैं जिन्होंने प्रयत्न करके कभी कविता नहीं लिखी बल्कि कविता उनके हृदय से स्वतः निकली।

रीतिमुक्त कवियों ने काव्य को साधन रूप में नहीं अपितु साध्य रूप में ग्रहण किया है इस संदर्भ में रीतिमुक्त सुविख्यात कवि घनानन्द ने कहा है –

'लोग हैं लागि कवित्त बनावत,
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'

उक्त पंक्तियाँ न केवल घनानन्द पर ही लागू होती हैं अपितु सभी रीतिमुक्त कवियों पर चरितार्थ है। इसी बात को पुष्ट करते हुए घनानन्द की कविता के संकलनकर्त्ता बृजनाथ ने कहा है कि –

'जग की कविताई के धोखे रहे,
ह्या प्रवीनता की गति जाकी जकी।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अर्थात् रीतिमुक्त कवियों की कविता को नेत्रों से नहीं हृदय की आँखों से पढ़ा जाता है। प्रेम के क्षेत्र में पवित्रता व उदात्तता को स्थान दिया गया है, इसी कारण रीतिमुक्त कवियों ने अपने काव्य में अनेक ऐसी स्थितियों का वर्णन किया है जो आज भी हमारे मन को प्रभावित करती हैं। इस काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं को हम निम्नलिखित रूप में जान सकते हैं –

1.6.3.1 परम्परामुक्त मार्ग – इन कवियों ने रीतिबद्ध कवियों से पृथक अपने काव्यदर्शन प्रस्तुत किये। वस्तुतः इनका काव्य भावना प्रधान है। वह बाह्य चित्रण की अपेक्षा आन्तरिक चित्रण को अधिक महत्त्व देता है। घनानन्द और बोधा जैसे कवियों का उद्देश्य हृदय के भावावेगों को स्वच्छन्द भाव से अभिव्यक्त करना था। आत्म विभोर होकर काव्य रचना करने वाले ये कवि बौद्धिकता को काव्य के अनुकूल नहीं मानते थे। घनानन्द ने इसी कारण से प्रिय के रूप सौन्दर्य पर समर्पित होने और रीझने को अधिक महत्त्व दिया है। बुद्धि को तो उन्होंने दासी बनाकर रखा है।

1.6.3.2 व्यक्ति प्रधान काव्य – इस धारा में प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति आत्मपरक शैली में हुई है। रीतिबद्ध कवियों ने प्रेमी प्रेमिकाओं की हाव भावों की जैसी व्यंजना की है, वैसी व्यंजना यहाँ नहीं मिलती है। रीतिबद्ध काव्य यदि वस्तु प्रधान तो रीतिमुक्त काव्य व्यक्ति प्रधान। इस धारा के कवि अपने निजी जीवन में कहीं न कहीं चोट खाये अवश्य थे। यही कारण है कि रीतिमुक्त कवियों का वियोग वर्णन हृदय से निकली हुई सच्ची आवाज प्रतीत होती है।

1.6.3.3 वेदनायुक्त प्रेम दर्शन – इन कवियों के प्रेम दर्शन में वेदना की अधिकता है वह इन कवियों के यहाँ इतनी प्रखर होकर आई है कि संयोग में भी पीड़ित करती रहती है।

'यह कैसी संयोग न सूझि परै,
जो वियोग न क्यों हूँ, बिछोहतु है।'

परम्परावादी श्रृंगार वर्णन संयोग के हर्ष और वियोग के विवाद के अन्तर्गत हुआ है, अतः रीतिमुक्तक काव्य की व्यथा–प्रधानता उसे प्रचलित परम्परा से पृथक प्रमाणित करती है। इसका एक प्रमुख कारण यही है कि फारसी का प्रभाव इसके मूल में है। यहाँ भी प्रेम वेदना प्रधान हो कर ही अधिक वर्णित हुआ है, दूसरे तत्कालीन समाज की छाया इन कवियों के मन पर पड़ी। वस्तुतः इस काल के व्यक्ति में घुटन, पीड़ा और निराशा के भाव ही प्रमुख थे। यही कारण है कि असंतोष से युक्त इस काव्य में जिस प्रेम और उससे सम्बन्धी वेदना की अभिव्यक्ति हुई है वह अत्यन्त स्वाभाविक और विश्वसनीय प्रतीत होती है।

1.6.3.4 प्राचीन काव्य परम्पराओं का परित्याग – रीतिकालीन सम्पूर्ण साहित्य या तो अलंकारों की चमक–दमक से पूर्ण है या फिर नायिका भेद और उसी से सम्बन्धित अनेक कार्यकलापों का वर्णन प्रमुखता लिये हुए है। रीतिमुक्त कवियों ने इन दोनों ही प्रवृत्तियों से बचने का प्रयास किया है। इनके काव्य में न तो अलंकारों का अनावश्यक बोझ है न नायक–नायिकाओं के रीतिबद्ध स्वरूप का चित्रण है। ठाकुर ने अपनी रचनाओं में अलंकार रहित भाषा का प्रयोग किया है। घनानन्द ने अलंकारों का प्रयोग तो किया है किन्तु वे उनके भावों के अनुगामी हैं। ऐसा नहीं है कि भाव अलंकारों से दिशा निर्देश प्राप्त करते रहे हों। आलम और घनानन्द के काव्य में सैंकड़ों ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ पर अलंकार का निशान तक नहीं है फिर भी कविता अपनी मार्मिकता से पाठकों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ती चली गई है। इस प्रकार रीतिमुक्त कवियों के वर्ण्य–विषय और वर्णन शैली दोनों ही भिन्न हैं और वे काव्य परम्परा से मुक्त हैं।

1.6.3.5 भावात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति – इन कवियों की प्रेम सम्बन्धी धारणाएँ भी रीतिबद्ध कवियों से अलग है इन कवियों के प्रेम में पवित्रता, एकनिष्ठता, समर्पण, त्याग और उदारता का समावेश है। कहीं भी वासना की गंध का अनुभव नहीं होता है। प्रेमी प्रेम की पीड़ा को सहकर भी प्रिय की कुशल कामना करता रहता है। भले ही प्रिय न मिले किन्तु प्रेमी तो उसके लिये हर स्थिति में समर्पित रहेगा ही यह भाव समस्त रीतिमुक्त कवियों में दिखाई देता है। प्रेम की अनन्यता के भाव इन कवियों ने बड़ी दृढ़ता के साथ अपनाएँ हैं इसी कारण इनका प्रेम भावात्मक अधिक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.6.3.6 सहज व निश्छल भाषा का प्रयोग – जहाँ रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में अलंकारों की भरमार दिखाई देती है और शब्दों का तोड़–मरोड़ रूप दिखाई देता है, वही रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं में भाषा की सहजता है। शब्द भी अपनी स्वच्छन्द और आकर्षक गति के साथ आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। घनानन्द, ठाकुर, बोधा, आलम आदि सभी की भाषा में प्रेषणीयता, लाक्षणिकता और व्यंजना अपनी सूक्ष्म अनुभूतियों को सफल अभिव्यक्ति देने में समर्थ हुए। उनका काव्य अलंकारों का मुखापेक्षी नहीं है। भाषा, लोकोक्तियों व मुहावरों से सजी हुई होने के कारण रीतिमुक्त कवियों की भाषा में लोक जीवन का स्पर्श तो दिखाई देता है, उसमें प्रेषणीयता और अर्थवत्ता की चरम सीमा भी मिलती है। इस प्रकार रीतिमुक्त काव्य प्रेमानुभूति, वेदनानुभूति, विविध मनोदशाओं के अभिव्यंजन, सरस अनुभूतिमयता, भाषा की असाधारण विशेषताओं के कारण भविष्य की छायावादी कविता का पूर्व रूप दिखाई देता है।

1.7 निष्कर्ष

इस प्रकार रीतिकाल विषय, अभिव्यक्ति और जीवन दर्शन की दृष्टि से एक विशेष सीमा में बँधा हुआ दिखाई देता है। श्रृंगार के दोनों पक्ष जिस रूप में इस काल में अभिव्यक्ति पा सके, वैसी अभिव्यक्ति पूर्ववर्ती रचनाओं में नहीं मिलती है।

रीतिकाल के अध्ययन से सर्वप्रथम यह निष्कर्ष निकलता है कि इस समय वीर भावना तो प्रायः क्षीण हो गई थी और शेष सारे काव्य साहित्य पर कृष्ण काव्य का प्रभाव है जिसमें नारी सौन्दर्य की मादकता है, आध्यात्मिकता के स्थान पर श्रृंगार की ओर अधिक झुकाव है। धार्मिक श्रृंगार का आश्रय अवश्य किया है, किन्तु सम्पूर्ण वातावरण लौकिक श्रृंगार का है। रीतिकालीन साहित्य का सम्बन्ध दरबारों से है। उनका सृजन शासकों की रुचि के अनुसार हुआ है ये दरबार मुगल दरबारों के अधीन थे। कवियों का दृष्टिकोण सीमित और असंतुलित रहा है। जिस नारी का उन्होंने वर्णन किया है उसमें व्यक्तित्व का पूर्ण अभाव है। इनके काव्य में सामाजिक उत्थान की भावना भी नहीं पाई जाती है। उनकी दृष्टि जीवन के मौलिक प्रश्नों पर नहीं गई साथ ही सारा साहित्य काव्यशास्त्र की दृष्टि से लिखा गया है, क्योंकि इस काल में तथा इससे पूर्व संस्कृत के काव्य शास्त्र का अध्ययन होने लगा था। रीति कवियों ने हिन्दी साहित्य का विश्लेषण नहीं किया। इन्होंने संस्कृत साहित्य परम्परा का पालन करते हुए आचार्यत्व नहीं, अपनी कवित्व शक्ति की प्रस्तुति दी। इस काल में आचार्यत्व कम और कवित्व शक्ति अधिक मिलती है। काव्यांगों (भिखारीदासकृत 'वाक्य–निर्णय') रसों (केशवकृत 'रसिक–प्रिया') नायक–नायिका भेद (चिन्तामणिकृत 'श्रृंगार निर्णय) अलंकार (जसवंतसिंह का 'भाषा–भूषण') आदि के विवेचन का प्रधान आधार संस्कृत काव्यशास्त्र है और उसमें मौलिकता का अभाव है। केवल नायक–नायिका का रूप देने तथा मध्ययुगीन सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप प्रचलित बाल–विवाह, पर्दा, स्त्री सम्बन्धी आदर्श व पतन आदि कारणों से उसे अधिक विस्तार प्राप्त हुआ है। रीतिकालीन काव्यों में स्त्रियों की वेश–भूषा, आभूषणों, पुष्पों आदि जीवन रीतिकालीन कवियों ने या तो काव्य के सब अंगों का वर्णन किया है और या रस निरूपण ही किया है, किन्तु काव्यान्तर्गत दृश्य काव्य का विवेचन किसी भी कवि ने नहीं किया है। रीतिकालीन कवि प्रधानतः कवि थे, न कि आचार्य। कुछ कवियों को छोड़कर अधिकतर कवियों का सौन्दर्य कृत्रिम रहा है। रीतिकालीन कवियों ने नख–शिख, अष्टयाम, षटऋतु आदि के वर्णन भी किये हैं जिनका पूर्व रूप संस्कृत से मिलता है। भाषा की दृष्टि से बहुत कम कवि ऐसे हैं जिन्होंने ब्रज भाषा को सुव्यवस्थित रूप से काम में लिया है। इसका तो मूल कारण यह है कि इस काल के कवि बृजवासी नहीं थे। सम्यक् दृष्टि से विचार करने पर इस काल में त्रुटियाँ अधिक और विशेषताएँ बहुत कम हैं।

1.8 अभ्यास प्रश्नावली

1.8.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

एक वाक्य में उत्तर लिखिए–

1. रीति की तीन कौन सी काव्यधाराएं हैं?
2. रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन हैं?
3. उत्तर मध्यकाल नामकरण का औचित्य लिखिए।
4. रीतिकालीन कवियों ने नारी को किस रूप में देखा?
5. रीतिकालीन काव्य की प्रमुख भाषा कौन सी थी?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्वयं अध्ययन के प्रश्न–

1. रीतिबद्ध, रीतिमुक्त तथा रीतिसिद्ध के तीन धाराएं रीति की है।
2. केशव, चिन्तामणि रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं।
3. मध्यकाल के दो हिस्से है–पूर्व और उत्तर। पूर्वकाल भक्ति प्रधान है तो उत्तरकाल श्रृंगार। ऐसा अलगाने का काम उपरोक्त शब्द करना है। इसलिए उचित है।
4. रीतिकालीन कवियों ने नारी को विलास की वस्तु के रूप में देखा।
5. रीतिकालीन काव्य की प्रमुख भाषा ब्रज रही है।

उत्तर (बोध प्रश्न)–

1. (ग) 2. (ख) 3. (क)

अतिरिक्त अध्ययन–

1. डॉ. नगेन्द्र –हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. डॉ. लक्ष्मीलाल वैसागी–हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास
3. डॉ. शिवकुमार शर्मा–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–2 : केशवदास

संरचना

2.0 कवि परिचय

2.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

2.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

2.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

2.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

2.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

2.3 सारांश

2.4 अभ्यास प्रश्नावली

2.0 कवि परिचय

केशवदास तमाम विवादों के बावजूद भी हिन्दी रीति साहित्य के प्रथम आचार्य हैं, क्योंकि केशवदास कवि शिक्षा और रसिक शिक्षा के आचार्य हैं। जिसका प्रभाव स्वयं चिन्तामणि पर भी पड़ा है। महाकवि केशवदास का जन्म संवत् 1618 में हुआ और मृत्यु 1680 के आसपास हुई। इनके पिता का नाम काशीनाथ और पितामह का नाम कृष्णदत्त था। ये ओरछा–नरेश महाराज रायसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह के सभा पंडित थे। इनका परिवार संस्कृत निष्ठ था। संस्कृत भाषी परिवार में जन्म लेकर प्रचलित भाषा में कविता करने में इन्हें काफी जोर आता था –

'भाषा बोलि न जानिही, जिनके कुल के दास।
भाषा–कवि भी मन्दमति, तेहिं कुल केसवदास।।'

संस्कृत भाषा और साहित्य की चमत्कार प्रधान अंतिम पीढ़ी से सम्बद्ध केशवदास का ध्येय भाषा में वह सारी सामर्थ्य और शक्ति पैदा करना था, जिसे वे संस्कृत में समझते थे। इसका परिणाम "कविप्रिया" और रसिकप्रिया है। केशव में अर्थ के स्थान पर शब्द को अधिक महत्त्व दिया और साहित्य के क्षेत्र में संदेश और निर्देश को प्रायः बाहर करने का कार्य किया। उन्होंने कलात्मकता को मूल्यवत्ता प्रदान की।

बिहारी के पिता केशवराय से इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं था। बेतवा नदी के किनारे के निवासी केशव की प्रतिष्ठा उनके जन्मकाल में ही हो गई थी। महाराज इन्द्रजीत सिंह द्वारा प्राप्त सम्मान और कवियों द्वारा उनका स्मरण उनके महत्त्व का ही प्रमाण है। डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने इनको वैश्य लिखा है और डॉ. जगदीश गुप्त ने इनके भाई के नाम को इनके पिता का नाम बताया है। इनके भाई का नाम बलभद्र था जो स्वयं एक अच्छे कवि थे। केशव निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे जो इनके परिवर की परम्परा लगती है।

दरबार संस्कृत की परवर्ती काव्य परम्परा तथा काव्य शिक्षा का प्रभाव केशव पर भी व्यापक रूप से पड़ा। आश्रयदाता की प्रशंसा उन्हें भी करनी पड़ी। संस्कृत के परवर्ती चमत्कार प्रधान ग्रंथों का आधार लेकर उन्हें 'आदर्श' के रूप में मानस में निबद्ध करते हुए हिन्दी काव्य प्रेमियों के लिये रचना का आदर्श और सिद्धान्त प्रस्तुत करना केशव का उद्देश्य और कार्य दोनों ही था। इसमें केशव की अहंतुष्टि भी थी। वे सहज ही हिन्दी कवियों में अपने पाण्डित्य के बल पर और दरबार में अपने कौशल और चमत्कार के कारण पद, अर्थ और यश पाने में सफल हुए। केशव ने इस पूर्ति के लिये अपने ज्ञान और कौशल का पूरा–पूरा उपयोग किया। 'काव्यादर्श', 'शृंगारतिलक', 'साहित्य दर्पण', 'काव्यकल्पलता', 'अलंकार शेखर' व 'कविकल्पलतावृत्ति' को आधार मानकर केशव ने संस्कृत की काव्य पद्धति या रीति को 'कविप्रिया' के द्वारा हिन्दी में अवतरित किया।

'केशव अलंकार' को काव्य के भूषण रूप में स्वीकार करते हैं और इसीलिये वे अपने समय के संस्कृत पण्डितों की इसी धारणा से सहमत थे, कि काव्य की शोभा अलंकार है। केशव ने सामयिक रुचि और प्रवृत्ति के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुसार दानवीर, धर्मवीर आदि वीर रस के भेद किये हैं तथा भानुदत्त की "रसरंगिणी" का आधार ग्रहण करके नायिकाओं के नवीन भेद भी प्रस्तुत किये, किन्तु इन भेदों–प्रभेदों के पीछे तात्त्विक दृष्टि का अभाव रहा है। क्योंकि विवेकहीन मौलिकता का कोई महत्त्व नहीं होता है। इन सारे प्रयासों के मूल में केशव का लक्ष्य प्रायः सूक्ष्मातिसूक्ष्म सिद्धान्त और भेद की कल्पना करके प्रस्थान भेद को स्पष्ट कर देना था।

केशवदास की रचनाओं में 'छन्दमाला', 'रत्नावली', 'जहाँगीरजस चन्द्रिका' और 'वीरसिंह देव चरित्र' का भी उल्लेख है, परन्तु इनकी ख्याति का आधार 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'रामचन्द्रिका' ही है। इनकी अलंकार प्रियता, चमत्कृति और उक्ति वैचित्र्य आदि इन पुस्तकों में व्यापक रूप से विद्यमान है। वृद्धावस्था में बाबा शब्द सुनकर होने वाली मर्मान्तक पीड़ा उनकी रसिकता का ही पर्याय है।

वस्तुतः, केशव ने जो भी कुछ लिखा उसमें 'सुवरण' । (सुवरण का यहाँ अर्थ है सटीक वर्णमाला) श्लेष में अर्थ है– सुवर्ण और गोरा रंग। की खोज थी, परन्तु सुबरन का तात्पर्य यहाँ कदाचित् उक्ति के संदर्भ में अर्थवान है। रीतिकाल की कई–कई कविताओं से केशव के भावमय प्रसंग और उक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। मुद्रा, विरोधाभास, श्लेष और यमक अलंकार का प्रयोग चमत्कृति और वैदग्ध्य के लिये हुआ है। बाणभट्ट की भाँति दण्डकारण्य के वर्णन में परिसंख्या का प्रयोग किया गया है। रुपक एवं संदेह अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त चमत्कार पूर्ण बन गया है। यथा –

चढ्यो गगन तरु धाय, दिनकर वानर अरुनमुख।
कीन्हों झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन।।

अलंकार प्रियता का प्रभाव, जैसा कि पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल का कथन है, केशव के पात्रों पर भी पड़ा है। जनकपुर के स्त्री–पुरुष, वनमार्ग के लोग, जलदेवियाँ और स्वयं श्रीराम भी अलंकार युक्त भाषा बोलते हैं। केशव को सभी प्रकार की शास्त्रीय पद्धतियों का परिचय था। इसीलिये रीतिकाल के सभी कवियों से अधिक कल्पना शक्ति केशव में थी।

केशव रीतिकालीन कवियों के मुख्य प्रेरणास्रोत माने गये हैं। एक मार्गदर्शक के रूप में उनका योगदान स्वीकार ही नहीं अपितु शिरोधार्य किया जाता है। आचार्यत्व उनके कवि रूप को अधिक समर्थ बनाता है।

2.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(रामचन्द्रिका से चयनित अंश)

(1)
सरस्वती वन्दना

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि–कहि हारे सब, कही न केहुँ लई।
भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहुँ न बखानी काहूँ पै गई।
वर्णै पति चारिमुख, पूत वर्णै पाँच मुख,
नाती वर्णै षट मुख, तदपि नई–नई।

शब्दार्थ – बानी = सरस्वती, जगरानी = राजराजेश्वरी, मति = विवेक, पति = चारमुख वाले ब्रह्माजी, पूत = पंचमुखी शिवशंकर, नाती = छः मुख वाले कार्तिकेय, तदपि = फिर भी।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति रस तरंगिणी' के 'केशवदास' नामक पाठ के 'सरस्वती वन्दना' से उद्धृत है, जिसमें कवि केशव ने ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की स्तुति महिमा की अत्यन्त रोचक स्थिति को अभिव्यक्ति दी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्याख्या – कवि केशवदास विद्या की अधिष्ठात्री माँ सरस्वती की स्तुति करते हुए कहते हैं कि सरस्वती तो विश्वेश्वरी है, राजराजेश्वरी हैं इनकी महिमा का वर्णन करना आसान नहीं है अर्थात् इस संसार में कोई भी इतना प्रखर बुद्धि या समृद्ध विवेक वाला नहीं है जो वाणी की देवी के यश व महिमा का वर्णन कर सके, साधारण व्यक्ति की तो बात ही नहीं की जा सकती है। देवता, सुप्रसिद्ध योगी, महान मुनिगण और चिरजीवी तपस्वीजन सभी माँ वीणावादिनी की महिमा का गुणगान करते–करते थक गये, किन्तु आज तक कोई भी इनकी उदारता व महानता वर्णन करने में सफल नहीं हुआ। अतीत में भू–लोक वासी श्रेष्ठ मानवों ने इनकी महानता का वर्णन किया है और वर्तमान में भी कर रहे हैं और भविष्य में भी इनकी प्रशस्ति गाते रहेंगे। किन्तु आज तक कोई भी सफलता प्राप्त नहीं कर सका। हम और किसी की या मानव जैसे तुच्छ विवेकी प्राणी की क्या कहें स्वयं सरस्वती देवी भी इनकी महिमा का सही वर्णन करने में सफल नहीं हो सके। स्वयं परम् पिता ब्रह्माजी जो इनके पतिदेव हैं, उन्होंने चार मुखों से और देवादिदेव महादेव नाथ जो इनके पुत्र हैं, ने पाँच मुखों से तथा स्वामी कार्तिकेय जो इनके नाती हैं, ने छः मुखों से इनकी महिमा का वर्णन करने का प्रयास किया किन्तु विश्वेश्वरी माँ सरस्वती का महात्म्य फिर भी नित–नया ही प्रतीत होता है अर्थात् उनकी महिमा तो सदैव वर्णनातीत थी, है और रहेगी ही।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में विद्या की देवी की अनिर्वचनीयता को उद्घाटित किया है।
2. सम्पूर्ण छन्द में सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. 'कहि–कहि हारे' में पुनरुक्ति अलंकार है।
4. मनहरण कवित्त छन्द की गति व यति अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है।
5. 'भावी, भूत और वर्तमान' में समय की गति है।
6. महाकाव्य की रचना करते समय सर्वप्रथम मंगलाचरण के रूप में कवि श्री गणेश एवं सरस्वती का स्मरण करने के पश्चात अपने आराध्य का स्मरण करता है। आचार्य केशव ने इस दृष्टि से भारतीय महाकाव्यों की परम्परा का अनुकरण किया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी मंगलाचरण में 'बन्देवाणी विनयक्रम' कहा है।

(2)

राम वन्दना

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि–
पूरण बतावें न बतावें और उक्ति को।
दरशन देत जिन्हें दरशन समुझै न,
नेति–नेति कहै बेद छाँडि आन युक्ति को।
जानि यह केशोदास, अनुदिन राम–राम,
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि, गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को।

शब्दार्थ – पूरन = सम्पूर्ण, परिपूरन = परिपूर्ण, उक्ति = कथन, दरशन = षट्शास्त्र (दर्शनशास्त्र), नेति = न इति (जिसका कोई अन्त नहीं), आन = अन्य, अनुदिन = प्रतिदिन, पुनरुक्ति = पुनरावृत्ति दोष, अणिमा = वह सिद्धि जिसकी सहायता से छोटे से छोटा रूप धारण किया जा सके, मुक्ति = मोक्ष या निर्वाण अर्थात् जीवन–मरण से मुक्ति।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रति रस तरंगिणी' के केशवदास द्वारा विरचित 'रामचन्द्रिका' के अंश से सम्बन्धित है, जिसमें कवि ने प्रभु श्रीराम की अनिर्वचनीय महिमा का सुन्दर वर्णन किया गया है। इस अंश में कवि ने अपनी भक्ति भावना से अपने आराध्य श्रीराम को अनादि–अनन्त बताकर उनकी महत्ता को प्रतिपादित किया है।

व्याख्या – महाकवि केशव प्रभु श्री राम की वन्दना करते हुए कहते हैं कि सम्पूर्ण पुराणों में श्री राम को ही पूर्ण पुरुष माना है। इसके अतिरिक्त कोई भी ऐसा कथन नहीं है जो राम की महानता के विषय में परिपूर्ण हो अर्थात्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

श्री राम पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हैं। कवि राम की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस राम को सांख्य, योग, वेदान्त आदि दर्शनशास्त्र भी नहीं समझ सकें और स्पष्ट नहीं कर सके, वे राम अपने भक्तों के लिये सहज और सुलभ हैं। वेद भी भेद युक्ति को छोड़कर सदैव नेति–नेति कह कर उनका वर्णन करते हैं अर्थात् जिसका कोई प्रारम्भ और कोई अन्त नहीं है। अतः कवि केशव ने भी इन सभी भ्रम जालों से बचकर निरन्तर राम–राम ही जपते रहते हैं। वे राम–राम की पुनरुक्ति करते हुए किसी प्रकार पिष्ट–प्रेषणता की चिन्ता भी नहीं करते हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि राम का रूप चिन्तन उन्हें अणिमा सिद्धि देने वाला, राम का गुणानुवाद गरिमा सिद्धि देने वाला और भक्ति महिमा सिद्धि व प्रभु राम के नाम का स्मरण सभी प्रकार के सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने वाला है।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में राम की नवधा भक्ति का परिचय प्राप्त होता है। (नवधा भक्ति में श्रवण, स्मरण, गुण–कीर्तन, चरण–सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन का समावेश होता है)
2. प्रस्तुत अंश में सिद्धियों का जिक्र किया है ये आठ प्रकार की होती हैं, यथा – अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व एवं ईशत्व। जिनमें कवि ने श्रीराम की कृपा से चार सिद्धियों की प्राप्ति का सुन्दर वर्णन किया है।
3. प्रथम पंक्ति में अनुप्रास अलंकार तथा तृतीय पंक्ति में यमक अलंकार (दर्शन = साक्षात्कार, दर्शन शास्त्र) का प्रयोग हुआ है।
4. नेति–नेति, राम–राम में पुनरुक्ति है।

(3)
पंचवटी वर्णन

सब जाति फटी दुःख की दुपटी, कपटी न रहै जँह एक घटी।
निघटी रुचि मीच घटी हूँ घटी, जग जीव यतीन की छूटि तटी।।
अघ ओघ की बेरि कटी बिकटी, निकटी प्रकटी गुरज्ञान गटी।
चहुँ औरन नाचति मुक्ति नटी, गुण धूरजटी वन पंचवटी।।

शब्दार्थ – सब जाति = पूरी तरह से, दुपटी = दुपट्टा या चादर, घटी = पल भर, निघटी = निश्चय ही, जती = तपस्वी, गटी = गठरी, बेरी = बेडियाँ, मीच = मृत्यु, तटी = समाधि अवस्था, अघ–ओघ = पाप की राशि, नटी = नर्तकी, धूरजटी = महादेव।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति रत्न तरंगिणी के केशवदास द्वारा विरचित 'रामचन्द्रिका' के 'पंचवटी वर्णन' खण्ड से उद्धृत है। प्रस्तुत अंश में शेषनाग के अवतार, प्रभु राम के अनुज लक्ष्मण द्वारा पंचवटी की अनुपम प्राकृतिक सुषमा का मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या – जब राम, लक्ष्मण और जानकी वन गमन के दौरान पंचवटी पर कुछ समय के लिये रुके तो वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य इतना मन भावन था कि तीनों वनवासियों की सम्पूर्ण थकान व कष्ट क्षण भर में दूर हो गये। लक्ष्मण वहाँ की प्राकृतिक सुषमा की तुलना भगवान शंकर से करते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार भगवान शंकर के दर्शन पाकर मनुष्य के सारे दुःख तत्काल दूर हो जाते हैं उसी प्रकार पंचवटी में आते ही यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर ऐसा लगता है, जैसे सम्पूर्ण दुःखों की चादर फट गई है, अर्थात् सभी प्रकार के कष्ट समाप्त हो गये हैं। यहाँ पर आते ही प्राणी का मन पूरी तरह से शुद्ध, पवित्र और निर्मल हो जाता है, उसके मन में व्याप्त सम्पूर्ण सांसारिक विकारों का शमन हो जाता है। उसके मन का छल–कपट निकल जाता है। ऐसा लगता है, मानों कपटी व्यक्ति तो एक पल के लिये भी यहाँ पर नहीं टिक सकता है। भगवान् शंकर के दर्शन पाने के पश्चात् जैसे मनुष्य मोक्ष की कामना छोड़ देता है तथा वह ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिये समाधिस्थ होने की इच्छा नहीं करता है, उसी प्रकार पंचवटी के पावन परिवेश में आकर मानव जीने की तमन्ना रखने लगता है और मरने से डरने लगता है। यहाँ तक कि तपस्वियों अथवा यतियों की समाधि अवस्था भी छूट जाती है अर्थात् पंचवटी के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर मानव की सभी भौतिक एवं आध्यात्मिक कामनाएँ लुप्त हो जाती है और उसके मन में असीम शांति प्राप्त होने लगती है। लक्ष्मणजी कहते हैं कि जैसे ही व्यक्ति पंचवटी में आता है, वैसे ही मानव के पापों की बेड़ियाँ कट जाती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है और शीघ्र ही भारी ज्ञान की गठरी प्रकट हो जाती है। अर्थात् पंचवटी में आने पर व्यक्ति पाप बन्धनों से मुक्त हो जाता है तथा वह ज्ञान चेतना की ओर आकृष्ट होकर महाज्ञानी बन जाता है। इस प्राकृतिक सौन्दर्य में मुक्ति की बलवती इच्छा नटी के समान चारों ओर नाच रही है अर्थात् यहाँ का वातावरण सब प्रकार की सांसारिक चिन्ता एवं तृष्णा से मुक्ति दिलाने वाला है। इस प्रकार इस पंचवटी में स्वयं शंकर भगवान के सभी गुण विद्यमान हैं यह वन निश्चय ही महादेव नाथ के समान है। शिव दर्शनोपरान्त जिस प्रकार पाप शामित हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार की अनुभूति इस पंचवटी में आकर भी होने लगती है।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में अनुप्रास और यमक अलंकार का प्रयोग विशेषतः दृष्टव्य है।
2. प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन में अनुप्रास के प्रयोग से भावगत् सौन्दर्य की हानि हुई है।
3. अवतरण में दुर्मिला सवैया छन्द का प्रयोग हुआ है।

नोट : इस छन्द के प्रत्येक चरण में आठ सगण होते हैं और बारहवें वर्ण पर यति होती है।

(4)
हनुमान लंका गमन

हरि कैसो वाहन कि विधि कैसो हेम हंस,
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक कों।
तेज को निधान राम–मुद्रिका–विमान कैधौं,
लक्ष्मण को बाण छुट्यो रावण निशंक कों।
गिर गजगंड तैं उडान्यों सुबरन अलि,
सीता पद पंकज सदा कलंक रंक कों।
हवाई–सी छूटी केसोदास आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक कों।

शब्दार्थ – कैसो = के समान, विधि = ब्रह्माजी, हेम हंस = स्वर्ण हंस, नभपाहन = आकाश रूपी पाषाण, निधान = भण्डार, गिरिगजगंड = पर्वत रूपी हाथी का कुम्भस्थल, अलि = भंवरा, हवाई = आतिशबाजी।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति रस तरंगिणी' के केशवदास द्वारा रचित रामचन्द्रिका के अंश 'हनुमान लंका गमन' से अवतरित है जिसमें कवि ने हनुमानजी के लंका गमन के समय का सुन्दर चित्रण किया गया है। सुन्दर पर्वत से लंका की ओर छलांग लगा रहे पवनपुत्र श्री हनुमान की अनेक उपमाओं से उनके सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि केशवदास कहते हैं कि जब उन्होंने पर्वत पर से लंका की ओर छलांग भरी तो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वे भगवान् श्री हरिविष्णु के वाहन गरुड हों, अथवा स्वयं ब्रह्मा के वाहन स्वर्ण हंस हों, आकाश रूपी कसौटी (पत्थर) पर स्वर्ण रेखा सी खींचते हुए तीव्रता से आगे बढते जा रहे हों। शक्ति, शौर्य और संयम के तेज से युक्त पवनपुत्र श्री हनुमान ऐसे लग रहे थे मानों उन्हें प्रभु श्रीराम के द्वारा दी जाने वाली अंगूठी ही विमान बन गई हो और वे उसी पर सवार होकर उड़ गये हों अथवा ऐसा लग रहा था मानों अहंकारी लक्ष्मणजी ने कोई तीव्र बाण छोड़ा हो, अथवा ऐसा लग रहा था मानों पर्वत रूपी हाथी के कुम्भ स्थल से स्वर्णिम भ्रमर माता जानकी के चरण कमलों की शरण पाने के लिये उड़ कर आकाश में चला जा रहा हो। अथवा ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों किसी ने तेज आतिशबाजी की हो या तोप से निकला हुआ आग का गोला किसी ने लंका की ओर छोड़ा हो।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा अलंकार का सामूहिक प्रयोग किया गया है।
2. भाषा रोचक और कर्णप्रिय है।
3. गति, यति की दृष्टि से दण्डक छन्द अति प्रशंसनीय बन पड़ा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(5)
सीता दर्शन

धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सों काढि डारी।।
सदा राम नामै रटै दीन बानी।
चहुँ ओर हैं राकसी दुःख दानी।।
ग्रसी बुद्धि–सी चित्त चितानि मानौ।
किंधौं जीभ दंतावली में बखानो।।
कींधौं घेरिकै राहु–नारीन लीनी,
कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनी।।

शब्दार्थ – धरे = धारण किये हुए, बेनी = चोटी, सारी = साड़ी, मैल = गन्दी, राकसी = राक्षसियाँ, चारु = सुन्दर, पीयूष = अमृत, मानी = सनी हुई, ग्रसी = ग्रस्त।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति रस तरंगिणी' के केशवदास द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के हनुमान लंकागमन प्रसंग से अवतरित है जिसमें अशोक वाटिका में सीताजी की स्थिति का वर्णन किया है।

व्याख्या – जब संकट मोचन सियाराम भक्त हनुमान लंका में पहुँचे और अशोक वाटिका में माता जानकी को देखा तो वे अत्यन्त दुःखी हुए। सीताजी उस समय विरह–व्यथा के कारण काफी परेशान थी उन्हें कोई सुधि–बुधि नहीं थी। उनके बिखरे हुए बाल जो एक चोटी के रूप में सिर पर थे और उन्होंने एक मैली सी साड़ी पहन रखी थी। वे उस समय ऐसी लग रही थी मानों किसी ने कमलिनी को कीचड़ या तालाब में से निकाल कर बाहर फैंक दिया हो। अशोक वाटिका में रहकर सीताजी हमेशा अपनी दीन वाणी से प्रभु श्री राम के नाम को रटती रहती थीं वहाँ पर उनको चारों ओर से रावण की अनुचरी राक्षसियों ने घेर रखा था अर्थात् राक्षसियाँ सीता जी की पहरेदारी करने इससे चारों ओर बैठी हुई थीं। वे हमेशा किसी न किसी तरह सीता जी को अनेक कष्ट पहुँचाती रहती थी अर्थात् सीताजी वहाँ काफी परेशान थीं उस समय ऐसा लग रहा था मानों उनका विवेक बिल्कुल निष्क्रिय सा हो गया हो और उनका मन अनेक प्रकार की चिन्ताओं से ग्रसित हो गया हो। जिस प्रकार दाँतों के बीच में घिरी हुई जीभ कुछ भी करने में असमर्थ रहती है, वैसे ही राक्षसियों के बीच में सीताजी की विवेक शक्ति भी काम नहीं कर रही थी। और उनकी सोच भी पराधीन बन गई थी। वे उस समय ऐसी लग रही थी मानों अमृत युक्त चन्द्रमा की सुन्दर कलाओं को राहू की पत्नियों ने घेर लिया हो और उसी तरह उन्हें कष्ट दे रही थी।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने अशोक वाटिका में सीताजी की स्थिति का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।
2. कीचड से निकाल दी गई कमलिनी, दाँतों के बीच जीभ, राक्षसी रूपी राहू पत्नियों के बीच सीता रूपी चन्द्रमा में उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त व रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. अनुप्रास अलंकार का भी प्रयोग किया गया है।
4. पद योजना भावानुकूल है।

(6)
सीता हनुमान संवाद

कर जोरि कह्यौ, हौं पवन–पूत।
जिय जननि जानु, रघुनाथ–दूत।।
रघुनाथ कौन? दशरत्थ नन्द।
दशरत्थ कौन? अज तनय चन्द।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'केहि कारण पठए यहि निकेत?'
निज देन लेन संदेश हेत।।
गुन रूप सील सोभा सुभाऊ।
'कछु रघुपति के लच्छन बताउं।।'

शब्दार्थ – पौनपूत = पवन पुत्र, जिय = ह्रदय, निकेत = घर, हेत = के लिये।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति रस तरंगिणी' केशवदास द्वारा विरचित 'रामचन्द्रिका' के 'सीता हनुमान संवाद' से अवतरित है जिसमें माता जानकी हनुमान जी से कुछ पूछ रही है और हनुमान जी उन्हें अपना परिचय दे रहे हैं।

व्याख्या – जब हनुमान जी माता सीता की खोज करते–करते लंका की अशोक वाटिका में पहुँचे और वहाँ पर सीता जी को पाया तो हनुमान जी ने बड़े ही विनम्र भाव से माता सीता को अपना परिचय देते हुए कहा कि 'मैं पवन पुत्र हूँ हे मात! आप मन से और ह्रदय से मुझे प्रभु रघुनाथ जी का ही दूत मानो। तब सीताजी ने पूछा कि कौन रघुनाथ? तब हनुमान जी ने कहा कि रघुनाथ जी दशरथ नन्दन हैं। इस पर सीताजी ने पूछा कि कौन दशरथ? तब हनुमानजी ने कहा कि 'अज के पुत्र दशरथ। सीता जी ने हनुमान जी से फिर से प्रश्न किया कि तुम्हें यहाँ पर क्यों भेजा गया हैं, अर्थात् तुम यहाँ पर क्यों आये हो? तब हनुमान जी ने कहा कि हे माता! मैं आपकी खोज में यहाँ तक आया हूँ और आपको प्रभु रामचन्द्र का संदेश देने व आपका संदेश वहाँ तक लाने के लिये मुझे भेजा गया है। इस पर भी माता जानकी को विश्वास नहीं हुआ तब उन्होंने पुनः पूछा कि यदि तुम प्रभु राम के दूत हो तो उनके स्वभाव, शील, शोभा, गुण, रूप आदि के बारे में बताओ।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में सीता व हनुमान का संवाद प्रकट किया गया है, जिसमें प्रश्नोत्तर शैली को काम में लिया गया है।
2. प्रश्नोत्तर शैली द्वारा कथानक को गति प्रदान की जाती है।
3. सीताजी द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों में उनके सरल स्वभाव का परिचय मिलता है।
4. अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।

(7)
हनुमान–रावण संवाद

'रे कपि कौन तू? अच्छ को घातक दूत बली रघुनन्दन जू को।'
'को रघुनन्दन रे?' 'त्रिसरा–खरदूषण–दूषण भूषण भू को।'
'सागर कैसे तरयो?' 'जस गोपद' 'काज कहा?' 'सिय चोरहि देखौं।'
'कैसे बंधायौ?' जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखौ।'

शब्दार्थ – अक्ष = अक्षय कुमार, घातक = मारने वाला, भूषण = अलंकार, गोपद = गाय के खुर का निशान, पातक = पाप, छुई = निरखी, सोवत = सोती हुई।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति रस तरंगिणी' के केशवदास द्वारा विरचित 'रामचन्द्रिका' के 'हनुमान–रावण संवाद' से अवतरित है। स्पष्ट किया है कि जब मेघनाद ने ब्रह्म–पाश में बाँधकर हनुमान को लंकापति रावण के समक्ष प्रस्तुत किया तो रावण और हनुमान के मध्य वार्तालाप होने लगी।

व्याख्या– लंका नरेश रावण ने रामदूत हनुमान जी से पूछा कि हे वानर! तू कौन है? तब हनुमान ने बड़े आत्मविश्वास से उत्तर देते हुए कहा कि मैं वही हूँ जिसने तुम्हारे पुत्र अक्षय कुमार का वध किया है तथा परम पराक्रमी श्री रघुनन्दन जी का संदेश वाहक हूँ। रावण ने पुनः प्रश्न किया कि – रघुनन्दन कौन है? हनुमान ने आश्चर्य व्यक्त किया कि जैसे वह श्री रघुनन्दन को जानता ही नहीं है और कहा कि श्री रघुनन्दन वे ही हैं, जिन्होंने तुम्हारे पराक्रमी त्रिशिरा, खर और दूषण का वध किया था और जो सम्पूर्ण संसार की शोभा बढ़ाने वाले आभूषण हैं। रावण ने पुनः पूछा कि तुमने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इतने विशाल सागर को कैसे पार किया? हनुमान ने कहा कि इस विशाल समुद्र को तो मैंने गाय के खुर के निशान की भाँति बहुत ही आसानी से पार कर लिया। रावण ने पुनः हनुमान जी से प्रश्न किया कि तुम यहाँ पर किस प्रयोजन से आये हो? तब हनुमान जी ने कहा कि मैं यहाँ पर माता जानकी के चोर का पता लगाने आया हूँ। रावण ने फिर से प्रश्न किया कि तुम यदि इतने ही बहादुर हो तो बन्दी कैसे बन गये हो। हनुमान बोले कि जब मैं माता सीता का पता लगाता हुआ तुम्हारे महलों में होकर गुजर रहा था तो मैंने तुम्हारी स्त्री को निर्वस्त्र सोती हुई देख लिया था उसी के पाप स्वरूप मुझे बन्दी बनना पड़ा है। हमारे नियमानुसार यदि कोई पर स्त्री को निर्वस्त्र देख ले तो वह पापी होता है और उस पाप का उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। अतः इस पापकर्म के फलस्वरूप मुझे भी बन्दी बनना पड़ा है।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में केशव ने प्रश्नोत्तर–शैली में रावण–हनुमान संवाद का वर्णन किया है।
2. अवतरण में हनुमान द्वारा पाप–फल का कथन कवि कल्पना का चमत्कार है।
3. अवतरण में अनुप्रास, यमक, आक्षेप अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।
4. अवतरण में विजया सवैया छन्द की गति यति है।
5. पद योजना अत्यन्त प्रशंसनीय है।

(8)
हनुमान–राम चर्चा

भौरनिं ज्यों भ्रमत रहति बन बीथिकनि,
हंसिनि ज्यों मृदुल मृणालिका चहति है।
हरिनि ज्यों हेरति न केसरि के काननहिं,
केकी सुनि ब्याल जों बिलान हो चहति है।
पीउ–पीउ रटति रहति चित चातकी ज्यों,
चंद चितै चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है।
सुनहुँ नृपति राम विरह तिहारे ऐसी,
सुरति न सीता जू की मूरत गहति है।

शब्दार्थ – भौरनिं = भ्रमरी, मृदुल = कोमल, मृणालिका = कमल–नाल, केसरी = सिंह, काननहि = वन में, केका = मोर की आवाज, ब्याल = नागिन, सूरति = स्वाभाविक रूप, मूरत = मूर्ति।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति रस तरंगिणी' के केशवदास द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'हनुमान–राम चर्चा' प्रसंग से उद्धृत है। जब हनुमान जी ने अशोक वाटिका में माता जानकी के प्रथम दर्शन किये तो उनकी विरह अवस्था को देखकर रामदूत हनुमान व्याकुल हो गये। जब राम ने माता जानकी की स्थिति के समाचार पूछे तो हनुमान जी ने विरह ग्रस्त सीता जी का आकर्षक वर्णन राम के सम्मुख किया।

व्याख्या – हनुमान जी माता जानकी के समाचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु। जिस प्रकार कोई भ्रमरी वन–मार्ग में दिशाहीन होकर भ्रमण करती रहती है, उसी प्रकार से सीता जी का विकल मन आपकी मधुर–स्मृति रूपी वन में दिशा विहीन भ्रमण करता रहता है। जिस प्रकार हंसनी को सुकोमल कमल नाल की प्रबल चाहत होती है, उसी प्रकार माता जानकी को भी कमल–नाल के समान आपकी बाहों का आश्रय चाहिये। जिस प्रकार कोई मृगी उस वन में नहीं जाना चाहती जिसमें वनराज सिंह निवास करता हो। ठीक उसी प्रकार माता जानकी भी अशोक वाटिका में रहकर केशरी (सिंह) की ओर भूलकर भी देखना पसन्द नहीं करती है। क्योंकि आपके वियोग में वह सब उन्हें काफी पीड़ादायक लगता है। जिस प्रकार मोर की आवाज को सुनकर नागिन बिल में घुस जाती है उसी प्रकार माता जानकी का मन भी मोर की आवाज सुनकर आक्रान्त व उदास होकर अपने आप में सिमट कर रह जाता है। चातकी की तरह से वे भी प्रति पल पिऊ–पिऊ अर्थात् प्रिय राम को रटती रहती है और एक क्षण के लिये भी वे आपके नाम को नहीं भूलती हैं। जिस प्रकार चाँद को देखकर चकवी अतिशय व्यथा से व्यथित होकर चुप हो जाती है, ठीक वैसे ही माता जानकी भी चन्द्रिका को देखकर व्यथित होकर शान्त बैठी रहती है। अतः हे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रभु श्री राम! आपके विरह में माता जानकी की स्थिति इतनी कारुणिक हो गई है कि वे अपनी सुध–बुध भी खो बैठी हैं और अपनी स्वाभाविक दशा को ग्रहण नहीं कर पा रही हैं। अतः वे आठों प्रहर विरह व्यथा से ग्रसित ही रहती हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने विरह व्यथा का समीक्षात्मक वर्णन किया है।
2. अवतरण में अनुप्रास, उल्लेख और उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
3. अवतरण में धनाक्षरी छन्द का प्रयोग है।

(9)
राम–रावण युद्ध

इन्द्र श्री रघुनाथ को रथहीन भूतल देखि कै।
बेगि सारथी सौं कहेउ रथ जाहि लै सुविशेष कै।।
तून अच्छय वाण स्वच्छ अभेद लै तनत्रान को।
आइयो रणभूमि में करि अप्रेमय प्रमान को।।
कोटि भाँतिन पौन तें मन तें महा लघुता लरै।
बैठिके ध्वज अग्र श्री हनुमंत अंतक ज्यों हँसै।।
रामचन्द्र प्रदच्छिना करि, दच्छ ह्वै जब ही चढें।
पुष्प वर्षि बजाय दुंदुभि देवता बहुधा बढे।।
राम कौ रथ मध्य देखत क्रोध रावण के बढ्यो।
बीस बाहुन की सराबलि व्योम भूतल सों मढयो ।।
सैल ह्वै सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे।
ऋच्छ बानर भेद तच्छन लच्छधा छतना करे।।

शब्दार्थ – भूतल = भूमि पर, बेगि = तुरन्त, सारथी = रथचालक, सुविशेष = विशेष रूप से, तून = तरकश, अच्छय = नष्ट न होने वाला, अभेद = जिसका भेदन न किया जा सके, तनत्रान = कवच, अप्रमेय = माप रहित, पौन = पवन, अन्तक = यमराज, दच्छ = समर्थ, सरावलि = बाणों की पंक्ति, सैल = पर्वत, सिकता = रेत कण, तच्छन = उसी पल।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति रस तरंगिणी' के केशव द्वारा विरचित 'रामचन्द्रिका' के राम–रावण युद्ध प्रसंग से अवतरित है जिसमें कवि ने देवराज इन्द्र द्वारा श्रीराम को अपना रथ देने तथा वानर सेना द्वारा राक्षस सेना का विनाश करने का रोचक वर्णन किया है।

व्याख्या – जिस समय श्रीराम ने लंका पहुँच कर रणभूमि में लंका नरेश रावण को युद्ध के लिये ललकारा तो दोनों योद्धा आमने–सामने एक दूसरे की ओर युद्ध के लिये उद्यत हो गये। उस समय रावण अपनी चतुरंगी सेना के साथ एक भव्य रथ पर सवार था और प्रभु राम बिना रथ के ही पृथ्वी पर नंगे पैरों आगे बढ़ रहे थे तब देवराज इन्द्र ने तत्काल अपने सारथी को बुलाया और आदेश दिया कि इसी पल मेरे रथ को विशेष रूप से युद्ध के अनुसार सजा कर ले आओ। उस रथ में ऐसे तरकश रखो, जिसमें अक्षय बाण हों, स्वच्छ हों और जिनमें शरीर की रक्षा करने वाले योग्य कवच हों। तुम एक ऐसा रथ सजाकर लाओ जो अद्वितीय हो जो हवा में निरन्तर गतिशील वजन से भी हल्का हो अर्थात् ऐसा रथ हो जो युद्ध क्षेत्र में अप्रतिहत रहे और जिसमें सम्पूर्ण युद्ध सामग्री उपलब्ध हो। देवराज इन्द्र का आदेश पाकर उनका सारथी ऐसा रथ जैसा कि देवराज ने चाहा था लेकर तत्क्षण पृथ्वी पर आया और प्रभु राम के पास प्रस्तुत हुआ। प्रभु राम प्रसन्न हुए और उसके अग्रभाग अर्थात् ध्वजा में हनुमान विराजमान हो गये और राक्षस सेना को देखकर यमराज की भाँति अट्टहास करने लगे।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कवि केशव कहते हैं कि देवराज इन्द्र के द्वारा भेजे गये विशेष रथ की प्रभु राम ने परिक्रमा की और रावण के समान ही रथाधिरूढ शक्ति से सम्पन्न हो कर ज्यों ही वे रथ पर सवार हुए तो आकाश से सभी देवों ने पुष्प वर्षा की तथा अन्याय पर न्याय की व अधर्म पर धर्म की विजयश्री की प्रसन्नता में झूमकर दुदुंभि वादन किया। जब रावण ने राम को रथ में सवार देखा तो वह क्रोध में तमतमा गया और बीसों भुजाओं से घातक बाणों की वर्षा करने लगा और बाण वृष्टि से उसने धरती से आकाश तक समुचे वातावरण को आच्छन्न कर दिया। इधर श्रीराम अपने रण कौशल से रावण के सारे प्रहारों को प्रभावहीन करने लगे उसके द्वारा छोड़े गये सारे बाण उसी प्रकार से नष्ट और धराशायी हो गये जैसे कोई पर्वत टूटकर रेत के कण बन जाता हो। उधर रीछों और बलशाली वानरों ने शत्रु सेना का जमकर सामना किया और उनके छक्के छुडा दिये। राम और रावण के युद्ध के समय पृथ्वी से आकाश तक चारों ओर बाणों, बर्छियों, अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों की जमकर विनाशक वर्षा होने लगी। राम और राम की सेना ने रावण के हर प्रहार का मुकाबला कर उन्हें प्रभावहीन बना दिया।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने युद्ध भूमि का वर्णन सामान्य रूप से किया है।
2. अवतरण में मात्र शब्द चमत्कार है रसानुभूति नहीं।
3. भाषा तत्सम व तद्भवात्मक वीर के अनुकूल तथा ओजपूर्ण है।

(10)
रावण–वध

जेहि सर मधु मद मरदि महासुर मर्दन कीन्हेऊ।
मारेउ कर्कश नर्क, शंख, हति शंख जो लीन्हेउ।।
निष्कंटक सुरकंटक कर्यो कैटभ–बपु खण्ड्यो।
खर दूषण त्रिसिरा कबंध तरु खण्ड बिहण्ड्यो।।
कुम्भकरण जेहि संहरयो पल न प्रतिज्ञा ते टरौं।
तेहि बाण प्राण दसकण्ड के कण्ठ दसौं खण्डित करौ।।

शब्दार्थ – मधु = मधु नामक राक्षस, नर्क = नरकासुर, हति = मारना, कैटभ वपु = राक्षस कैटभ का शरीर, कबन्ध = कबन्ध राक्षस।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति रस तरंगिणी' से लिया गया है जो कवि केशव द्वारा विरचित 'रामचन्द्रिका' के रावण–वध प्रसंग का अंश है।

व्याख्या – प्रभु श्री राम कहते हैं कि जिस बाण से मैंने मधु नामक राक्षस के अहंकार का नाश कर उस शक्तिशाली असुर को मारा था। कठोर, भयानक नरकासुर और शंखासुर दैत्य को मार दिया था और उससे पांचजन्य शंख ग्रहण किया था। जिस बाण से मैंने कैटभ नामक राक्षस के शरीर के टुकडे–टुकडे कर के देवताओं के मार्ग से उसे हटा दिया था। खर–दूषण–त्रिसरा–कबन्ध आदि राक्षसों को वृक्ष खण्डों की तरह खण्ड–खण्ड कर दिया था। जिस बाण से कुम्भकर्ण जैसे राक्षस का संहार करने में क्षणभर भी अपनी प्रतिज्ञा से विमुख नहीं हुआ उसी बाण से हे रावण! मैं तुम्हारे दसों सिरों को एक साथ खण्डित करता हूँ।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में राम को श्री हरिविष्णु का अवतार माना है इसी प्रयोजन से मधु, कैटभ, नरकासुर, शंखासुर आदि का वर्णन किया है।
2. इस बात की पुष्टि की है कि पृथ्वी पर जब–जब अधर्म हावी हो जाता है और धर्म को नष्ट कर देता है तब–तब भगवान् अवतार लेते हैं और अपनी अनेक लीलाओं से पाप व अधर्मियों का नाश करते हैं।
3. प्रस्तुत अवतरण को अनुप्रास, यमक, उपमा और काव्यलिंग अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
4. भावानुकुल शब्दों का प्रयोग हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

2.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 केशवदास की गणना किस रूप में की जाती है?
उत्तर – केशवदास की रीतिकालीन काव्य चेतना के प्रवर्तक, श्रेष्ठ आचार्य व श्रेष्ठ कवि के रूप में गणना की जाती है।

प्रश्न 2 केशवदास के आश्रयदाता राजा का क्या नाम था?
उत्तर – केशवदास के आश्रयदाता ओरछा नरेश रामसिंह के अनुज राजा इन्द्रजीतसिंह थे।

प्रश्न 3 'कविप्रिया' के रचनाकार का नाम बताइये।
उत्तर – आचार्य केशवदास 'कविप्रिया' के रचयिता हैं।

प्रश्न 4 "विज्ञान गीता" का सम्बन्ध किस कवि से है?
उत्तर – आचार्य केशव से 'विज्ञान गीता' का सम्बन्ध है।

प्रश्न 5 महाकवि केशवदास की सुप्रसिद्ध रचना का नाम बताइये।
उत्तर – महाकवि केशवदास की 'रामचन्द्रिका' सुप्रसिद्ध रचना है।

प्रश्न 6 कौन–कौन सी रचनाओं ने कवि केशवदास को आचार्यत्व के रूप में सिद्ध किया है?
उत्तर – कविप्रिया, रसिकप्रिया और छन्दमाला ने केशव को आचार्यत्व प्रदान किया है।

प्रश्न 7 कवि केशव को कठिन काव्य का प्रेत क्यों कहा गया है?
उत्तर – कवि केशवदास की रचनाओं में उक्ति वैचित्र्य, चमत्कार पूर्ण अलंकार व प्रकाण्ड पाण्डित्य का प्रदर्शन पर्याप्त रूप से मिलता है जो अपने आप में जटिलता लिये हुए है इसीलिये इन्हें कठिन काव्य का प्रेत कहा गया है।

प्रश्न 8 'रसिकप्रिया' रचना में केशव ने किसका वर्णन किया है?
उत्तर – केशव के द्वारा उनकी रचना 'रसिकप्रिया' में जहाँ रसों का सुन्दर विवेचन किया है, वही नायक–नायिका के भेदों का भी सुन्दर निरूपण किया है।

प्रश्न 9 आचार्य केशव की मुक्तक रचनाएँ कौन–कौन सी हैं?
उत्तर – रतनबावनी, विज्ञान गीता, जहाँगीर जस चन्द्रिका की गणना केशव द्वारा रचित मुक्तक रचनाओं में की गई हैं।

प्रश्न 10 भट्टाचार्य केशव के वंशज मूलतः कहाँ के निवासी माने जाते हैं?
उत्तर – राजस्थान के भरतपुर जिले में कुम्हेर नामक गाँव को आचार्य केशव के वंशज माने जाते हैं।

प्रश्न 11 'पति बरनै चार मुख, पूत बरने पाँच मुख' पति में सरस्वती का पति व पुत्र कौन माने गये हैं?
उत्तर – परमपिता ब्रह्माजी को सरस्वती का पति माना है, और पाँच मुखी देवादिदेव महादेव नाथ को उनका पुत्र माना है।

प्रश्न 12 'पूरन पुराण अरु पुरुष पुरान परिपूरन' – केशव ने पुरान पुरुष किसे कहा है?
उत्तर – केशव ने श्रीराम को पुरुषपुरान अर्थात् 'परमब्रह्म' कहा है।

प्रश्न 13 'नेति नेति कहै वेद' – केशव के अनुसार वेदों में क्या कहा गया है?
उत्तर – केशव के अनुसार वेदों में परमात्मा के अवतार श्रीराम को अनादि–अनन्त–अविनाशी कहा गया है।

प्रश्न 14 'हरिनि ज्यों हेरति न केसरि के काननहि' – प्रस्तुत पंक्ति में 'हरिनि' व 'केसरी' का उपमान किसके लिये किया गया है।
उत्तर – प्रस्तुत पंक्ति में 'हिरण' का उपमान सीता जी के लिये व 'केसरी' का रावण के लिये प्रयोग किया है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 15 केशव के अलंकारवादी कवि होने का काव्य पर क्या प्रभाव पड़ा?
उत्तर – अलंकारवादी होने के कारण केशव के काव्य में उक्ति वैचित्र्य और चमत्कारवादी प्रवृत्ति दिखाई देती है।

प्रश्न 16 ब्रज भाषा को केशव की क्या देन रही है?
उत्तर – कवि केशव ने ब्रज भाषा में काव्य के शास्त्रीय पक्ष को सम्पूर्णता से ग्रहण किया और उसमें लक्षण उदाहण की परम्परा रूप में स्थापना की।

प्रश्न 17 आचार्य शुक्ल के मतानुसार केशव द्वारा रचित काव्य 'रामचन्द्रिका' में सबसे बड़ी सफलता किस में मिली है?
उत्तर – 'रामचन्द्रिका' की संवाद योजना सर्वाधिक सफल रही है।

प्रश्न 18 केशव को काव्य सिद्धान्त की दृष्टि से किस कोटि का आचार्य माना है?
उत्तर – केशव को काव्य सिद्धान्त की दृष्टि से अलंकारवादी आचार्य माना गया है।

प्रश्न 19 कवि केशव ने जगरानी किसे कहा है?
उत्तर – कवि ने विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को जगरानी कहा है।

प्रश्न 20 'उत्तम, मध्यम अधम कवि, उत्तम हरि–रस तीन' इस कथन में केशव ने हरि–रस किसे कहा है?
उत्तर – केशव के मतानुसार उज्ज्वल शृंगार–रस ही हरि–रस है।

2.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 केशवदास को कठिन 'काव्य के प्रेत' के रूप में क्यों जाना जाता है?

उत्तर – रीतिकालीन प्रमुख सृजनधर्मी कलाकारों में आचार्य कवि केशव का अपना अलग स्थान रहा है। क्योंकि केशव में रीतिकालीन चमत्कारी प्रवृत्ति रही। इसलिये उक्ति–वैचित्र्य एवं अलंकारों के प्रदर्शन में ये हमेशा उलझे रहे और काव्य रचना करते समय उन पर आचार्यत्व हावी रहा साथ ही वे पाण्डित्य–प्रदर्शन की प्रवृत्ति से भी पूर्णतः आक्रान्त रहे। इनके शास्त्रीय लक्षणों के आग्रह के कारण ऐसी शैली का प्रयोग हुआ जिसमें भाषा की संक्षिप्तता, भारी शब्दों का बोझ और वाग्विदग्धता का पुट अधिक दिखाई दिया। जहाँ एक ओर इन्होंने क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया वहीं दूसरी ओर मनोरम दृश्यों के चित्रण में रूखेपन का परिचय दिया है। साथ ही अलंकार व छन्दों का नवीनतम प्रयोग आग्रह रखा है। यही कारण है कि उनके काव्य में क्लिष्ट–कल्पना और नीरसता आ गई है। तत्सम शब्दों का मनमाना प्रयोग करने तथा काव्य रचना में केवल बुद्धित्व का प्रदर्शन कर हृदय–तत्त्व की उपेक्षा करने से केशव को कठिन काव्य के प्रेत के रूप में जाना जाता है।

प्रश्न 2 आप कैसे कह सकते हैं कि आचार्य कवि केशव चमत्कारवादी प्रवृत्ति के कवि थे? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – रीतिकाल के आचार्य कवि संस्कृत साहित्य से प्रभावित थे, जिसमें चमत्कार और पाण्डित्य–प्रदर्शन की प्रवृत्ति प्रमुख रही है। केशव का परिवेश कुछ ऐसा रहा है जिसमें शृंगार–विलास के चमत्कारों का बाहुल्य था अतः उन्होंने अपने काव्य में उक्ति–वैचित्र्य और क्लिष्ट कल्पनाओं के सहारे पाण्डित्य प्रदर्शन पर अधिक ध्यान दिया था। उनकी रुचि प्रकृति के सुकोमल–आकर्षक स्थलों के वर्णन में भी अलंकारों व छन्दों की योजना बनी रही। वे "भूषण विन न विराजई, कविता वनिता मित्त" के पक्के पक्षधर थे। अतः प्रबन्ध काव्य की रचना के लिये जिस सहृदयता व भावुकता की कल्पना की जाती है या अपेक्षा की जाती है केशव में इनका अभाव रहा है। राम कथा के मार्मिक स्थलों का वर्णन भी उन्होंने चमत्कारी शैली में ही किया है। असम्बद्ध प्रसंगों के विस्तार से वर्णन में मार्मिक प्रसंगों की अवहेलना हुई है और परिगणात्मक शैली में प्राकृतिक स्थलों की केवल गणना करके उन्होंने अपने रूखेपन का परिचय दिया है। अतः हम कह सकते हैं कि केशव एक चमत्कारवादी प्रवृत्ति के कवि थे।

प्रश्न 3 'रामचन्द्रिका' केशव का प्रबन्ध काव्य है इसकी विशेषताओं पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर – आचार्य केशवदास की प्रसिद्ध प्रबन्धात्मक काव्य कृति 'रामचन्द्रिका' रामकथा पर आश्रित है। इस महाकाव्य में जिसमें राम की कथा का समग्र रूप से वर्णन किया है और इसमें महाकाव्य के प्रमुख लक्षणों का निर्वाह हुआ है। इसका कथानक सर्गों में विभक्त है। प्रारम्भ में मंगलाचरण है जिसका कथानक प्रख्यात ऐतिहासिक है; इसके

Jan Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मुख्य पात्र भी राम हैं तथा इनके चारों पुरुषार्थों में से श्री राम को धर्म, अर्थ और काम इन तीनों कालों की प्राप्ति होती है। प्रबन्ध काव्य के अनुरूप इस रचना में सागर, पर्वत, ऋतु, सूर्योदय, उपवन आदि सभी विषयों का चित्रण किया गया है। इसमें युद्ध–वर्णन तथा अन्य प्रसंगों को अत्यन्त रोचकता से प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि प्राकृतिक चित्रण नीरस है और भावात्मक चित्रण के साथ अन्य प्रसंग भी कम ही हैं। फिर भी कुछ संवादात्मक स्थल अत्यन्त रोचक हैं जिनमें कथानक का स्वयं विकास हुआ है तथा भावानुभूति भी व्यक्त हुई है। अतः रामचन्द्रिका में वे सब लक्षण हैं जो किसी प्रबन्ध काव्य या महाकाव्य में होने आवश्यक हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि केशव द्वारा विरचित 'रामचन्द्रिका' एक सफल प्रबन्ध काव्य है।

2.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 'आचार्य कवि केशव हृदयहीन कवि थे' इस कथन की पुष्टि कीजिये।

अथवा

'केशव को हृदयहीन कवि कहना उनके साथ अन्याय करता है।' कथन के पक्ष–विपक्ष में तर्क देकर अपने विचार व्यक्त कीजिये।

अथवा

'केशव का आचार्यत्व निर्भान्त रूप से प्रमाणित है।' इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवि केशव की अपनी एक अलग ही पहचान रही है। इन्होंने जहां एक ओर 'रामचन्द्रिका' जैसी प्रबन्धात्मक रचना कर अपने कवित्व का परिचय दिया है और दूसरी ओर 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना कर साहित्यशास्त्र के आचार्य पद को अलंकृत किया है। संस्कृत में प्रचलित आचार्य परम्परा से केशव अधिक प्रभावित रहे। उनके पिताश्री संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनके घर की शुक सारिकाएं भी संस्कृत ही बोलती थी। संस्कृत का पूर्ण अध्ययन करने से बाण और श्रीहर्ष की समास प्रधान शैली की ओर उनका आकर्षण स्वभावतः बना रहा। प्रारम्भ से ही राज दरबारों की चकाचौंध देखने का इन्हें अवसर मिलता रहा जिसकी वजह से उनकी रुचि अलंकार की ओर अधिक रही। परिणामतः वे रस, रीति, छन्द अलंकार आदि की व्याख्या करने में अग्रसर हो गये और कविकर्म के साथ आचार्य परम्परा का निर्वाह भी करने लगे।

आचार्य पद और उसका महत्त्व

संस्कृत साहित्य में दो प्रकार के सृजन धर्मी साहित्यकार परम्परा के रूप में रहे हैं जिनमें कुछ तो केवल कविता रचना करने में ही प्रवृत्त रहते थे और अन्य शास्त्रीय सिद्धान्तों की विवेचना करते थे। आचार्य से अभिप्राय वह विद्वान जो काव्य की परिभाषा एवं स्वरूप, उसके भेद, काव्य की आत्मा, शोभावर्द्धक तत्त्व, गुण और अलंकार, काव्य में प्रयुक्त शब्द अर्थ एवं प्रयोजन आदि विविध बिन्दुओं की समीक्षा करके सिद्धान्तों का स्थापना करने और लक्षण ग्रन्थों का निर्माण करे। संस्कृत में ऐसे आचार्यों की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। वे आचार्य स्वयं कवि भी होते थे और अन्य कवियों के पथ प्रदर्शक भी होते थे। हम उन्हें साहित्य के समीक्षक, आलोचक और पथ प्रदर्शक तीनों ही कह सकते थे। संस्कृत साहित्य के अध्येता होने के कारण केशव का झुकाव इस ओर स्वतः हो गया और वे हिन्दी में आचार्य परम्परा के प्रथम उन्नायक बने।

केशव और उनका आचार्यत्व

केशव द्वारा विरचित तीन ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें उनके आचार्यत्व का परिचय प्राप्त होता है 1. कविप्रिया, 2. रसिकप्रिया, 3. छन्द माला। 'रसिकप्रिया' में केशव ने नौ रसों का विवेचन कर के शृंगार रस (हरिरस) का विवेचन किया है और इस रस की विभिन्न प्रवृत्तियों, नायिका की चेष्टाओं, वियोग दशाओं और रस दोषों का वर्णन किया है। नायक–नायिका के भेदों को स्पष्ट करके अपना दृष्टिकोण प्रकट किया है। 'कविप्रिया' में काव्य दोषों की चर्चा, रीतियों और कवि प्रसिद्धियों का वर्णन, अलंकारों का वर्णन किया गया है। यह कलापक्ष का एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। 'छन्दमाला' में शताधिक छन्दों के लक्षण व उदाहरण व्यक्त किये गये हैं। इसी ग्रन्थ में कवियों को शास्त्रीय निर्देश भी दिये गये हैं। इस ग्रन्थ को छन्द शास्त्र का उत्तम लक्षण ग्रन्थ माना गया है। इन रचनाओं में केशव द्वारा काव्यशास्त्रीय लक्षणों की विवेचना करने से उनका आचार्य रूप स्पष्ट रूप से झलकता है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

केशव का रस विवेचन

आचार्य केशव के द्वारा कवियों की तीन श्रेणियाँ निर्धारित की गई हैं जिनका वर्णन 'रसिकप्रिया' ग्रन्थ में मिलता है।

'उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरिरस तीन।
मध्यम मानत मानुषनि, दोषनि अधम प्रवीन।।'

हरि रस से केशव का अभिप्राय उज्ज्वल रस अर्थात् शृंगार रस से है। भरत मुनि द्वारा प्रतिपादित 'रसनिष्पत्ति' के सिद्धान्त के वे समर्थक थे। उन्होंने भावों को व्यापक रूप दिया और विभावों, अनुभावों और सात्त्विक भावों का समावेश भावों में करते हुए उन्हीं को कवियों का जनक बताया गया है –

'आनन लोचन वचन मम, प्रगटत मन की बात।
ताही सों सब कहत हैं भाव कबिन के तात।।'

केशव ने उद्दीपन विभाव को अधिक महत्त्व दिया और सात्त्विक भावों की संख्या आठ बताई हैं। उन्होंने संचारी भाव 35 मानें हैं। इस तरह रस सिद्धान्तों को उन्होंने पूरी तरह से महत्त्व दिया है, नवीनता दी है और अन्य सभी रसों को शृंगार रस के अंग रूप में प्रस्तुत किया है और रसों का राजा भी उन्होंने शृंगार रस को ही माना है और उसका प्रतिपादन हरिरस के रूप में ही किया है।

अलंकारों की पुष्टि

'कविप्रिया' में काव्यालंकारों को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। नायिका के नख–शिख वर्णन में केशव का अलंकारवादी दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। कवि ने अपने इसी ग्रन्थ में काव्यगत दोषों, कवि प्रसिद्धियों, रीतियों और चित्र काव्य के भेदों का वर्णन किया है। अलंकारों में भी उन्होंने कुछ अलंकारों को विशिष्ट माना है जिनमें विभाव .. . हेतु, विशेषोक्ति, उत्प्रेक्षा, आक्षेप, श्लेष, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, रुपक, दीपक, उपमा आदि प्रमुख हैं। आचार्य कवि केशव के अनुसार किसी भी रचना में अलंकारों का होना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक सुन्दर स्त्री आभूषण नहीं पहन लेगी तब तक वह पूर्ण सौन्दर्य को प्राप्त नहीं कर सकेगी। यही स्थिति काव्य की है। काव्य अपने आप में चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो उसका सौन्दर्य अलंकारों के बिना अपूर्ण ही माना जायेगा।

'जदपि सुजाति, सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न विराजई, कविता, वनिता मित्त।।'

इसी प्रकार केशव ने दोषों के अभाव पर अधिक ब्ल दिया है। काव्य दोषों के संदर्भ में उनका कथन है कि जिस प्रकार शराब की एक बूंद से गंगाजल से भरा हुआ पूरा घड़ा ही अपवित्र हो जाता है, उसी प्रकार जरा से दोष मात्र से समुचा काव्य ही अपने मनोहारी तत्त्वों से रहित हो जाता है –

'राजत रंच न दोष जुत, कविता, वनिता, मित्त।
बुन्दक हाला होत ज्यों गंगा घट अपवित्र।।'

छन्द योजना

केशव काव्य शास्त्र के आचार्य थे। उन्हें इस बात का ज्ञान था कि किस विषय में कौनसा छन्द प्रयुक्त होगा। उन्होंने छन्द–माला में अनेक छन्दों का सोदाहरण वर्णन किया है। उन्होंने विषयानुकूल छन्द के चयन में अपनी काव्य कला का पूर्ण परिचय प्रदान किया। बत्तीस अक्षरों वाले अनंग शिखर नामक छन्द तक कुल 76 छन्दों का स्पष्टीकरण किया गया है। केशव ने सभी प्रकार के छन्दों का (वर्णिक व मात्रिक) विवेचन किया है। कुछ विद्वान तो केशव की रचनाओं को 'छन्दों का अजायब' घर मानते हैं। उनकी सुप्रसिद्ध रचना 'रामचन्द्रिका' में छन्द परिवर्तन कुछ इस प्रकार से होता है जिसके कारण भावोद्रेक में बाधा पहुँचती है। कथा–सूत्र में अनावश्यक छन्द परिवर्तन बाधक सिद्ध होता है। रामचन्द्रिका में विविध छन्दों का वर्णन व प्रयोग मिल जाते हैं।

नायक–नायिका भेदों का निरूपण

नायक–नायिका भेद के विवेचन में केशव ने पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा का अनुसरण किया है। केशव ने नायक के चार भेद बताये हैं अनुकूल, दक्षिण, सठ, धृष्ठ।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'अभिमानी त्यागी तरुन, कोक कलानि प्रवीन।
भव्य छत्री सुन्दर धनी, रुचि–सुचि सदा कुलीन।।'

केशव ने नायिका भेद के लिये जाति, कर्म, अवस्था और प्रकृति ये चार आधार माने हैं और नायिकाओं की विविध चेष्टाओं एवं विलासों का प्रतिपादन किया गया है। नायिकाओं के स्थूल, माँसल चित्रण को देखकर कुछ समीक्षकों का कथन है कि केशव का नायिका–भेद–वर्णन काव्यशास्त्र की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह केशव की सहृदयता व रसिक प्रकृति का परिचायक है।

केशव का काव्य सिद्धान्त

'कविप्रिया' में केशव का रूप अलंकारवादी आचार्य की दृष्टि से प्रस्तुत हुआ है जिसमें उन्होंने रचना के लिये अनेक निर्देश दिये हैं। साथ ही कवियों के सामने आने वाली बाधाओं की ओर संकेत किया गया है। आचार्य आनन्दवर्धन की तरह कवियों को काव्योपयोगी सुन्दर शब्दों की खोज के लिये कहा गया है –

'चरन धरत चिन्ता करत, नींद न भावत सौर।
सुबरन को सोधत फिरत कवि व्यभिचारी चौर।।'

काव्य सिद्धान्तों की चर्चा में केशव ने रस, रीति, छन्द, अलंकार एवं नायक–नायिका भेद पर अधिक बल दिया है।

केशव की हृदयहीनता

केशव की रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि काव्य रचना करते समय वे उक्ति–वैचित्र्य एवं अलंकारों के चमत्कारिक प्रदर्शन में उलझे रहे। उन पर आचार्यत्व हावी रहा और पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति से वे पूर्णतः आक्रान्त रहे। शास्त्रीय लक्षणों के आधिक्य से उन्होंने ऐसी शैली को अपनाया जिसमें अत्यन्त संक्षिप्त भाषा, भारी–भरकम शब्दावली एवं वाग्विदग्धता की अधिकता रही। अर्थ ग्रहण की बाधा का तो उन्होंने जरा सा भी ध्यान नहीं रखा, जिसकी आलोचकों ने कटु आलोचना की है और उनके कवित्व को दूषित बताया है। 'रामचन्द्रिका' में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जो अत्यन्त कठिन कल्पना पर आधारित हैं यथा –

सरस्वती वन्दना के प्रसंग में –

'पति बरनै चार मुख, पूत बरनै पाँच मुख।
नाती बरनै षट मुख, तदपि नई नई।।'

प्रस्तुत पंक्तियों में सरस्वती के पति ब्रह्मा और शिव को उनका पुत्र बताया गया है, जबकि ये मान्यताएँ पूर्णतः अप्रचलित हैं और पौराणिक आस्था के विपरीत हैं, क्योंकि ब्रह्मा को शिव का पिता तो किसी भी पुराण में नहीं बताया गया है। यह क्लिष्ट कल्पना केशव के कवित पर दोष है। इसी प्रकार –

'अति चंचल जह चल दलै विधवा बनी न नारि।'

प्रस्तुत पंक्ति में 'चलदलै' शब्द का अर्थ पीपल के पत्ते हैं यह अर्थ अत्यधिक क्लिष्ट है जो पाठकों की समझ से परे है। 'बिधवा' शब्द भी श्लेष है, जिसमें बि + धवा अर्थात् वृक्षों से रहित अर्थ की कल्पना की गई है, इसी प्रकार 'बनी' शब्द का अर्थ वाटिका निकाला गया है जो पाठकों की समझ से काफी दूर है।

केशव के काव्य में तत्सम शब्दों का तथा मन घडन्त शब्दों का काफी अधिक प्रयोग किया गया है। इन प्रयोगों से उनकी विद्वता पाण्डित्य के रूप में झलकती है साथ ही उनके आचार्य रूप का परिचय प्रदान करने वाली है –

'ब्रज को अखर्ण गर्व गंज्यो जेहि पर्वतारि।
जीत्यो है सपूर्व सर्व माँजे ले ले अँगना।।
खण्डित अखण्ड आसु कीन्हों है जलेस–पासु।
चन्दन सी चन्द्रिका सों कीन्हों चन्द्र वन्दना।।'

प्रस्तुत पद में सभी तत्सम शब्द हैं, जिनकी क्लिष्टता के कारण अर्थ संगति भी अत्यन्त क्लिष्ट बन गई है। यही वजह है कि केशव को कठिन काव्य का प्रेत माना गया है। शायद उन्होंने काव्य की रचना आत्मा की प्रेरणा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से नहीं की बल्कि पाण्डित्य प्रदर्शन के उद्देश्य से की है। यद्यपि यह उनकी शैलीगत विशेषता है किन्तु आलोचक व समीक्षक इस संदर्भ में कहते हैं कि केशव को पढ़ने के लिये मन व मस्तिष्क के कठिन व्यायाम की आवश्यकता है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि जो लोग बाल बुद्धि हैं वे ही केशव पर कठिनता का आरोप लगाते हैं जबकि यह तो केशव की शैलीगत विशेषता है।

'तिन नगरी तिन नागरी, प्रति पद हंसकहीन।
जलजहार शोभित न जहँ, प्रकट पयोधर मीन।।'

प्रस्तुत दोहे में कवि ने श्लेष और यमक अलंकार की अति सुन्दर छटा समाहित की है। श्लेष अलंकार के द्वारा कवि ने जहाँ नारी सौन्दर्य और सौभाग्य की प्रस्तुति की है वहीं उन्होंने नगरों की समृद्धि का भी वर्णन किया है। इस दोहे में शब्दों का ऐसा गठन किया है कि कहीं भी ऐसा नहीं लगता है कि स्वरूप और गठन के साथ किसी प्रकार का खिलवाड़ किया है। यह तो केशव की विशेषता है कि वे सम्पूर्ण अर्थों को अपने वाच्यार्थ से ही प्रकट कर देते हैं। इनका वाच्यार्थ इतना अधिक चमत्कारी है कि स्थायी रूप से पाठक के हृदय में अपनी छाप छोड़ने में सफल रहता है। इनकी रचनाओं में न केवल कवि रूप ही झलकता है अपितु आचार्य रूप भी अपना परिचय प्रदान करने में पीछे नहीं है। उनके काव्य का रसास्वादन करने के लिये पूर्ण विवेक की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में डॉ. राम गोपाल सिंह चौहान का वक्तव्य दृष्टव्य है –

"केशव युग पीड़ित थे। यदि दोष है तो यही कि उन्होंने युग के साथ विद्रोह नहीं किया, जबकि उनमें उसके स्फुलिंग विद्यमान थे। जहाँ उन्होंने एक परम्परा का सूत्रपात किया था, वहाँ कुछ परम्पराओं से हटकर भी सोचा था। उनकी प्रमुख रचना 'रामचन्द्रिका' का शिल्प, उपमानों का प्रयोग, सौन्दर्य के विभिन्न रूपों का दर्शन और युग के ही अनुरूप चित्रों का नया रूप उनकी विद्रोही आत्मा के रूप को स्पष्ट करते हैं ..... किन्तु वे सारे विद्रोह ऐश्वर्य की चकाचौंध में खो गये।"

इस प्रकार केशव को 'कठिन काव्य का प्रेत' कहकर उनके वैदग्ध्य को दूषित करना सर्वथा अनुचित है। ऐसा अवश्य कहा जा सकता है कि केशव ने विदग्ध्य पाठकों के लिये ही काव्य रचना की। उन्होंने काव्य के भाव पक्ष को उतना ही महत्त्व प्रदान किया जितना कि काव्य के शिल्प पक्ष को। उनका काव्य–शिल्प उनकी अभिव्यक्ति विद्या का अभिन्न माध्यम रहा है। उनके शब्द उच्च स्तरीय संस्कारों से युक्त रहे हैं। उन्होंने रसराज श्रृंगार को उसके अलौकिक रूप में ग्रहण न कर के उसे लौकिक श्रृंगार के रूप में ग्रहण किया है। 'रसिकप्रिया' में श्रृंगार रस के आलम्बन रूप में नायिकाओं का विवेचन प्रस्तुत करते हुए उन्होंने 'सामान्य' नायिका का इस प्रकार परित्याग किया है कि उसकी रसोज्ज्वलता में किसी भी प्रकार की उपयोगिता नहीं रह जाती है। अतः स्पष्ट होता है कि केशव में परम्परानुसार रसानुभूति रही है काव्य काठिन्य के साथ कलात्मक चमत्कार भी है। पूर्वाग्रह से ग्रस्त आलोचकों ने केशव को 'कठिन काव्य का प्रेत या हृदयहीन कवि कहा है, जो एकांगी कथन है।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि केशव पहले आचार्य हैं, तत्पश्चात् कवि। उन्होंने लक्षण ग्रन्थों के आधार पर काव्य रचना की, इस कारण से उनमें काव्यगत क्लिष्टता एवं पाण्डित्य आ गया। वस्तुतः केशव हिन्दी साहित्य परम्परा के प्रथम काव्याचार्य थे। उन्होंने 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'छन्दमाला' और 'नखशिख' इन चारों रचनाओं में काव्यशास्त्र के जिन लक्षणों का विवेचन किया उनका विवेचन 'रामचन्द्रिका' में जगह–जगह पर मिल जाता है। उसमें छन्द, अलंकारों के वैविध्य एवं शब्दगत चमत्कार को देखकर केशव का आचार्यत्व रूप अधिक प्रमाणित होता है। निःसंदेह, अपने काल की आवश्यकता एवं भौतिक विचित्रता का प्रभाव होने से अथवा सामाजिक प्रवृत्ति होने से केशव पर कवित्व की अपेक्षा आचार्यत्व अधिक प्रभावी रहा है। इस तथ्य की ओर ध्यान न देकर ऐसे विद्वान आचार्य कवि को 'कठिन काव्य का प्रेत' या हृदयहीन कवि बताना उनको सर्वथा निरादर करना है।

प्रश्न 2 प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से सुप्रसिद्ध रचना 'रामचन्द्रिका' की प्रमुखता को स्पष्ट करते हुए बताइये कि क्या वह एक सफल महाकाव्य की श्रेणी में आता है?

अथवा

'रामचन्द्रिका' की प्रबन्धात्मकता पर विचार व्यक्त कीजिये तथा उसके गुण–दोषों की समीक्षा कीजिये।

उत्तर – सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र और काशीनाथ के पुत्र केशव का हिन्दी साहित्य जगत में आचार्य एवं कवि के रूप में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'रामचन्द्रिका' ऐसी रचना है जो रामकथाश्रित है, जिसमें रामकथा का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सुसम्बद्ध वर्णन किया गया है। इसी वजह से इसे प्रबन्ध काव्य माना है। वस्तुतः इस रचना में प्रबन्धात्मकता के साथ–साथ महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। संस्कृत काव्य–शास्त्र में महाकाव्य को पर्याय रूप में प्रबन्ध–काव्य ही माना जाता है। 'रामचन्द्रिका' की प्रबन्धात्मकता को हम निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट कर सकते हैं –

रामचन्द्रिका प्रबन्ध काव्य के रूप में

आचार्य विश्वनाथ को साहित्य का दर्पणकार माना गया है, उनके मतानुसार महाकाव्य वही है जो सर्वबन्धात्मक हो। इसका शुभारम्भ वस्तुनिर्देश रूप मंगलाचरण से किया जाता है। इसमें किसी न किसी ऐतिहासिक कथा अथवा घटना का चित्रात्मक वर्णन किया जाता है और इसका प्रयोजन चारों पुरुषार्थों का प्रतिपादन करना होता है। महाकाव्य में धीरोदात्त नायक होता है अथवा प्रख्यातवंशी राजाओं के चरित्र का उद्घाटन किया जाता है, जिसमें नगर, ऋतु, वन, पर्वत श्रृंखलाएँ, सूर्य, चन्द्र, बाग–बगीचे, जल–क्रीड़ा, मधुपान आदि का वर्णन भी किया जाता है। अच्छा महाकाव्य वही माना जाता है जिसमें पर्याप्त छन्द विधान हो और विभिन्न प्रसंगों के द्वारा कथा नायक का अभ्युदय प्रदर्शित किया जाता हो साथ ही महाकाव्य में एकांगी रस की दरकार होती है तथा अन्य रसों का प्रयोग यथा स्थान कर देना भी ठीक ही होता है। इस प्रकार प्राचीन आचार्यों ने प्रबन्ध काव्य अथवा महाकाव्य के लक्षणों में विविध तत्त्वों का समावेश करके उसके लिये अनेक दिशानिर्देश प्रस्तुत किये हैं।

रामचन्द्रिका और काव्य गुण

आचार्य कवि केशव द्वारा विरचित प्रबन्ध काव्य 'रामचन्द्रिका' में काव्य के सभी गुण समाहित किये गये हैं जिसमें किसी प्रकार की कमी दिखाई नहीं देती है। इस ग्रन्थ का कथानक सर्गों में विभक्त है तथा इसके श्रीगणेश के साथ आशीर्वाद की कामना को लेकर मंगलाचरण है, जिसमें विघ्नविनाशक विनायक, विद्या की अधिष्ठात्री माँ सरस्वती तथा परमेश्वर स्वरूप श्रीराम की वन्दना की गई है। कथावस्तु की ओर निर्देशित करते हुए इसके रचयिता ने कहा है कि मैं भगवान् राम के कथा वैभव का अनेक छन्दों में वर्णन कर रहा हूँ –

जगती जाकी ज्योति जग, एक रूप स्वच्छन्द।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, बरनत हौं बहु छन्द।।

इस महाकाव्य की कथावस्तु सुप्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक है इसके नायक श्रीराम न केवल धीरोदात्त ही हैं अपितु साक्षात् जगदीश्वर श्रीहरिविष्णु के अवतार हैं। चारों पुरुषार्थों में से धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की प्राप्ति होती है और चौथा पुरुषार्थ के संदर्भ में क्या कहें उसके तो वे स्वयं दाता हैं –

'शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशम्,
विश्वाधारं गगन सदृश्यं मेघ वर्णं शुभांगम्।
लक्ष्मीकान्तं कमल नयनं योगिविर्धान्यगम्यम्,
वन्दे विष्णु भव भय हरं सर्व लोकैक नाथम्।।'

केशव की 'रामचन्द्रिका' सूर्यवंश की नगरी अयोध्या की अनुपम छटा को समाहित किये हुए है और दशशीश रावण की लंका नगरी के वैभव का भी अत्यन्त सौन्दर्य लिये हुए है। इसके अतिरिक्त वन–बाग–बगीचे, पर्वत, सागर, नदियाँ, पशु–पक्षी, सूर्यदेव, चन्द्रदेव, चन्द्रिका, ऋतुएँ आदि को महाकाव्योचित विषयों के रूप में चित्रित किया गया है। विशेष बात यह है कि इस महाकाव्य में श्रृंगार के दोनों रूपों (संयोग और वियोग) का संयोग समाहित है जिसकी भूमिका स्वयं काव्य नायक राम और जानकी निभाते हैं। लव और कुश के माध्यम से कुमारोत्पत्ति का भी वर्णन किया गया है। नायक राम और खलनायक रावण दोनों की एक मंत्री परिषद है जिसमें समय–समय पर मंत्रियों से यथोचित मंत्रणा भी की जाती है। नायक और खलनायक के बीच सिद्धान्तों का मतभेद चलता है क्योंकि नायक धर्म, नीति, न्याय, सत्य व मानवता के अधिष्ठाता हैं जबकि खलनायक अधर्म, अनीति, अन्याय, असत्य व दानवता का पोषक है। दोनों के बीच घमासान युद्ध होता है जिसका अत्यन्त रोचक चित्रात्मक वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है और अन्त में कथानक के अनुरूप सात्विक गुणों से श्रीराम की विजय का चित्रोपम वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य का प्रमुख रस श्रृंगार रस रहा है किन्तु विभिन्न प्रसंगों में अन्य रसों का भी सफल प्रयोग किया गया है। इसमें अनेक छन्दों का गरिमापूर्वक किन्तु विचित्र ढंग से प्रयोग किया गया है। इस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

महाकाव्य में जितने भी अध्याय हैं वे आकार की दृष्टि से सामान्य हैं अतः हम कह सकते हैं कि इस महाकाव्यग्रन्थ 'रामचन्द्रिका' में सभी काव्यगत गुणों का यथायोग्य समावेश किया गया है।

कथा संगठन – 'रामचन्द्रिका' की प्रबन्धात्मकता पर अनेक विद्वानों व आधुनिक आलोचकों ने कई आक्षेप लगाये हैं और इसे मात्र लक्ष्य ग्रन्थ ही माना है किन्तु कथा संगठन की दृष्टि से देखा जाये तो इस रचना में पूरी तरह से सफल निर्वाह कवि के द्वारा किया गया है। कथानक में भी घटना क्रमानुसार अनेकानेक कांट–छांट भी केशव द्वारा की गई है कुछ घटनाओं को तो छोड़ दिया है और कुछ का सांकेतिक वर्णन किया गया है। इसमें कथानक को कुछ ऐसे ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि कहीं पर शिथिलता न आये और निरंतरता भी बनी रहे।

प्रकृति चित्रण – यह अवश्य कहना पड़ेगा कि आचार्य कवि केशव ने अपनी 'रामचन्द्रिका' में प्रकृति चित्रण में कंजूसी बरती है। इस संदर्भ में एक आलोचक अपने मुक्त विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'रामचन्द्रिका' में न रंगों की चटक है, न पत्तों की मर्मर, न फूलों की हास है; न पक्षियों की गूंजन; न झरनों का कल–कल निनाद है; और न लहरों का नर्तन ही। बस केवल उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकारों की ऊपरी टीम–टाम है।' प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका की यह सबसे बड़ी कमी रही है।

भावात्मक चित्रण – केशव की रामचन्द्रिका में ऐसे प्रसंगों का अभाव रहा है जिनमें भावात्मकता हो, फिर भी दशरथ द्वारा राम–लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेजना, राम व सीता विरहावस्था, लक्ष्मण शक्ति, भरत–कैकेयी संवाद, हनुमान–रावण संवाद आदि कुछ भावात्मक, मार्मिकता का अहसास दिलाने वाले दृश्य हैं। इन प्रसंगों में अलंकारों का चमत्कार भी है –

मग को श्रम श्रीपति दूर करैं
सिय को शुभ बल्कल अंचल सौं।
श्रम तेउ हरैं तिय को कहि केशव,
चंचल चारु दृगंचल सौं।।

इसी प्रकार अशोक वाटिका में जानकी विरह व्यथित रहती है –

धरै एक वेणी मिली मैली सारी।
मृणाली मनो पंक ते काढि डारी।।

राम को हनुमान जी के द्वारा जानकी का संदेश व उनकी विरह जन्य वेदनापूर्ण स्थिति का वर्णन भी मार्मिकता लिये हुए है –

पिउ–पिउ रटति चित चातकी ज्यों,
चंद वितै चकई ज्यों वुप रहती है।
सुनहु नृप राम विरह तिहारे ऐसी,
सूरति न सीता जू की मूरति गहति है।।

इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि 'रामचन्द्रिका' में आकर्षक और रोचक प्रसंग भी है जिसमें अंगद–रावण संवाद और अश्वमेघ प्रकरण में लव–कुश द्वारा सुग्रीव, अंगदादि पर सुन्दर और रोचक कटाक्ष किये गये हैं। अतः रामचन्द्रिका में प्रबन्ध काव्य व महाकाव्य का पूरा–पूरा निर्वाह करने का प्रयास किया गया है और सफलता भी केशव को मिली है।

रामचन्द्रिका और प्रबन्धात्मकता के दोष

यद्यपि 'रामचन्द्रिका' में महाकाव्य के लगभग सभी गुण विद्यमान हैं, तथापि कुछ ऐसे दोष हैं जिनकी वजह से कई समालोचक न्यूनता बताने में जरा से भी नहीं हिचकिचाते हैं यथा –

1. भावपूर्ण मार्मिक प्रसंगों का अभाव – केशव को हृदयहीन कहने वाले आलोचक इस बात को दावे के साथ कहते हैं कि कवि के शरीर में कवित्व तो कूट–कूट कर समाहित था किन्तु संवेदनशीलता या मर्म का अभाव रहा है इसका साक्षात् उदाहरण केशव की रचनाओं में मार्मिकता नहीं है। रामचन्द्रिका में भी मार्मिक प्रसंगों की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अवहेलना हुई है। जब कैकेयी ने राजा दशरथ से वरदान माँगे थे तो उस प्रसंग में जितनी मार्मिकता होनी चाहिये थी वह नहीं हुई। केशव ने राजा दशरथ व अन्य रानियों की व्याकुलता का थोड़ा सा भी खयाल नहीं रखा –

'कीधौं कोउ न उरा हौ, ठगौरी लीन्हे कीधौं तुम।
हरि हर श्री हौं सिवा, चाहत फिरत हों।।'

जब दशरथ का अंतिम संस्कार करने के लिये भरत व शत्रुघ्न जाते हैं तो उनकी और अयोध्यावासियों की व्याकुलता का भी केशव ने जरा सा ध्यान नहीं रखा। बस दो–तीन पंक्तियों में भरत द्वारा वल्कल धारण कर के गंगा पार कर चित्रकूट में जाने का संकेत दिया है –

पहिरे वल्कला जु जटा धरि कै। जिन पायन पंथ चले हरि कै।
तरि गंग गये गृह संग लिये। चित्रकूट विलोकत छाड़ि दिये।।

2. प्रसंगों की असम्बद्धता – केशव की 'रामचन्द्रिका' में कुछ प्रसंग तो ऐसे हैं जो जितने अधिक मार्मिक होने चाहिये थे उतने ही नीरस बने हुए हैं सीता हरण के पश्चात् प्रभु राम का सीता की खोज में किया जाने वाला प्रयास और उनका विरह विलाप तो शायद केशव भूल ही गये हैं –

'हे खग, हे मृग, हे मधुकर श्रेणी, तुम देखी सीता मृग नैनी।'

आदि विलाप से भी केशव द्रवीभूत नहीं हो सके और वहाँ पर भी वे अलंकारों की प्रवृत्ति में ग्रस्त रहे। कुछ प्रसंग कथावस्तु से असम्बद्ध हैं और वे कथावस्तु में उत्कर्ष बढ़ाने में अक्षम हैं। जैसे राम द्वारा विधवा धर्म का वर्णन, दान विधान सनाढ्योत्पत्ति, राजश्री निन्दा, रामविरक्ति और सत्यकेतु आख्यान आदि। चित्रकूट पहुँचने पर भरत ने जो वेदना–व्यथा प्रकट की उसकी ओर भी केशव ने किसी प्रकार की मार्मिक प्रतिक्रिया नहीं जताई। अतः केशव की योजना असम्बद्ध मानी गई है।

वर्णन विस्तार के प्रति रूझान – केशव द्वारा विरचित प्रबन्ध काव्य 'रामचन्द्रिका' में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनके वर्णन को कुछ विस्तारपूर्वक व्यक्त किया गया है। विश्वामित्र के अयोध्या आगमन के अवसर पर सत्ताईस छन्दों में सरयू नदी का वर्णन, राजा दशरथ तथा अयोध्या नगरी व वहाँ के उद्यानों का वर्णन है। अन्य दर्शनों में अरुणोदय, राम विवाह व उसके पश्चात् पुनः अयोध्या का वर्णन, पंचवटी वर्णन, गोदावरी वर्णन, त्रिवेणी एवं ऋषि भारद्वाज के आश्रम का वर्णन आदि। 'रामचन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध में तो केशव की यह प्रवृत्ति और भी अधिक दिखाई देती है। राम राज्य, राज–भवन, शयनागार, जलशाला, गन्धशाला, मंत्रशाला आदि का वर्णन इस प्रवृत्ति के ज्वलन्त उदाहरण है। इस दृष्टि से आचार्यत्व कवि केशव ने 'रामचन्द्रिका' को काफी उन्नत बना दिया है।

कथानक की असम्बद्धताओं के कुछ विशेष ही कारण रहे हैं, जिनमें रामायण की लोकप्रियता एवं विशालता, रागकथा का वैभव–वर्णन की प्रधानता, कवि पर पड़ा दरबारी प्रभाव। कारण चाहे जो भी हो, इतना कहना पड़ेगा कि कथा की सुसंघटना एवं जीवन्तता के अभाव में कवि अपेक्षित गरिमा, गाम्भीर्य की योजना करने में असफल है, जिसकी वजह से 'रामचन्द्रिका' जैसे महाकाव्य में शिथिलता व न्यूनता समाहित हो गई है अतः यह काव्य शिथिल महाकाव्य माना जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि आचार्य कवि केशव एक प्रबन्धकार की प्रतिभा तथा कवित्व की शक्ति से युक्त थे किन्तु परिस्थितिवश उनका समुचित उपयोग करने में असफल रहे और अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के मोह में क्लिष्टता एवं स्व–कठोरता से घिरे रहे जिसकी वजह से उनकी रचना में स्थूल दोष उत्पन्न हो गया। इस दृष्टि से रामचन्द्रिका की प्रबन्धात्मकता एवं महाकाव्यत्व कीचड़ में लिप्त कमल सदृश्य सुन्दर परिलक्षित होते हुए भी कुछ न्यून दिखाई देता है वैसे औसतन यह सफल रहा है।

प्रश्न 3 केशव की संवाद–योजना पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिये।

अथवा

'केशव की संवाद–योजना बेजोड़ एवं सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है।' इस कथन की सोदाहरण पुष्टि कीजिये।

उत्तर – रीतिकालीन कवियों में आचार्य केशव का नाम पूर्ण सम्मान के साथ लिया जाता है। इन्होंने अपने काव्य में जो संवाद प्रस्तुत किये हैं वे अपने आप में अत्यन्त प्रशंसनीय एवं रोचक माने जाते हैं। इन्होंने नाटकीय शैली में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संवाद कर अपनी अनोखी प्रतिभा का पाठकों से साक्षात्कार कराया है। केशव की संवाद–योजना को हम 'रामचन्द्रिका' का मूलाधार कह सकते हैं जो रीतिकालीन काव्यों में सर्वश्रेष्ठ है। किसी भी सफल महाकाव्य में संवादों का उत्कृष्ट स्तर पर प्रयुक्त होना आवश्यक होता है इस दृष्टि से यदि हम 'रामचन्द्रिका' की संवाद योजना का अध्ययन करें तो उनकी श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने केशव की संवाद–योजना के संदर्भ में लिखा है कि 'रामचन्द्रिका' में केशव को सबसे अधिक सफलता संवादों में ही मिली है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक संवादों की सजीवता विद्यमान है जिसके कारण एक ओर तो रोचकता अपने चरम स्तर पर है और दूसरी ओर अध्येता के मन को अनुरंजित करने में पूर्णतः सफल है। इस महाकाव्य के संवाद पात्रों के व्यक्तित्व के उद्‌घाटन के साथ–साथ कथानक व उसके विकास को भी पर्याप्त गति प्रदान करने में सफल है। संवादों के माध्यम से केशव ने पात्रों की अन्तःभावना की अभिव्यक्ति की है जिसकी वजह से उनका चरित्र–चित्रण करते समय पाठक को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है। केशव ने जिस ढंग से संवाद योजना को काम में लिया है वह ढंग लोकप्रियता का भी एक अहम कारण बना है।

रामचन्द्रिका की संवाद योजना – केशव का संवाद भाव व कला दोनों ही दृष्टि से अत्यन्त प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत हुई है। इस सुन्दर योजना से पाठक बिना किसी परेशानी के प्रभावित हो जाता है। केशव ने अपनी इस योजना को जीवन्त बनाये रखने के लिए गुणों की विविधता को विशेष रूप से समाहित किया है। यदि किसी काव्य कृति के अन्तर्गत सन्निहित संवादों को केवल एक ही प्रकार से भाव–भूमि पर स्थापित किया जाये तो उसमें विशेष प्रभावोत्पादकता उत्पन्न नहीं होती है, अतः उनमें विभिन्नता का समायोजन नितान्त आवश्यक है। आचार्य केशव इस तथ्य से भली–भाँति परिचित थे, कदाचित् इसी लक्ष्य को लेकर उन्होंने अपने महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' के संवादों में भाव एवं कला दोनों दृष्टियों से वैविध्य का समावेश किया है।

रामचन्द्रिका और संवाद योजना

प्रो. सुरेशचन्द्र गुप्त ने केशव द्वारा विरचित 'रामचन्द्रिका' में प्रमुख रूप से छः प्रकार के संवाद बताये हैं किन्तु विस्तारपूर्वक इनका अवलोकन करने पर इसमें दस मुख्य संवाद हैं जो अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। संवादों का प्रमुख प्रसंग इस प्रकार है –

1. दशरथ–विश्वामित्र संवाद (सर्ग–2)
2. सुमति–विमति संवाद (सर्ग–3)
3. रावण–बाणासुर संवाद (सर्ग–4)
4. विश्वामित्र–जनक संवाद (सर्ग–5)
5. परशुराम–वामदेव संवाद (सर्ग–6)
6. परशुराम–राम–लक्ष्मण संवाद (सर्ग–7)
7. कैकेयी–भरत संवाद (सर्ग–10)
8. शूर्पनखा–राम संवाद (सर्ग–11)
9. सीता–रावण संवाद (सर्ग–13)
10. हनुमान–रावण संवाद (सर्ग–14)
11. रावण–अंगद संवाद (सर्ग–16)
12. लव–कुश, विभीषण–सुग्रीव संवाद (सर्ग–17)

इन संवादों को हमने सुविधा के लिये निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया है –

1. गत्यात्मक संवाद
2. चरित्रोद्‌घाटक संवाद
3. पूर्व घटना–सूचक संवाद
4. प्रश्नोत्तरमूलक संवाद
5. व्यंग्यात्मक संवाद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. भावानुकूल संवाद
7. कूटनीतिक संवाद
8. परिचयात्मक संवाद
9. नाटकीय संवाद
10. आध्यात्मिक संवाद।

1. **गत्यात्मक संवाद** – कथा–विकास को गति प्रदान करने के लक्ष्य से इस प्रकार के संवाद काम में लिये जाते हैं। इन्हीं संवादों के माध्यम से घटनाओं को परस्पर सम्बद्ध किया जाता है। इनके अन्दर प्रारम्भ से अन्त तक गति विद्यमान रहती है। जिसमें स्वाभाविकता समाहित रहती है। आचार्य कवि केशव के प्रबन्ध काव्य 'रामचन्द्रिका' में रावण–वाणासुर संवाद तथा मारीच–रावण संवाद इस गत्यात्मक संवाद के ज्वलन्त उदाहरण हैं। जब रावण अपने प्रतिद्वन्द्वी राम के विरुद्ध मारीच से सहायता हेतु जाता है तो मारीच उसे सचेत करता है किन्तु रावण कतई नहीं मानता है –

रावण– तु अब होहि सहायक मेरो। हौं बहुते गुण मानि हौ तेरो।।
जो हरि सीतहिं ल्यावन पैहैं। वे भ्रम सोकन ही मरि जैहै।।
मारीच– रणहिं मानुष के जनि जानौ। पूरण चौदह लोक बखानो।।
रावण– तू अब मोहि सिखावत है सठ। मैं बस लोक करे अपनी हठ।।

2. **चरित्रोद्घाटक संवाद** – पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करने के प्रयोजन से इस प्रकार के संवादों का प्रयोग किया जाता है। केशव के महाकाव्य में इस श्रेणी के संवाद काफी हैं जिनमें जनक–विश्वामित्र संवाद, वामदेव–परशुराम संवाद, राम–परशुराम संवाद, हनुमान–रावण संवाद, सीता–रावण संवाद आदि इसी प्रकार के संवाद रहे हैं। जिनके माध्यम से पात्रों के चरित्र पर काफी प्रकाश पड़ा है यथा – जनक व विश्वामित्र संवाद –

विश्वामित्र– सुन्दर श्यामल राम सुजानो, गोरे सुलक्ष्मण राम बखानो।
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ, सूरज के कुल मण्डन दोऊ।।
नृपमणि दशरथ नृपति के, प्रकटे चारि कुमार।
राम भरत लक्ष्मण ललित, अरु शत्रुघ्न उदार।।

परशुराम–वामदेव संवाद

परशुराम– यह कौन को दल देखिये?
वामदेव– यह राम को प्रभु लेखिये।
परशुराम कहि कौन राम न जानिहो?
वामदेव– शर ताडका जिन मारियो।

इसी प्रकार हनुमान–रावण संवाद व अंगद–रावण संवाद भी राम व रावण के चरित्र पर आलोक डालते हैं –

रे कपि कौन तू? 'अच्छ को घातक, दूत बलि रघुनन्दनजू को।'
'को रघुनन्दन रे?– त्रिसरा–खरदूषण–दूषण भूषन भू को।।'
'सागर कैसे तरयो?' जैसे गोपद काज कहा ?' सिय चोरहि देखौ।'
'कैसे बंधायो? जो सुन्दरी तेरी हुई दृग सोवत पातक लेखौ।।'

3. **पूर्वघटना सूचक संवाद** – केशव कृत महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' में अनेक संवाद ऐसे हैं जिनसे पूर्व घटित घटनाओं का संकेत मिलता है तथा कथानक में वर्णनात्मकता का समावेश हुआ है।

भरत–कैकेयी संवाद –

मातु कहाँ नृप? तात गये सुर लोकहि, क्यों सुत शोक लये?
सुत कौन सु? राम कहाँ है अबै? बन लक्ष्मण सीय समेत गये।।
बन काज कहाँ कहि? केवल मो सुख, तोको कहा सुख याते भये?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अंगद–रावण संवाद

राम को काम कहा? रिपु जीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यो कहाँ?
बाली बलि, छल सो, भृगुनन्दनगर्व हर्‌यो, द्विज दीन महा।।
दीन सु क्यों द्विति छत्र हन्यो, बिन प्राणन हैहयराज कियो।

4. प्रश्नोत्तरमूलक संवाद – प्रश्नोत्तरमूलक संवादों के माध्यम से केशव ने पात्रों की भावना एवं काव्य–कला का सुन्दरतम समन्वय किया है। इस प्रकार के संवादों में नाटकीयता एवं महान प्रभावोत्पादकता का समावेश होने लगता है। इस दृष्टि से इस महाकाव्य में हनुमान–रावण संवाद एवं अंगद–रावण संवाद अति आकर्षक बन पड़ा है।

5. व्यंग्यात्मक संवाद – ऐसे संवादों में उक्ति वैचित्र्य व पूर्ण चमत्कार दृष्टिगोचर होते हैं जो अक्सर रुचिकर एवं प्रभावकारी होते हैं। अंगद–रावण एवं परशुराम–लक्ष्मण संवाद में इस प्रकार की विशेषताएं स्वतः दिखाई देती है। इसी प्रकार राम व परशुराम का संवाद भी महत्त्वपूर्ण है –

राम– भृगुकुलकमल दिनेश सुनि, ज्योति सकल संसार।
क्यों चलिहैं इन सिसुन पै डारत हौं जस भार।।
परशुराम– राम! सुबन्धु संभारि, छोडत हौं सर प्रान हर।
देहु हश्यारन डारि, हाथ समेतन बेगि दे।।

6. भावानुकूल संवाद – 'रामचन्द्रिका' में पात्रों के आन्तरिक भावों को सशक्त अभिव्यक्ति देने में केशव के संवाद सफल रहे हैं। इस दृष्टि से परशुराम–राम–लक्ष्मण संवाद अत्यन्त जीवन्त हैं। जब शिव धनुष भंग हो जाने पर परशुराम क्रोधित हो उठते हैं और अपने शौर्य का बखान करते हैं तो लक्ष्मण व्यंग्य करते हैं जिससे उनकी क्रोधाग्नि और अधिक तीव्र हो जाती है –

परशुराम– लक्ष्मण के पुरखान कियौ,
पुरुषारथ सो न कहयो परई।
वेश बनाइ कियो वनितानि को,
देखत केशव ह्यौ हरई।।
कूर कुठार निहारि तजै फल,
ताकौ यहै जो हियो जरई।
आज ते केवल ताको महाधिक,
छत्रिन पै जो दया करई।।

इस कथन पर राम उनके क्रोध को शान्त करने का प्रयास करते हैं साथ ही उनके शौर्य की प्रशंसा भी करते हैं किन्तु इस बात पर परशुराम शान्त नहीं होते हैं अपितु वे राम की गुरुता पर कटाक्ष करने लगते हैं

राम कहा करिहो तिनकौ
तुम बालक देव अदेव डरै हैं।
गाधि के नन्द तिहारे गुरु
जिन यों ऋषि वेश किये उबरे हैं।।

परशुराम के इस आक्षेप पर राम क्रोधित होकर कहते हैं –

भगन भयो हर धनुख सालै तुमको अब सालै।
वृथा होइ विधि सृष्टि ईस आसन ते चालै।।

7. कूटनीतिक संवाद – केशव की 'रामचन्द्रिका' में कूटनीति का भी सुन्दर पुट समाहित है जिसका सुन्दर उदाहरण रावण–अंगद संवाद है। रावण अंगद की भावनाओं को भड़काकर उसे राम का विरोधी बनाने का प्रयास करता है किन्तु रावण अपनी चाल में सफल नहीं हो पाता है अंगद भी रावण की कूटनीतिक चाल का कठोर उत्तर देते हैं –

रावण– जो सुत अपने बाप को बैर न लेई प्रकास।
ताषो जीवित ही मरयो लोक कहैं तजि आस।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अंगद– इसको विलगि न मानिये कहि केशव पलु आधु।
पानी पावक पवन प्रभु, ज्यों असाधु त्यों साधु।।

8. परिचयात्मक संवाद – 'रामचन्द्रिका' में ऐसे संवाद काफी मात्रा में हैं। जनक–विश्वामित्र संवाद, हनुमान–राम संवाद में पात्र परस्पर अपना परिचय देते हैं –

राम– पुत्र श्री दशरथ के वन राज्य शासन आइयो।
राम–लक्ष्मण नाम संयुत सूर्य वंश बखानियो।।
हनुमान– या गिरि पर सुग्रीव नृप ता संग मैत्री चारि।
बानर लई छडाई तिय, दीन्हीं बालि निकारि।।
रावण– कौन हौं, पठये सौं कौने ह्याँ तुम्हें कह काम है?
अंगद– जाति वानर, लंक नायक दूत, अंगद नाम है।

ऐसे संवादों से पात्रों के परिचय के साथ–साथ कथानक में गत्यात्मकता का संचार भी हुआ है।

9. नाटकीय संवाद – इस प्रकार के संवादों में पात्रों के हाव–भाव व्यक्त करने की क्षमता होती है। केशव ने अपने ग्रन्थ में पर्याप्त नाटकीयता समाहित की है जिससे उनके हाव–भाव पाठकों को मोहित करने के साथ–साथ बोध–वृत्ति में भी सहायक सिद्ध हुए हैं– रावण के दरबार में प्रतिहारी के द्वारा स्तुतिगान में यह भाव दृष्टव्य है –

पढौ विरंची! मौनि वेद जीव! सौंर छाडि रे।
कुबेर! बैर के कही, न यच्छ भीड़ माँडि रे।।
दिनेस! जाइ दूरि बैठि नारदादि संग ही।
न बाल नन्द! मन्द बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं।।

इस स्तुति में ऐसा लगता है जैसे पात्र कथन के साथ–साथ अभिनय भी कर रहे हों।

10. आध्यात्मिक संवाद – 'रामचन्द्रिका' में कुछ संवाद इस प्रकार के हैं जिनमें आध्यात्मिक तत्त्वों का विश्लेषण भी मिलता है। जब कोई भी दो पात्र अध्यात्म पर परस्पर विचार–विमर्श करते हैं तो उसमें जिज्ञासावृत्ति शान्त हो जाती है। प्रस्तुत ग्रन्थ में राम व गुरु वसिष्ठ का संवाद कुछ इसी प्रकार का है जिसमें राम अपने गुरु वसिष्ठ से मुक्त जीवों की परिभाषा पूछते हैं, तदुपरान्त गुरु वसिष्ठ भी उनकी जिज्ञासा का शान्त करते हैं।

राम– जीव बंधे सब अपनी माया।
कीन्ह कुकर्म मानो बचकाया।।
जीवन वित्त प्रबोधन आनो।
जीवन मुक्त को मर्म बखानो।।
वसिष्ठ–बाहर हूं अनि शुद्ध हिये हूं।
जाहि न लगत कर्म किये हूं।।
ता कहं जीवन मुक्त बखानो।

निष्कर्ष – अन्त में हम यह कह सकते हैं कि 'रामचन्द्रिका' में की गई संवाद–योजना निश्चय ही स्तुत्य है। इसमें सर्वत्र एक सजीव चेतना अन्तर्निहित है और कुण्ठित भावधारा दिखाई नहीं है। संवाद योजना की मौलिकता व शिल्प चमत्कार से काव्य में अनूठापन आ गया है।

प्रश्न 4 'भूषण बिन न बिराजई, कविता वनिता मित्त।' प्रस्तुत पंक्ति के आलोक में कवि केशव की अलंकार योजना पर प्रकाश डालिये।

उत्तर – रीतिकालीन आचार्यों में कवि केशव का नाम पूर्ण सम्मान के साथ याद किया जाता है। वस्तुतः 'केशव कवि बाद में हुए, आचार्य पहले थे। यह तथ्य उनकी रचनाओं में स्वतः स्पष्ट होने लगते हैं। आचार्य केशव के परिवार की एक महती विशेषता यह रही है कि वहाँ वाग्व्यवहार में संस्कृत भाषा का सुन्दर प्रयोग होता है। यह भी कहा जाता है कि केशव के परिवार की शुक–सारिकाएँ भी संस्कृत भाषा का प्रयोग करती थी। यही प्रमुख कारण रहा है कि उन्हें संस्कृत के अध्ययन के लिये पारिवारिक प्रश्रय मिला था। उन्होंने घर पर रहकर ही भामह, रुद्रट, वामन, दण्डी आदि प्रमुख आचार्यों के बारे में विस्तृत अध्ययन किया। इस वजह से उन पर संस्कृत के आचार्यों का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अलंकारवादी दृष्टिकोण हावी रहा और वे अपनी कविता कामिनी को तथा अपने काव्य को अलंकारों से विभूषित करते थे और इस प्रवृत्ति को वे कवि की परम कसौटी मानते **थे। 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितानानम्'** आचार्यत्व की इस उक्ति के कट्टर पक्षधर थे। इसलिये उन्होंने 'कविप्रिया' के प्रारम्भ में अपना मत प्रकट किया –

'जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता, वनिता, मित्त।।'

आचार्य केशव काव्य की चारुता के लिये उक्ति चमत्कार की प्रवृत्ति को सर्वोपरि मानते थे। अलंकारिक धारणाओं की विस्तृत विवेचना उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कविप्रिया' में की है। वे इस प्रवृत्ति के प्रथम आचार्य बने और उदाहरण ग्रन्थ के रूप में उन्होंने 'रामचन्द्रिका' का प्रणयन किया। उन्होंने 'कविप्रिया' में एक स्थान पर इस तथ्य को स्पष्ट भी किया है कि वे स्वाभाविक शृंगार को अलंकारों के द्वारा बिगाड़ने के पक्षधर नहीं थे।

उनका मत है कि यदि रचना स्वयं चमत्कारपूर्ण है तो या अल्पालंकारों से ही काव्य चमत्कृत हो जाये तो अतिशय अलंकारों की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि अतिशय के कारण विकृति भी संभव है। कविता कामिनी गें अलंकारों का स्वाभाविक व राहज प्रयोग होना चाहिये। यद्यपि अपनी रचना 'रागचन्द्रिका' गें इरा रिद्धान्त कापालन करने का प्रयास किया गया है किन्तु अतिशय पाण्डित्य प्रदर्शन के कारण, उनकी रचना अलंकारों से बोझिल बन गई है इसी वजह से राम–वन–गमन, सौन्दर्य–चित्रण एवं प्रकृति–चित्रण जैसे प्रसंगों में उनके अतिशय अलंकारों के कारण नीरसता आ गई है जिसकी वजह से उन्हें आलोचकों ने 'कठिन काव्य का प्रेत' और 'हृदयहीन कवि' जैसी संज्ञाएँ प्रदान की हैं।

आचार्य केशव और अलंकार

आचार्य कवि केशव ने अपनी काव्य रचनाओं में दोनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। वैसे उनकी इच्छा अनुप्रास, यमक और श्लेष अलंकारों की ओर अधिक रही है। इसका कारण उनकी चमत्कार प्रवृत्ति है। इन अलंकारों के अतिरिक्त पुनरुक्ति, वीप्सा, वक्रोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, रुपक, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, परिकर आदि अलंकारों का भी काफी प्रयोग किया गया है। यथा –

1. श्लेष अलंकार का प्रयोग – श्लेष अलंकार का अधिक प्रयोग करने से रचनाएँ क्लिष्टार्थक बन गई हैं। तीन–तीन, चार–चार, पाँच–पाँच अर्थों वाले श्लेष लिखना तो उनके लिये एक सामान्य सी बात थी।

'विधि के समान है विमानीकृत राजहंस,
विविध बिबुध युत मेरु सी अचल है।
दीपति दिपति अति सातो दीपि दिपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा बल है।'

प्रस्तुत पंक्ति में राजहंस का अर्थ दो प्रकार से निकलता है ब्रह्मा की सवारी का हंस और राजा श्रेष्ठ। 'सुदक्षणा' शब्द का अर्थ भी उत्तम दान–दक्षिणा और दिलीप की पत्नी से भी है।

2. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग – आचार्य कवि केशव ने अपनी रचनाओं में वर्णों की आवृत्ति से चमत्कार उत्पन्न करने का कई स्थानों पर प्रयास किया है। 'रामचन्द्रिका' में भी यत्र–तत्र अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है जिससे कई स्थानों पर तो इस अनुप्रास से अनुपम नाद–सौन्दर्य उभारा गया है।

सब जाति फटी दुःख की दुपटी, कपटी न रहे जह एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हुँ घटी, जगजीव जतीन की छूटी तटी।।

प्रस्तुत पंक्तियों में पंचवटी के प्राकृतिक सौन्दर्य को 'ट' वर्ण की आवृत्ति से चमत्कारिक किया है।

3. यमक अलंकार का प्रयोग – आचार्य केशव ने शब्दों की बार–बार आवृत्ति कर यमक सौन्दर्य की अनुपम छटा अपनी रचनाओं में बिखेरी है। उनकी 'रामचन्द्रिका' में कई ऐसे छन्द हैं जिनमें यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

'सिय को कछु सोधु कह्यो करुनामय, हे करुणा करिकै।'

प्रस्तुत उदाहरण में प्रथम 'करुणा' का अर्थ 'वृक्ष' और अन्य का अर्थ 'दया' है।

4. वक्रोक्ति अलंकार का प्रयोग – कवि केशव ने वक्रोक्ति अलंकार के दोनों प्रकारों का सुन्दर वर्णनात्मक प्रयोग किया है –

'गिरिराज ले गुरु जानिये सुरराज को धनु हाथ लै।
सुख पाय ताहि चढ़ाय कै धर जाहि रे यश साथ लै।।'

कवि केशव की अलंकार अतिशयता ने काव्यार्थ की गति को काफी अवरूद्ध किया है उसमें चारूत्व की अपेक्षा क्लिष्टता की वृद्धि हुई है। केशव ने उगते हुए सूर्य के लिए 'शोणित–कलित–कप्पल' की उत्प्रेक्षा की है और वन में जाते हुए राम को 'ठग–चोर' तक कह दिया है। रणक्षेत्र के रक्त में डूबे हुए हाथी– घोड़ों को 'पान की पीक' में पड़ी 'कपूर की किरणों' के रूप में वर्णित किया गया है। इस प्रकार अलंकारों के व्यामोह ने केशव का काव्य कठिन व रसहीन बना दिया है – जैसे

'शुभ्रद्रोणगिरि मणि–शिखर ऊपर उदित औषधि–सी गनों।
बहु शत मख धूमनि धूपित अंगनि हरि की सी अनुहारी।।'

उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग

व्योम में मुनि देखिजै अति लाल श्री मुख साजही।
सिंधु में बडवाग्नि की जनु ज्वाल माल विराजिही।।
चिन्तामणि सी मणी दई, रघुपति कर हनुमंत।
सीता जू को मन रंग्यो जनु अनुराग अनन्त।।

रुपक अलंकार का प्रयोग

शोक की आगि लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने।
जानकी की जनकादिक के सब फूलि उठे तरु–पुण्य पुराने।।

प्रतीक अलंकार का प्रयोग –

हयशालन हय घेरि लियो, शशि वर्ण सो केशव शोभ रयो।
श्रुति शामल एक विराजतु है, अलि क्यों सरसिरुह लाजतु है।।

गुढोत्तर अलंकार का प्रयोग – कवि ने इस अलंकार के माध्यम से गूढ कथन की ओर संकेत कर काव्य में चमत्कार उत्पन्न किया है –

परशुराम – यह कौन को दल देखियो।
वामदेव – यह राम को प्रभु लेखियो।
परशुराम – कहि कौन राम न जानि हौ।
वामदेव – सर ताड़का जिन मारियो।

पीहित अलंकार का प्रयोग

नारायण को धनु–बाण लियो।
ऐच्यों हँसि देखन मोद कियो।।
रघुनाथ कहेऊ अब काहि हमौ।
त्रेलोक्य कप्यो भय मानि घनौ।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विरोधाभास अलंकार का प्रयोग

विषमय यह गोदावरी, अमृतनि के फल देति।
केशव जीनहार के दुःख अशेष हरि लेति।।

प्रस्तुत उदाहरण में गोदावरी नदी के वर्णन में विरोधाभास है।

अपह्नुति अलंकार का प्रयोग – कवि केशव ने आमेय का निगरण कर अन्य वस्तु को उपमान रूप में चित्रित कर काव्य में रोचकता उत्पन्न करने का प्रयास किया है –

भट चातक दादर मोर न बोले।
चपला चमकै न, फिर खग बोलें।।

यथासंख्य अलंकार का प्रयोग – प्रस्तुत उदाहरण में केशव ने क्रमिक रूप में वस्तु का क्रिया के साथ अन्वय कर रोचकता उत्पन्न करने का प्रयास किया है –

कल हंसकलानिधि कंजन, कंज कछु दिन केशव देखि जिये।
गति आनन, लोचन, पायन के अनुरूपक से मन मान लियो।।

अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग – इस अलंकार में सामान्य कथन का विशेष कथन से अथवा विशेष कथन का सामान्य उक्ति से समर्थन किया जाता है, जिसका उपयोग केशव ने किया है –

दुःख देखे सुख होइगो, सुख न दुःख विहीन।
जैसे तपसी तप तपै, होत परम पद लीन।।

दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग – सधर्म वस्तुओं में बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव के द्वारा काव्य में चमत्कार उत्पन्न किया गया है –

एक रंक मारे तथों बडी कलंक लीजई।
बुन्द सूखि गो कहा महा समुद्र छीजई।।

उदात्त अलंकार का प्रयोग – किसी उदात्त वस्तु या अलौकिक वैभव का वर्णन किया जाये –

'महामीचु दासी सदा पाई धोवैं।
प्रतिहार है कै कृपा सूर जीवै।।
कृपानाथ लीन्हें रहै छत्र जाको।
करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको।।

व्याजस्तुति अलंकार का प्रयोग – निन्दा के माध्यम से स्तुति या स्तुति के व्याज से निन्दा करके काव्य में आकर्षण उत्पन्न किया जाता है – कवि ने व्याजस्तुति अलंकार का सुन्दर प्रयोग कर अपने काव्य में रोचकता उत्पन्न की है –

उरै गाय विप्रै अनाथै जो भाजै।
पर दृव्य छाडै पर स्त्रीहिं लाजै।।
पर द्रोह जासो न होवै रति को।
सु कैसे लरै देव कीन्हे यति को।।

काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग – कवि केशव ने अपनी प्रमुख कृति 'रामचन्द्रिका' में इसका पर्याप्त प्रयोग किया है। जब वाक्यार्थ में समर्थन की अपेक्षा करने वाली अस्पष्ट बात का अन्य अर्थ में समर्थन किया जाये। जैसे –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बर बाण शिखिन अशेष समुद्रहि सोखि सखा सुख ही तरिहौं।
अरु लंकहि और कलंकित की पुनि पंक कलंकहि को भरिहौं।।
भल भूंजि के राख सुखै करि कै दुःख दीरघ देवन के हरिहौं।
सिति कंठ के कंठहि को कंछुला दसकंठ के कंठन को करिहौ।।

विभावना अलंकार का प्रयोग – यह अलंकार आचार्य केशव का प्रिय रहा है। बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति बताना बिभावना अलंकार होता है। कवि ने रघुवंशियों के प्रलाप का वर्णन इसी अलंकार के साथ किया है –

यद्यपि ईंधन जरि गये, अरिगण केशवदास।
तदपि प्रतापानल के, पल–पल बढत प्रकास।।

परिसंख्या अलंकार का प्रयोग – आचार्य केशव ने अवधपुरी व भारद्वाज आश्रम वर्णन में तथा राम राज्य वर्णन में इस अलंकार का प्रयोग किया है। इस अलंकार में अन्य वस्तुओं में प्रतिपाद्य वस्तु का नियमन अथवा अभावात्मक चित्रण किया जाता है –

मूलन की ही जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम हुताशन धूम नगर एकें मलिनाइय।।
दुगति दुर्जन ही जु कुटिल गति–सरितन में।
श्रीफल को अभिलाष प्रकट कवि कुल के जी में।।

2.3 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि निश्चित रूप से केशव कट्टर अलंकारवादी आचार्य थे। पाण्डित्य प्रदर्शन और चमत्कारी प्रवृत्ति होने से केशव का काव्य यद्यपि अलंकृत है तथापि उसमें कुछ स्थानों पर अनौचित्य भी आ गया है। उपमानों का अनुचित प्रयोग, कवि प्रसिद्धि की अवहेलना और ऐतिहासिक क्रम का विपरीत वर्णन कर केशव ने उसे पूर्णतः शोभायमान नहीं किया है। किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी कृति में अलंकारों का विवेचन अपने काल की परिस्थितियों, परम्पराओं एवं वातावरण से प्रभावित होकर किया है। अतः अलंकारवादी आचार्य का अलंकार योजना काफी समृद्ध व प्रभावोत्पादक है।

2.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. क्या केशव को कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है।
2. रामचन्द्रिका के काव्यगुण को स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–3 : बिहारी

संरचना

3.0 कवि परिचय

3.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

3.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

3.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

3.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

3.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

3.3 सारांश

3.4 अभ्यास प्रश्नावली

3.0 कवि परिचय

रामभक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा विरचित 'रामचरितमानस' के बाद यदि किसी ग्रन्थ को लोकप्रियता प्राप्त हुई है तो वह बिहारी कृत 'सतसई' है।

'ब्रज भाषा बरनी कविन, बहु विधि बुद्धि विकास।
सब की भूषण 'सतसई', करी बिहारी दास।।
जो कोउ रस–रीति को, समझौ चाहे सार।
पढ़े बिहारी–सतसई, कविता को सिंगार।।'

मानस के बाद सतसई पर ही अनेक टीकाएँ निर्मित हुई। 'सतसई' का जो क्रम आज तक प्रचलित है वह आजमशाह ने बँधवाया था।

रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवियों में बिहारी का स्थान अन्यतम माना गया है। पंडित अम्बिका दत्त व्यास ने 'बिहारी विहार' में निम्नलिखित दोहा लिखकर बिहारी के जीवन व जन्म पर प्रकाश डाला है –

संवत जुग सर रस सहित, भूमि रीति गिन लीन।
कार्तिक सुदि बुध अष्टमी, जन्म हमें विधि दीन।।

बिहारी का जन्म ग्वालियर के पास बसुआ गोविन्दपुर गाँव में 1603 के लगभग हुआ था। वे चौबे माथुर थे। संभवतः 1662 तक वे जीवित रहे। अनेक विद्वानों ने बिहारी को आचार्य केशवदेव का पुत्र स्वीकार किया है। उनकी बाल–वय बुंदेलखण्ड में व्यतीत हुई। विवाह के पश्चात् वे मथुरा आ गये। कुछ समय पश्चात् मुगल बादशाह शाहजहाँ के निमन्त्रण पर वे आगरा चले गये। वहीं पर बिहारी का परिचय अनेक राजाओं से हुआ और इसी परिचय के परिणामस्वरूप बिहारी जयपुर नरेश जयसिंह के दरबार में आकर रहने लगे। जयपुर नरेश को अपनी नव विवाहिता पत्नी के प्रेमपाश में अतिशय आबद्ध देखकर उन्हें अपने कर्त्तव्य का अहसास दिलाने के लिये यह प्रसिद्ध दोहा लिखा –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अलि कली ही सौं बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।।

ऐसा कहा जाता है कि तभी से महाराज जयसिंह ने उनसे ऐसे ही सरस दोहे रचने का आग्रह किया। उन्हें ऐसे एक दोहे पर एक अशर्फी इनाम में मिलने लगी। इस प्रकार उन्होंने सात सौ दोहों की रचना की गई जो आगे चलकर 'सतसई' के नाम से विख्यात हुई। बिहारी ने यद्यपि एक ही कृति लिखी किन्तु यही एक रचना इतनी सुविख्यात हुई कि रीतिकाल की किसी भी रचना को यह सम्मान प्राप्त नहीं हो सका। इसी प्रकार महाराज

Jan Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जयसिंह जब दक्षिण भारत में मुगलों की ओर से शिवाजी से लड़ने के लिये गये तो कवि बिहारी ने प्रबोधित किया–

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखि बिहंग बिचारि।
बाज पराये पानि पर, तू पंछीनु न मारि।।

एक समय था जब बिहारी और देव को लेकर हिन्दी में घोर वाद–विवाद हुआ था। पं. पद्मसिंह ने बिहारी को श्रेष्ठ सिद्ध करने की चेष्टा की और 'नवरत्न' में मिश्र बन्धुओं ने देव को। इस वाद–विवाद से हिन्दी में तुलनात्मक समालोचना को प्रोत्साहन मिला। किन्तु पं. रामचन्द्र शुक्ल ने इसे निरर्थक बताया था। लाला भगवानदीन (बिहारी और देव) ने पं. पद्मसिंह शर्मा का, पंडित कृष्ण बिहारी मिश्र (देव और बिहारी) ने मिश्र बन्धुओं का समर्थन किया। वास्तव में बिहारी और देव दोनों एक ही युग के सामाजिक और सांस्कृतिक पीठिका को सम्भाले हुए कवि थे। बिहारी चमत्कार के पोषक थे और देव प्रधानतः रस के पोषक थे। देव में शृंगार के अतिरिक्त और भी रसों का परिपाक हुआ, उनका क्षेत्र बहुत व्यापक था। भाषा, व्याकरण, छन्द, अलंकार आदि की दृटि से दोनों की निष्पक्ष तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि यदि बिहारी देव की अपेक्षा अधिक उत्तम शिल्पी और शैलीकार हैं तो रस और भावों की व्यापकता की दृष्टि से देव आगे हैं।

बिहारी की 'सतसई' एक मुक्तक रचना है इसमें दोहा छन्द का प्रयोग किया गया है। "Brevity is art" अंग्रेजी का यह कथन पूर्णतः बिहारी के दोहों पर घटित होता है –

सतसइया के दोहरे, ज्यो नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगे, घाव करै गम्भीर।।

बिहारी ने 'गागर में सागर' भरा है। इनके दोहों के दो चरण अन्य दिग्गज कवियों के कवित्त–सवैयों के चार–चार चरणों से भी अधिक प्रभावशाली हैं, साथ ही इनके दोहों में कवि की बहुज्ञता का परिचय मिलता है। भाव–व्यंजना और शब्द विन्यास की दृष्टि से यह ग्रन्थ अपूर्व है। पद–मैत्री का एक उदाहरण –

गडे बडे छवि छाकु छकि, छिगुनी छोर छुटै न।
रहे सुरंग–रंग रंगी उही, नहँबी गँहबी नैन।।

प्रतिभाशाली होने के कारण बिहारी का काव्य तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव से पूर्ण भी दिखाई देता है और शृंगार–रस के सौन्दर्य से सिक्त भी। बिहारी श्रृंगारी कवि थे किन्तु उनकी सतसई में भक्ति, नीति, वैराग्य के दोहे भी मिलते हैं, प्रत्येक दोहा काव्यात्मक और कलात्मक है।

बिहारी के शब्दालंकारों से अर्थ की रमणीयता उत्पन्न होती है और रसोद्रेक होता है, यद्यपि कहीं–कहीं पर अतिशयोक्ति और कृत्रिमता आ जाने से प्रेम रस की पूर्ण निष्पत्ति नहीं हो पाई है। भावों का मानसिक सुकुमार, जिनके पीछे एक सम्पूर्ण घटना छुपी हुई हो इतने संक्षेप में इतना सरस चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है –

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे, भोंहनि हँसे, दैन कहें नटि जाय।।
नासा मोरि नचाई दृग, करी कका की सौंह।
काँटे सी कसके हिये, गड़ी कटीली गौंह।।

मानवी प्रकृति का उन्होंने सूक्ष्म निरीक्षण किया था और एक छोटा सा दोहा पूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है। वस्तु वर्णन के अन्तर्गत उन्होंने शोभा, सुकुमारता, नेत्र, विरह आदि के सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किये हैं किन्तु विरह वर्णन में उन्होंने कहीं–कहीं पर खिलवाड़ किया है –

इत आबत चलि जात उत, चली छ सातक हाथ।
चढी हिण्डोरे–सी रहे, लगी उसासन साथ।।

कल्पना शक्ति के साथ–साथ बिहारी की रचना में समास शक्ति भी है। उनकी मुक्तक–कला पूर्ण सफल रही है। इनके द्वारा अनुभावों वं अंग–चेष्टाओं की सृष्टि भी अत्यन्त उच्च कोटि की हुई है। उन्होंने उक्ति–कौशल,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कान्ति–सुकुमारता, विरह आदि के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। शब्द–वैचित्र्य के स्थान पर कवि ने अलंकारों का अनुपम विधान रखा है।

बिहारी के दोहे ' आर्यासप्तशती' (संस्कृत में) और गाथा सप्तशती (प्राकृत में) की छाया पर निर्मित हुए हैं किन्तु उनमें अपनी स्वयं की मौलिकता और सजीवता है। बिहारी का साहित्य ब्रज भाषा में है। यद्यपि उनकी 'सतसई' लक्षण ग्रन्थ के अनुसार नहीं हैं फिर भी उनके दोहे रस और नायक–नायिका–भेद के लक्षणों के अनुसार रखे जा सकते हैं। उनकी भाषा और चित्र–विधान पर फारसी का भी प्रभाव है।

समसामयिक परिस्थितियों में बिहारी पर की जाने वाली टिप्पणियाँ उनको यथार्थवादी और स्पष्ट वक्ता के रूप में प्रस्तुत करती हैं। काव्यकला की दृष्टि से वे अपने समय के सिरमौर कवि थे।

3.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परे, श्याम हरित दुति होई।।

शब्दार्थ – भव = संसार, बाधा = संकट, नागरि = चतुर, दुति = चमक।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति रस तरंगिणी' के बिहारी पाठ से अवतरित है जिसे 'सतसई' से लिया गया है। इसमें कविवर बिहारी ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में राधा रानी के रूप सौन्दर्य की महिमा का वर्णन किया है और अपनी सांसारिक विपदाओं को दूर करने की अनुनय–विनय की है।

व्याख्या – कवि बिहारी अपनी आराध्या राधिका से विनती करते हुए कहते हैं कि हे चतुर राधिका जी! आप मेरे सम्पूर्ण सांसारिक कष्टों का निवारण करें। कवि राधा जी के रूप सौन्दर्य की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे राधा रानी! आपके सुन्दर अनुपम शरीर के प्रतिबिम्ब मात्र के स्पर्श से भगवान् श्री कृष्ण की श्याम आभा भी हरित रंग की हो जाती है।

प्रस्तुत दोहे के अन्य दृष्टिकोण भी रहे हैं –

(I)

कवि बिहारी कहते हैं कि वे चतुर राधा जी मेरी समस्त सांसारिक विपदाओं व बाधाओं को दूर करें ताकि मेरा जीवन लक्ष्य अर्थात् मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो जाये। वे राधाजी ऐसी हैं जिनके शरीर की परछाई पड़ने से प्रभु श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं। परम ब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण जब राधाजी की परछाई मात्र से प्रसन्न हो जाते हैं तो मेरी विनती सुनने पर राधाजी की कृपा से मेरे जीवन की सम्पूर्ण सांसारिक बाधाओं का शमन भी अवश्य होगा।

(II)

कविवर बिहारी कहते हैं कि वे राधाजी मेरी सांसारिक विघ्न–बाधाओं को दूर करें जिनका ध्यान करने मात्र से समस्त प्रकार के दुःख व पाप स्वतः नष्ट हो जाते हैं और पुण्य रूप में बदल जाते हैं (प्रतिकार्थ रूप में श्याम व हरित शब्द क्रमशः दुःख–पाप तथा सुख–पुण्य प्राप्ति है।)

(III)

कवि बिहारी कहते हैं राधाजी का गोरा बदन स्वर्णिम आभा बिखेरने वाला है जिसकी कान्ति प्रभु कृष्ण के श्याम वर्ण पर पड़ती है तो वे भी हरित युक्त हो जाते हैं ऐसी चतुर राधिका मेरी सम्पूर्ण सांसारिक बाधा को दूर करें। (सुनहरे या पीले रंग के साथ नीला रंग मिल जाता है तो वहाँ हरितिमा समाहित हो जाती है।)

विशेष

1. बिहारी 'सतसई' के अधिकांश दोहे नायक–नायिका प्रधान हैं, अतः मंगलाचरण में राधा–कृष्ण के युगल–स्वरूप का उल्लेख किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. बिहारी राधा–वल्लभ सम्प्रदाय से प्रभावित थे जिसकी वजह से उन्होंने सर्वप्रथम उपासना का संकेत दिया है।
3. प्रस्तुत दोहे में श्लेष, काव्यलिंग और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग किया है।
4. श्रृंगार रस के साथ–साथ भाव–काव्य का चित्रण है।
5. हरित द्रुत (हरा होना) मुहावरे का सुन्दर प्रयोग
6. विहारी की काव्य प्रतिभा व भाषाधिकार दोनों का परिचय इससे मिल जाता है।

(2)

मोर मुकुट की चन्द्रिकनु, यों राजत नन्द नन्द।
मनु ससि–सेखर की अकस, किय सेखर सत चन्द।।

शब्दार्थ – चन्द्रिकनु = चन्द्रमा से, यों = इस प्रकार, राजत = शोभायमान, नन्द नन्द = श्रीकृष्ण, ससिसेखर = महादेव, अकस = प्रतिस्पर्धा।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य–पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी द्वारा विरचित 'सतसई' के दोहों से उद्धृत हैं जिसमें कविवर ने प्रभु श्री कृष्ण की अनुपम अलंकृत रूप सुन्दरता का रोचक वर्णन किया है।

व्याख्या – जब एक गोपी ने प्रभु श्रीकृष्ण के दर्शन किये तो वह उनके अलौकिक रूप सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई। वह अपनी अन्तरंग सखी से इस अनुपम व मनमोहक सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी! नन्द के पुत्र कृष्ण अपने मस्तक पर शत्–शत् चन्द्रमाओं से युक्त मोर पंखों का मुकुट धारण किये हुए हैं जो अत्यन्त शोभायमान लग रहे हैं। वे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों शशिधर शिव शंकर भगवान् से प्रतिस्पर्धा करने के लिये उन्होंनें शतचन्द्र अपने मस्तक पर धारण कर लिया हो अथवा ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों श्रीकृष्ण रूपी कामदेव ने शिवजी की ईर्ष्या के कारण सैकड़ों चन्द्रमा धारण कर लिये हों।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में बताया है कि श्रीकृष्ण रूपी कामदेव ने अपने मस्तक पर सैकड़ों चन्द्र धारण कर लिये हैं क्योंकि शिव और कामदेव एक दूसरे से ईर्ष्या भाव का अनुभव करते हैं क्योंकि तपस्या (शिव) वासना (कामदेव) एक दूसरे के विरोधी हैं। शिव के माथे पर केवल एक ही चाँद हैं।
2. शतचन्द्रों से श्रीकृष्ण का रूप सौन्दर्य और अधिक मनमोहक बन पड़ा है।
3. प्रस्तुत अंश में अनुप्रास, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
4. इस प्रकार का भाव 'राम–सतसई' में भी वर्णित है।

(3)

तंत्री–नाद कवित्त–रस, सरस राग, रति रंग।
अनबूड़े, बूड़े तरे, जै बूड़े सब अंग।।

शब्दार्थ – तंत्री = वीणा, नाद = आवाज (स्वर), रति–रंग = प्रेम रंग, बूड़े = डूबना, तिरे = पार हो गये।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य–पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जो कविवर बिहारी द्वारा विरचित 'सतसई' से लिया गया है। प्रस्तुत दोहे में कवि ने ललित कलाओं का महत्त्व बताकर उन्हें जीवन का सार–तत्त्व माना है।

व्याख्या – कवि बिहारी कला के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि चाहे वीणा की स्वर लहरी हो या किसी कवित्त की रस तरंगिणी हो अथवा प्रेम की अनुभूति हो। जो इनके रंग में रंग जाता है अथवा इनके आनन्द में सराबोर हो जाता है अथवा इसमें पूर्ण रूपेण डूब जाता है। वे अपनी सम्पूर्ण सांसारिक बाधाओं को आसानी से पार कर जाते हैं अर्थात् उनका जीवन आनन्दमय बन जाता है। किन्तु जो लोग इनके आनन्द रंग में नहीं डूबे हैं अर्थात उसका सतही ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे इस संसार सागर में फंसकर ही डूबे हुए हैं।

मधुर संगीत, काव्य का रसानन्द और सुन्दर स्त्री के प्रेमपाश में जो व्यक्ति नहीं डूबे हैं या उनका पूर्ण आनन्द प्राप्त नहीं किया है, उनका जीवन निष्फल माना जाता है वे तो एक प्रकार से इस भव सागर में डूबे हुए के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समान हैं। किन्तु जिन लोगों के अंग–प्रत्यंग इन आनन्ददायक आस्वादन कर चुके हैं, सरस अनुभूति प्राप्त कर चुके हैं समझो कि वे संसार में डूबे हुए होने पर भी संसार से तर गये हैं।

विशेष

1. संगीत या काव्य कला अथवा कामिनी सुख सभी कष्टों या संतापों में राहत प्रदान करते हैं।
2. भावात्मक एकता यदि इन सुखों में समाहित की जाये तब ही ब्रह्मानन्द सहोदर रस का आस्वादन किया जा सकता है।
3. इनके आस्वादन में अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है।
4. 'अनबूडे–बूडे' में विरोधाभास है।
5. रंग में श्लेष व बूडे–बूडे में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया है।
6. भाव साम्य– "साहित्य संगीत कला विहीनः ।
   सक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः।" – तुलसी

(4)

कीनै हूँ कोटिक जतन, अब कहि काढै कौन।
भो मन मोहन–रूप मिलि, पानी मैं कौ लौन।।

शब्दार्थ – कोटिक = करोड़ों, जतन = प्रयास, काढे = निकालना, लौन = नमक।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य–पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने एक गोपिका की मनःस्थिति का चित्रण किया है।

व्याख्या – कविवर बिहारी एक गोपिका की कृष्ण प्रेमजनित मनःस्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मेरा मन श्रीकृष्ण के मनमोहक रूप सौन्दर्य का अवलोकन कर उसमें इस प्रकार विलीन हो गया है कि करोड़ों प्रयास करने पर भी अब उसे पृथक नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार पानी में मिले हुए नमक को कई प्रयासों द्वारा भी पानी से अलग नहीं किया जा सकता है इसी प्रकार मेरा मन कृष्ण के रूप लावण्य में समाहित हो चुका है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने एकनिष्ठ प्रेम की अभिव्यंजना की है।
2. अनुप्रास और उदाहरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

(5)

अरे हंस या नगर में, जैयो आपु विचारि।
कागनि सौं जिनि प्रीति करि, कोकिल दई बिडारि।।

शब्दार्थ – या = इस, कागनि सो = कौओं से, कोकिल = कोयल, बिडारि = भगा दिया।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य–पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने किसी विद्वान या गुणवान व्यक्ति को निर्गुणी व अज्ञानी लोगों के बीच जाने से रोकने की प्रेरणा प्रदान की है।

व्याख्या – कविवर बिहारी हंस के माध्यम से ज्ञानी व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे हंस! इस नगर में प्रवेश करने से पहले तुम थोड़ा विचार अवश्य कर लेना। इस नगर में ऐसे लोग रहते हैं जिन्होंने कौओं से प्रेम करके अनेक कोयलों को भगा दिया है। अर्थात् यहाँ पर ज्ञान सम्पन्न पवित्र आत्माओं को सम्मान नहीं दिया जाता है और गुणविहीन व दुष्चरित्र लोगों का अज्ञानियों द्वारा आदर–सत्कार दिया जाता है अतः ऐसे समाज में अज्ञानियों के बीच में रहना कहाँ तक उचित व अनुचित है इस बारे में जरा सोच–समझ कर विचार कर लेना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में हंस को शुभ्र वर्ण अर्थात् ज्ञानी अर्थात् पवित्रात्मा का प्रतीक माना है। कौआ को श्याम वर्ण व दुरात्मा का प्रतीक माना है।
2. कवि ने अल्प शब्दों में विद्वान की विद्वता व गुणी की गुणग्राहिता का सुन्दर रूप प्रस्तुत कर अज्ञानियों से दूर रहने का सुझाव दिया है।
3. अन्योक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(6)

यह बरियाँ नहीं और की, तू करिया वह सोधि।
पाहन–नाव चढाइ जिहिं, कीने पार पयोधि।।

शब्दार्थ – बरियाँ = बड़ियाँ, करिया = पतवार पकड़ने वाला, सोधि = खोजना, जिहिं= जिन्हें, पाहन = पत्थर।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी पाठ से अवतरित है जिसमें कविवर बिहारी ने बताया है कि एक सच्चा गुरु अपने शिष्य अथवा साथी को मोक्ष प्राप्ति के मर्म को स्पष्ट कर रहा है।

व्याख्या – कवि बिहारी कहते हैं कि बस एक मात्र प्रभु की ही शक्ति ऐसी है जो हमें इस भव सागर से मुक्ति दिला सकती है। अतः हे मन! तू उस कर्णधार प्रभु की खोज में अपने आप को उत्सर्ग कर दे जो अपनी महिमा से पत्थर की नाव बनाकर संसार–सागर से पार करा सकता है। जिस प्रकार नल और नील ने प्रभु श्रीराम की कृपा से शिला खण्डों का सेतु बनाकर सारी वानर सेना को पार करा दिया था।

कवि के अनुसार जीवन के अंतिम समय में हमें प्रभु का स्मरण अवश्य करना चाहिये। जिससे कि हम सभी पापों का शमन् कर इस संसार के आवागमन से मुक्त हो जायें अर्थात् हमें मुक्ति मिल सके।

विशेष

1. जिस पर प्रभु की कृपा होती है वह पाहन की नाव में बैठकर भी संसार–सागर को पार कर सकता है।
2. जीवन के अंतिम समय में मनुष्य को परम पिता परमेश्वर का स्मरण अवश्य करना चाहिये।
3. प्रस्तुत दोहे में कवि ने अनुप्रास, रूपक और समासोक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।

(7)

कैसे छोटे नरनु तैं, सरत बडनु के काम।
मढ्यो दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे कै चाम।।

शब्दार्थ – नरनु = मनुष्यों के, सरत = पूरा होना, दमामो =नगाड़ा, चाम = चमड़ी।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि बिहारी ने बड़े लोगों के बड़े कामों का महत्त्व स्पष्ट किया है।

व्याख्या – कविवर बिहारी कहते हैं कि बड़े लोगों के बड़े कार्य छोटे लोगों के द्वारा कैसे सम्पन्न हो सकते हैं? जिस प्रकार से चूहे की चमड़ी से बड़ा नगाड़ा नहीं मढ़ा जा सकता है उसी प्रकार छोटे लोगों के द्वारा बड़े काम सम्पन्न नहीं हो सकते हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में बड़े लोगों के बड़े कार्यों का महत्त्व स्पष्ट किया है।
2. दोहे में कवि ने अर्थान्तरन्यास और काकु वक्रोक्ति अलंकार का प्रयोग किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(8)

दिन दसु आदरु पाइ कै, करि लैं आपु बखानु।
ज्यों लगि काग सराध–पखु, तौ लगि तौ सनमानु।।

शब्दार्थ – आदरु = सम्मान, बखानु = वर्णन करना, सरधपखु = श्राद्धपक्ष।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'बिहारी' नामक पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि बिहारी ने एक ऐसे व्यक्ति की स्थिति का वर्णन किया है जो कि अपात्र होते हुए भी समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा है।

व्याख्या – कविवर कौए को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि कुछ समय के लिये आदर–सम्मान मिलने पर तू स्वयं चाहे कितनी ही अपनी प्रशंसा कर या उसका अनुभव कर। क्योंकि इन दिनों (श्राद्ध–पक्ष) तेरा हर कोई सम्मान करता है। किन्तु जैसे ही यह तेरा अनुकूल समय कुछ दिनों बाद समाप्त हो जायेगा वैसे ही तुझको कोई नहीं पूछेगा। इसी प्रकार अपात्र व्यक्ति का सम्मान समाज में सदैव नहीं रहता है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में स्पष्ट किया है कि जब किसी अपात्र को समाज में सम्मान मिलने लगता है तो वह स्वयं अपनी प्रशंसा करने लगता है यह अपात्र की पहचान होती है।
2. प्रस्तुत दोहे में अन्योक्ति व अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।

(9)

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाय।
तुम हूँ लागी जगत् गुरु, जग–नायक जग–बाय।।

शब्दार्थ – टेरतु = पुकारना, दीन = गरीब, जग–वाय = संसार की हवा।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि बिहारी ने एक मुँह लगे सेवक की तरह अपने आराध्य से अपनी दास्य भक्ति को विवेचित किया है।

व्याख्या – कविवर बिहारी कहते हैं कि हे प्रभु श्री कृष्ण! मैं कब से आपको दीन–वाणी से पुकार रहा हूँ किन्तु आप हैं कि मेरी एक भी बात को न तो सुनते हैं और न ही मेरी सहायता करने को तैयार होते हैं और आप मेरी विनती को अनसुनी करने की कोशिश कर रहे हैं। आपके इस रूखेपन से तो ऐसा लगता है कि जैसे आपको इस संसार की हवा लग गई है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने व्यंग्यात्मक मुहावरे 'संसार की हवा लगना' का प्रयोग किया है।
2. अपने आराध्य के प्रति तीखापन और स्पष्टवादिता को प्रकट किया है।
3. दोहे में वीप्सा, दीपक और काव्यलिंग अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
4. लक्षणा शब्द शक्ति का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(10)

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यों मनौ तारन–बिरदु, बारक बारनु तारि।।

शब्दार्थ – नीकी = भली, अनाकनी = आनाकानी, गुहारि = पुकार, बारक = एक बार, बारनु = हाथी।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने अपने आराध्य देव को भक्ति भाव से उपालम्भ देने का प्रयास किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्याख्या – कवि बिहारी कहते हैं कि हे भगवान्। आपने तो विनती को अच्छी तरह से अनसुनी कर दिया है। मैं बार–बार आपको पुकारता रहा किन्तु मेरी सभी पुकारों का आप पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ा। आप मेरे प्रति पूरी तरह से उदासीन बने हुए हो। आपकी इस उदासीनता से तो मुझे ऐसा लगता है मानों एक बार मगर के चंगुल में फँसे गजराज का उद्धार क्या कर दिया, आपने तो संसार के प्राणियों का उद्धार करने के यश को ही भुला दिया है। एक बार भगवान् श्रीहरि ने गजराज का उद्धार कर तीनों लोकों में अपना यश प्राप्त कर लिया। अब तो ऐसा लगता है वे इस एक बार के सुयश को प्राप्त करके ही संतुष्ट हो गये हैं और संसार के किसी भी प्राणी की विनती ही नहीं सुन रहे हैं। अतः कविवर बिहारी कहते हैं कि प्रभु श्रीहरि को सभी भक्तों की पुकार सुनकर उन्हें संसार सागर से मुक्ति दिलानी चाहिये।

विशेष

1. मगरमच्छ से गजराज की रक्षा करने के लिये भगवान् श्रीहरि नंगे पैरों पधारे थे। प्रस्तुत अन्तर्कथा के माध्यम से कवि ने भगवान् से विनती की है।
2. अनुप्रास, वक्रोक्ति, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।

(11)

प्रकट भये द्विज–राज–कुल, सुवस बसे ब्रज आई।
मेरो हरौ कलेस सब, केसव केसव राइ।।

शब्दार्थ – द्विजराज = श्रेष्ठ ब्राह्मण (चन्द्रमा), सुवस = स्वेच्छा, केसव = कृष्ण, केसवराय = कवि के पिता का नाम।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने अपना परिचय दिया है और अपनी भक्ति भावना को स्पष्ट किया है।

व्याख्या – कविवर बिहारी कहते हैं कि केसव (कृष्ण) अपने पिता (केसवराय) मेरे सम्पूर्ण सांसारिक कष्टों का शमन करें जो अपनी इच्छा से ही ब्रज में आकर बसे हैं जिनका जन्म द्विजराज कुल (श्रेष्ठ चन्द्र वंश) में हुआ है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में 'द्विजराज' और 'सुवस' में श्लेष अलंकार है और स्पष्ट किया है कि उनका जन्म एक श्रेष्ठकुल अर्थात् द्विजराज कुल अर्थात् चन्द्रवंश में हुआ है। कवि के पिताजी का नाम केसवराय था, वे स्वेच्छा से ब्रज में आकर बस गये थे।
2. कुछ विद्वानों ने केशवराय का आशय आचार्यकवि केशवदास माना है और बिहारी को केशव का पुत्र माना है। किन्तु यह तथ्य पूर्णतः भ्रामक है, क्योंकि बिहारी के पिता उत्तर प्रदेश के गोविन्दपुर निवासी थे जो कालान्तर में मथुरा आकर बस गये थे।
3. प्रस्तुत दोहे में पुनरूक्तिप्रकाश, यमक, श्लेष और रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. सामासिक शैली और समाहार शक्ति का सुन्दर समन्वय हुआ है।

(12)

मोहि तुम्हें बाढी बहस, को जीते यदुराज।
अपने–अपने बिरद की, दुहूँ निबाहत लाज।।

शब्दार्थ – मोहि = मुझे, बाढी = बढ गई, बहस = विवाद, को = कौन, यदुराज = श्रीकृष्ण, बिरद = अधम, विबाहत = निर्वाह, लाज = इज्जत।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने अपनी भक्ति, निष्ठा एवं हठ को प्रकट कर अपने आराध्य देव से अपने जीवन के उद्धार की कामना की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कविवर बिहारी अपने आराध्यदेव से अनुनय–विनय करते हुए कहते हैं कि हे यदुवंश शिरोमणि श्रीकृष्ण! आपके और मेरे बीच यह विवाद निरन्तर बढ़ रहा है कि हम दोनों में से कौन विजयी रहता है? क्योंकि आप अपने विरद की आन को बनाये हुए हैं और मैं अपने विरद की लाज बचाने में लगा हुआ हूँ अर्थात् मैं अपनी अधमता और दुष्टता का निर्वाह करने में लीन हूँ, आप अधमों और दुष्टों का उद्धार करने में लगे हुए हो। देखना तो अब यह है कि कौन अपने लक्ष्य का सही ढंग से निर्वाह कर पाता है? अर्थात् मेरे उद्धार पर ही आप विजयी रहेंगे।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने दास्य–भाव की भक्ति को स्पष्ट किया है।
2. प्रस्तुत दोहे में कवि की समाहार शक्ति परिलक्षित है।
3. वीप्सा, आक्षेप और प्रेय अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(13)

समै पलट पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल।
भौ अकरून करुना करौ, इहिं कपूत कलि काल।।

शब्दार्थ – पलट = परिवर्तन, निज = अपनी, चाल = स्वभाव, अकरुन = निष्ठुर, कपूत = कुपुत्र।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'बिहारी' नामक पाठ से लिया गया है, जिसमें कवि ने समय की परिवर्तनशीलता के साथ प्रभु श्रीहरि को भी अपना स्वभाव बदलने वाला बताया है।

व्याख्या – कवि बिहारी कहते हैं कि जब समय परिवर्तन होता है तो प्रकृति के नियम भी परिवर्तित हो जाते हैं और समय का परिवर्तन कभी किसी को नहीं छोड़ता है अर्थात् समय के साथ–साथ सब कुछ बदल जाता है। कवि बिहारी इसी तथ्य को आक्षेपवत कहते हैं कि हे प्रभु श्री कृष्ण! इस कलियुग के आते–आते आपने भी अपने करुणाकर स्वभाव को बदल लिया है और आप निर्मम हो गये हैं। हे भगवान्! आप तो करुणानिधान हैं, सब पर दया करने वाले हैं किन्तु लगता है कि समय के परिवर्तन ने आपको भी प्रभावित कर दिया है और आप करुण रूप को बदल चुके हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने समय के परिवर्तन के माध्यम से अपने आराध्य को उलाहना दिया है।
2. प्रस्तुत दोहे में अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर समन्वय हुआ है।
3. भाव साम्यः– "कब लों टेरत दीन रट होत नस्याम सहाय।
   तुम हूं लागी, जगतगुरु, जगनायक जगवाइ। (बिहारी)

(14)

ज्यों–ज्यों बढति विभावरी, त्यों–त्यों बढत अनन्त।
ओक–ओक सब लोक सुख, कोक–सोक हेमन्त।।

शब्दार्थ – विभावरी = रात्री, ओक = घर, कोक = चकवा, अनन्त = जिसका अन्त न हो, सोक = दुःख।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'बिहारी' नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने मानव जीवन में निहित सुख–दुःख की स्थिति का वर्णन किया है।

व्याख्या – कविवर बिहारी हेमन्तकालीन रात्रि बेला का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जैसे–जैसे इस ऋतु में रात बढ़ती जाती है वैसे–वैसे ही प्रत्येक घर में नायक–नायिकाओं के रात्रि सुख (रति–क्रिया) में वृद्धि होती जाती है और चक्रवाक पक्षी की पीड़ा बढ़ती जाती है। अर्थात् हेमन्तकालीन रात्रि लम्बी होती है तो नायक–नायिकाओं को रात्री में रति–क्रीड़ा का लम्बा समय मिल जाता है, अधिक अवसर भी मिल जाते हैं और उनका यौवन रति सुख बढ़ जाता है। किन्तु चक्रवाक पक्षी रात्रि में अपनी प्रिया से बिछुड़ जाता है और दीर्घ रात्रि होने के कारण उसका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विरह संताप भी दीर्घकालीन होता है इसलिये उसे लम्बी रात काफी दुःखदायी होती है। अतः हेमन्त की रातें जहाँ सुख में वृद्धि करने वाली होती हैं, वह दूसरी ओर दुःखदायी भी है।

विशेष

1. रात्रि की अवधि बढ़ने से रति सुख व विरह दुःख की उद्दीप्तता को स्पष्ट किया है।
2. एक ही समय में दो दो भावों की वृद्धि का चमत्कार है।
3. पुनरुक्ति प्रकाश, दीपक और उद्दीपन विभाव का प्रयोग हुआ है।

(15)

बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमानु।
भलौ भली कह छोड़िय, खोटे ग्रह–जपु–दानु।।

शब्दार्थ – तन = शरीर, ताही को = उसी को, सनमानु = आदर, खोटे = बुरे आचरण वाले।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने सज्जनों की उपेक्षा करने वाले समाज व लोक व्यवहार का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि बिहारी वर्तमान लोक–व्यवहार का चित्रण करते हुए कहते हैं कि तत्कालीन समाज में जिस व्यक्ति की रग में बुराई भरी हैं या खोट हो अर्थात् जो दुष्ट–प्रकृति का होगा उसी को अधिक सम्मान दिया जायेगा और सज्जनों का आदर नहीं किया जाता है बल्कि उनकी उपेक्षा की जाती है। जिस प्रकार अच्छे ग्रहों की कोई परवाह नहीं करता है और क्रूर या कुटिल ग्रहों (जैसे शनि, राहु केतु आदि) की शांति के लिये अनेक प्रकार के प्रयास या अनुष्ठान किये जाते हैं। उनके लिये जप–दान–पूजा–अर्चना आदि की जाती हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने स्पष्ट किया है कि दुष्ट लोग जन–सामान्य को भयभीत करते हैं और यही भय उन्हें सम्मान दिलाता है और सज्जनों की उपेक्षा कर देने पर जन–सामान्य भयभीत नहीं होता है।
2. ग्रह–दशा का प्रयोग कर कवि ने दृष्टान्त अलंकार को काम में लिया है।
3. क्रूर ग्रहों की शांति के लिए जप और दान कराने की बात कहना बिहारी को जयोतिष एवं हिन्दू संस्कृति का ज्ञाता सिद्ध करता है।

(16)

अति अगाधु अति ओथरौ, नदी कूप सरु बाई।
सो ताकौ सागरु जहाँ, जाकी प्यास बुझाई।।

शब्दार्थ – अगाधु = गहरा, ओथरो = उथला, सरु = तालाब, बाई = बावड़ी।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी पाठ से लिया गया है जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि जहाँ सच्चा प्रेम होता है वहीं पर संतुष्टि होती है और जहाँ संतुष्टि है, वहीं सच्चा प्रेम है।

व्याख्या – बिहारी जी कहते हैं कि नदी, तालाब बावड़ी आदि में चाहे गहराई पर पानी हो या बिल्कुल उथला हुआ है इससे कोई तात्पर्य नहीं है किन्तु इन साधनों से प्यासे की प्यास बुझती है तो इनका महत्त्व किसी सागर से कम नहीं हो सकता है। अर्थात् मन को जो अच्छा लगता है वही उसके लिए सबसे अधिक उपयोगी और सुन्दर होता है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में संतुष्टि प्रदान करने वाली वस्तु को ही अधिक महत्त्वपूर्ण बताया है।
2. अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, उदाहरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
3. संसार उपयोगिता देखता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(17)

मरतु प्यास पिंजरा परयो, सुवा समै के फेर।
आदरु दे दे बोलियतु, बायस बलि के बेर।।

शब्दार्थ – सुवा– तोता, आदरु– सम्मान, बोलियत– बुलाया जाता है, बायस– कौआ।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से लिया गया है जिसमें कवि ने समय की प्रधानता व स्वार्थी व्यवहार का वर्णन किया है।

व्याख्या – बिहारी कहते हैं कि समय विशेष पर निकृष्ट व्यक्ति या वस्तु का सम्मान होने लगता है और उत्कृष्ट वस्तु या व्यक्ति की उपेक्षा हो जाती है यह सब बलिहारी समय की है। एक समय (श्राद्धपक्ष) ऐसा आता है कि तोता पिंजरे में पड़ा–पड़ा प्यास से परेशान होता है और कौए को सम्मान सहित बुलाया जाता है और उसे पकवानों के ग्रास खिलाये जाते हैं। अर्थात् समय की प्रधानता से व्यक्ति या संसार का आचरण स्वतः बदल जाता है और जिससे स्वार्थ की सिद्धि होती है उसका आदर सत्कार किया जाता है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में अन्योक्ति, अनुप्रास और वीप्सा अलंकार का प्रयोग किया है।

(18)

तौ लगि या मन–सदन में, हरि आवै किहिं बाट।
विकट जटै जौ लगु निपट, खुलै न कपट कपाट।।

शब्दार्थ – तौ लगि = तब तक, सदन = घर, किहिं = किस, वाट = प्रतिक्षा, विकट= मजबूत, जटै = जुडे हुए, कपाट = द्वार।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने ईश्वर भक्ति के लिये मन की शुद्धि और कपटी आचरण से रहित मन पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या – कवि बिहारी कहते हैं कि मन रूपी घर में भगवान् तब तक नहीं पधार सकते हैं जब तक कि इसके मुख्य द्वार पर कपट रूपी किवाड़ लगे हुए हैं अर्थात् जिस व्यक्ति के मन में कपट होगा, छल होगा उसे ईश्वर की प्राप्ति कभी भी नहीं होगी और कपट रहित मन में सदा ईश्वर का निवास होगा। अतः भक्ति के लिये मन की पवित्रता अनिवार्य है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे के माध्यम से कवि ने मनुष्य को निष्कपट भाव रहने की प्रेरणा दी है।
2. दोहे में अनुप्रास और सांगरुपक अलंकार का प्रयोग है।
3. कवि ने कहा है "भोलो भाव मिले रघुराई।"

(19)

मंगल बिन्दु सुरंगु, मुखु, ससि केसरि आड़ गुरु।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन जगत।।

शब्दार्थ – मंगल = कल्याणकारी या मंगलमय, नक्षत्र, सुरंगु = लाल, आड़ = आडा तिलक, गुरु = वृहस्पति, नारी = स्त्री राशि, रसमय = प्रेममय।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत सोरठा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के बिहारी नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने श्रृंगार विलास का सुन्दर वर्णन किया है। प्रस्तुत सोरठा में बताया है कि एक नायक ने एक नायिका को सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित देख लिया है और उसके मन में उसके प्रति प्रेम जाग्रत हो जाता है और वह उसकी सखी से उसकी चमत्कारिक रूप शोभा का वर्णन करता है।

व्याख्या – कवि बिहारी कहते हैं कि एक अत्यन्त सुन्दर नायिका ने अपने उन्नत मस्तक पर सुन्दर लाल बिन्दी रूपी मंगल, मुख रूपी चन्द्रमा और केशर का पीला आडा तिलक रूपी वृहस्पति को एक साथ धारण कर रखा है अर्थात् मंगल, चन्द्र और वृहस्पति इन तीनों नक्षत्रों को एक ही नारी ने ग्रहण कर रखा है। ऐसा माना जाता है कि जब ये तीनों नक्षत्र कन्या राशि में प्रवेश कर जाते हैं तो आनन्दमय वातावरण बन जाता है अतः उस नारी को देखकर एक नायक उसकी सखी से कहता है कि तुम्हारी सखी को देखकर मेरी आँखों का संसार आनन्दमय हो गया है अर्थात् चाँद जैसे मुखड़े पे मंगल जैसी लाल बिन्दिया और पीला वृहस्पति जैसा आड़ा तिलक देखकर मेरी आँखें प्रेममय हो गई हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत सोरठा में कवि ने नायिका के सौन्दर्य को ग्रहों की सुन्दरता से आरोपित किया हैं
2. नायिका के मुख सौन्दर्य में मंगल (लाल) वृहस्पति (पीला) चन्द्रमा (गोरापन) समाहित किया है।
3. ज्योतिष विज्ञान की दृष्टि से जब मंगल, गुरु और चन्द्र एक साथ कन्या राशि में प्रवेश कर जाते हैं तो पृथ्वी पर जलवर्षण होता है। नायिका रूपी कन्या राशि में मंगल, गुरु व चन्द्र नक्षत्र को समाहित देखकर नायक की आँखों रूपी संसार में प्रेम रूपी जल की वर्षा होने लगी है।
4. प्रस्तुत सोरठा में अनुप्रास, रुपक और श्लेष अलंकार है।
5. ज्योतिष एवं ग्रह विषयक ज्ञान का बोध होता है।

3.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

3.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 कवि बिहारी रीतिकाल में किस विशेषता के लिये प्रसिद्ध है?
उत्तर – कवि बिहारी रीतिकाल में भाषा की सामासिकता और कल्पना की समाहारिता के लिये प्रसिद्ध है।

प्रश्न 2 कवि बिहारी रीतिकाल में किस कोटि के कवि थे?
उत्तर – कवि बिहारी रीतिकालीन रीतिसिद्ध कवि थे।

प्रश्न 3 कवि बिहारी के जन्म के संदर्भ में तथ्य स्पष्ट कीजिये।
उत्तर – बिहारी का जन्म वि.सं. 1620 में ग्वालियर के निकट वसुका गोविन्दपुर में हुआ था।

प्रश्न 4 बिहारी के अनुसार उनके गुरु का क्या नाम था?
उत्तर – बिहारी ने अपने गुरु का नाम नरहरिदास बताया है।

प्रश्न 5 बिहारी द्वारा विरचित 'सतसई' में प्रमुख रूप से कौन–सी भाषा प्रयुक्त की गई है?
उत्तर – 'सतसई' में कवि ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है।

प्रश्न 6 सर्वप्रथम कवि बिहारी किस राजा के आश्रय में रहे?
उत्तर – कवि बिहारी सर्वप्रथम मुगल बादशाह शाहजहाँ के आश्रय में रहें।

प्रश्न 7 बिहारी द्वारा 'सतसई' के दोहों को किस उपमा से उपमित किया गया है?
उत्तर – 'सतसई' के दोहों को 'नाविक के तीर' कहकर उपमित किया गया है।

प्रश्न 8 बिहारी 'सतसई' को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किस नाम से सम्बोधित किया है?
उत्तर – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'सतसई' मुक्तक काव्य को 'चुना हुआ गुलदस्ता' कहकर सम्बोधित किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 9 कवि बिहारी के दोहों की सबसे बड़ी विशेषता क्या है?
उत्तर – बिहारी के दोहों में कल्पना की समाहार–शैली और भाषा की समास–शैली परिलक्षित होती है।

प्रश्न 10 बिहारी 'सतसई' पर किस ग्रन्थ का सर्वाधिक प्रभाव है?
उत्तर – बिहारी 'सतसई' पर 'गाथा सप्तशति' का प्रभाव है।

प्रश्न 11 बिहारी ने अपनी रचना में सर्वाधिक किस ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया है?
उत्तर – नारी–सौन्दर्य के चित्रण में बिहारी ने अपनी रचनाएँ सृजित की हैं।

प्रश्न 12 'तौ लगि या मन सदन में हरि आवै केहि बाट' बिहारी ने भगवान की भक्ति के लिये क्या आवश्यक बताया है?
उत्तर – कवि ने ईश्वर प्राप्ति के लिये मन की पवित्रता व कपट रहित आचरण की आवश्यकता पर बल दिया है।

प्रश्न 13 बिहारी ने मानव मात्र को अपने व्यक्तित्व की कान्ति व मान सम्मान को बनाए रखने के लिये क्या विचार प्रस्तुत किये हैं?
उत्तर – कवि ने बताया है कि स्नेह भाव से निर्मल मन पर अहंकार और राजसी प्रवृत्ति को स्पर्श न करने दें तभी हम अपने व्यक्तित्व की चमक और मान–सम्मान को कायम रख सकते हैं।

प्रश्न 14 बिहारी ने अपने काव्य में कौन–सी त्रिवेणी का संगम किया है?
उत्तर – कवि ने अपनी मुक्तक काव्य रचना 'सतसई' में रीति, भक्ति और श्रृंगार की त्रिवेणी का संगम किया है।

प्रश्न 15 कवि बिहारी ने किस सम्प्रदाय से दीक्षा ली थी?
उत्तर – कवि बिहारी ने वैष्णव मतानुयायी निम्बार्क सम्प्रदाय से दीक्षा ली थी।

प्रश्न 16 'मनु सरित सेखर की अकस किय सेखर सत चन्द' प्रस्तुत पंक्ति में कवि का क्या आशय है?
उत्तर – कवि बिहारी ने श्रीकृष्ण के माथे पर बिराजमान मोर पंखों के मुकुट की सुन्दरता का वर्णन किया है।

प्रश्न 17 'अरे हंस या नगर में जइयो आपु बिचारि' प्रस्तुत पंक्ति में हंस के माध्यम से किसे सम्बोधित किया गया है?
उत्तर – प्रस्तुत पंक्ति में अन्योक्ति के माध्यम से सभ्य, सुशिक्षित एवं गुणवान व्यक्ति को हंस कहा गया है।

प्रश्न 18 'पाहन नाव चढाइ जिहि कीन्हे पार पयोधि' प्रस्तुत चरण में कवि ने किस घटना की ओर संकेत दिया है?
उत्तर – इस कथन में कविवर बिहारी ने स्पष्ट किया है कि जब श्रीराम लंका गये थे तो उन्होंने नल व नील की सहायता से सेतुबन्ध द्वारा वहाँ पहुँचे थे अर्थात् राम कृपा से पत्थर भी पानी में तैरने लगे थे।

प्रश्न 19 'कैसे छोटे नरनु तें, सरतु बड्नु के काम' प्रस्तुत चरण में कवि क्या व्यंजित करना चाहता है?
उत्तर – कवि ने व्यंजित किया है कि महान् कार्य करने के लिये महान गुणवान लोगों की आवश्यकता होती है उसे जन–साधारण या छोटा व्यक्ति सम्पन्न नहीं कर सकता है।

प्रश्न 20 'दस दिनु आदर पाइ कै, करि लै आपु बखान' मे निहित अन्योक्ति का क्या आशय है?
उत्तर – कवि ने स्पष्ट किया है कि दुर्जन व्यक्ति को अल्पकाल तक ही समाज में सम्मान मिलता है और जो मूर्ख लोग होते हैं वे थोड़ा सा सम्मान पाकर स्वयं की प्रशंसा स्वयं ही करते रहते हैं।

प्रश्न 21 'मेरो हरो कलेस सब, केसव केसवराई' पंक्ति में 'केसव' और 'केसवराई' शब्द किसके लिये प्रयुक्त हुआ है?
उत्तर – प्रस्तुत दोहे में श्रीकृष्ण के लिये 'केसव' और कवि बिहारी के पिता केशवराय के लिये 'केसवराई' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

प्रश्न 22 'समै पलटि पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल' पंक्ति में निहित भाव को व्यक्त कीजिये।
उत्तर – कविवर बिहारी ने स्पष्ट किया है कि समय परिवर्तनशील है और समय के परिवर्तन के साथ–साथ संसार के प्रत्येक पदार्थ में परिवर्तन अवश्यंभावी है।

प्रश्न 23 'कोक–सोक हेमन्त' कवि के अनुसार हेमन्त ऋतु में चक्रवाक का शोक क्यों बढ़ जाता है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्तर – कवि के अनुसार हेमन्त ऋतु में राते लम्बी होती हैं ऐसी स्थिति में चक्रवाक को अधिक समय तक विरह दुःख भोगना पड़ता है क्योंकि वह रात्री के अंधेरे में अपनी प्रेयसी के पास नहीं रहता है।

प्रश्न 24 'बसें बुराई जासु तन ताहि को सम्मान' पंक्ति में कवि का आशय स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – कवि के अनुसार मनुष्य को कुटिल आचरण कभी भी नहीं करना चाहिये क्योंकि अवगुणों का सम्मान चिरकालीन नहीं होता है।

प्रश्न 25 'सो ताकौ सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाइ' कवि की क्या व्यंजना हुई है?

उत्तर – जिस वस्तु अथवा साधन से मनुष्य के प्रयोजन सिद्ध हो जाये और संतुष्टि हो जाये, वही वस्तु या साधन महान व प्रिय लगती है, चाहे वह साधन या वस्तु अत्यन्त सामान्य अथवा तुच्छ ही क्यों न हो।

प्रश्न 26 'मरतु प्यास पिंजरा परयो, सुवा समय के फेरि' प्रस्तुत चरण में 'सुवा' शब्द का प्रतीकार्थ क्या है?

उत्तर – ऐसा ज्ञानवान गुणी व्यक्ति जो हमारे अत्यन्त निकट है किन्तु हम अज्ञानवश या समय विशेष पर तिरस्कृत करते हैं और कुटिल या अज्ञान व्यक्ति का आदर करते हैं।

प्रश्न 27 कविवर बिहारी ने 'मंगल बिन्दु सुरंग मुख केसरि आड गुरु' दोहा चरण में किस अलंकार का प्रयोग किया है?

उत्तर – प्रस्तुत दोहा–चरण में कवि बिहारी ने प्रस्तुत–अप्रस्तुत का अभेद वर्णन करते हुए रूपक अलंकार का प्रयोग किया है।

प्रश्न 28 कवि बिहारी ने 'सतसई' के प्रारम्भ में किसकी वन्दना की है?

उत्तर – कवि ने मंगलाचरण में अपनी आराध्य राधा रानी की आराधना की है।

प्रश्न 29 'नीकि दई अनाकनि, फीकी परी गुहारि' में कवि ने किस भाव से प्रभु से प्रार्थना की है?

उत्तर – प्रस्तुत दोहे में कवि ने मुँह लगे सेवक के भाव से प्रभु से प्रार्थना की है।

प्रश्न 30 'तंत्रीनाद, कवित्त रस सरस राग रति रंग' में कवि का क्या आशय है?

उत्तर – संगीत लहरी, काव्य रस और नारि संयोग जीवन का महत्त्वपूर्ण आनन्द है जिसके बिना जीवन का उद्धार नहीं है।

3.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 कवि बिहारी की बहुज्ञता पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।

अथवा

'कवि बिहारी ने जहाँ अल्प शब्दों में विस्तृत भावों की व्यंजना की है वहीं अपनी बहुज्ञता भी व्यक्त की है।' इस कथन की पुष्टि कीजिये।

उत्तर – रीतिकालीन कवियों में बिहारी का स्थान अग्रगण्य हैं। इनकी रचनाएँ 'गागर में सागर' समाहित करने वाली रचनाएँ हैं जिनका एक–एक दोहा जो यद्यपि मात्र चार चरणों में निर्मित हैं किन्तु उसमें निहित भावों की गहराई और मारक क्षमता अन्य कवियों के पाँच–पाँच पदों के बराबर है। कवि बिहारी ने अल्प शब्दों में जहाँ विस्तृत भावों की व्यंजना की है वहीं अपनी बहुज्ञता भी प्रकट की हैं। बिहारी 'सतसई' में अनेक शास्त्रों एवं विषयों की सहज व्यंजना हुई है यथा– गणितशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, दर्शनशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आखेट, मनोविज्ञान, पुराण, खगोल विज्ञान आदि को लेकर सुन्दर प्रभवक अवना अपनी रचनाओं में किया है। इससे नूतन उपमा और शैली का आगमन हुआ है।

कहत सबै बैंदी दिये, आँकु दस गुनों होतु।
तिय लिलाट बैंदी दिये, अगनित बढत उदोतु।।

प्रस्तुत दोहे में कवि ने शून्य के प्रयोग से दस गुने मान का सुन्दर उल्लेखकर अपने गणितज्ञ होने का प्रमाण दिया है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Lucknow

'मंगल बिन्दु सुरंग मुखु, ससि केसरि आड गुरु।
इक नारी लहि संगु, रसमय किये लोचन जगतु।।'

प्रस्तुत दोहे में कवि ने ज्योतिष शास्त्रानुसार स्पष्ट किया है कि जब कन्या राशि में मंगल, चन्द्र और गुरु तीनों का एक साथ प्रवेश हो जाता है तो अत्यधिक रस वर्षा होती है।

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तनु की झाई परै, स्याम हरित दुत होय।।

इस दोहे में रंगों के मिश्रण का ज्ञान तथा अन्यत्र वैद्यक शास्त्र का ज्ञान स्पष्ट किया है। अतः कवि बिहारी बहुतज्ञ थे।

प्रश्न 2 बिहारी 'सतसई' में शृंगार–विलास के चित्रण में अनुभूतिमय प्रकाश डाला है।' स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – कविवर बिहारी रीतिकालीन कवियों में रससिद्ध कवि माने जाते हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा प्राप्त करने के कारण इन्होंने राधा–कृष्ण के सिंगार विलास का अत्यन्त सुन्दर एवं मनमोहक चित्रण प्रस्तुत किया है। नायिकाओं की विविध शृंगारिक चेष्टाओं का अनुभूतिमय वर्णन किया है। 'बिहारी सतसई' में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का भावपूर्ण समावेश किया गया है। कवि की इसी विशेषता के कारण विद्वत्समाज में यह दोहा प्रचलित है –

'जो कोई रस रीति को, समुझा चाहे सार।
पढे बिहारी सतसई, कविता को शृंगार।।'

कवि ने संयोग शृंगार के अन्तर्गत नायक–नायिका के मिलन, रति, हास्य–विनोद, हाव भाव विलास और शृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन किया है और नायिकाओं के अनेक मनोरम बिम्ब प्रस्तुत किये हैं –

'बत रस लालच लाल की, मुरलि धरी लुकाई।
सौंह करें, भौंहनि हँसे, दैन कहै नट जाई।।'

विप्रलम्भ शृंगार के चित्रण में बिहारी ने पूर्वराग से लेकर विरह विदग्धा एवं कामपीड़िता नायिका की कृशता, उत्सुकता और उपालम्भ आदि का सुन्दर चित्रण किया है।

शृंगार की इन कृतियों में कहीं–कहीं पर कवि ने अतिशयोक्ति का प्रयोग किया है जिसमें विरहिणी नायिकाओं की अनेक भाव–प्रवण चेष्टाओं को चित्रित करने में कवि ने अपनी रससिद्धता का प्रमाण प्रस्तुत किया है।

प्रश्न 3 कवि बिहारी के नीति–वर्णन पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये।

उत्तर – कविवर बिहारी ने 'सतसई' में शृंगार रस के उभयपक्षीय चित्रण के साथ–साथ नीति का भी परिचय दिया है इससे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कवि बिहारी को लोक–व्यवहार का भी अच्छा खासा अनुभव था। वैसे कवि ने अपने जीवन में अलग–अलग स्थानों जैसे आगरा, मथुरा, जयपुर आदि में रहकर अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया था। इसी कारण उन्होंने मानव–व्यवहार को लेकर अत्यन्त सुन्दर नीति–विषयक दोहे लिखे और सज्जनों की प्रशंसा व दुर्जनों की निन्दा की है

'बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भलो भलौ कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जप दान।।

प्रस्तुत दोहे में कवि ने दुर्जनों को सम्मान प्राप्त करते देखकर समय की परिवर्तनशीलता को स्पष्ट किया है।

'मरतु प्यास पिंजरा परयो, सुवा समय के फेर।
आदर दै दे बोलियत, बायस बलि की बेर।।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समय विशेष पर अथवा अज्ञानवश हम गुणवान व्यक्ति की उपेक्षा करते हैं और अज्ञान या दुष्टों को सम्मान देते हैं।

'नर की अरु नलनीर की, गति एकै करि जोई।
जेतो नीचों व्है चले, तेतौ ऊँचो होई।।'

उपरोक्त दोहे में विनम्रता के आचरण पर प्रकाश डाला है।

कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
उहि खाये बौराय जग, इति पाये बौराय।।

बिहारी को राज–दरबारों का अच्छा अनुभव था और धन–वैभव की चमक–दमक से वे अच्छी तरह परिचित थे। प्रस्तुत दोहे में कवि ने धन के नशे का प्रभावशाली वर्णन किया है।

को छुट्यो एहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों–ज्यों सुरझ भज्यों चहति, त्यों–त्यों उरझत जात।।

मनुष्य जैसे–जैसे सांसारिक विषय–भोग से मुक्त होना चाहता है वह उसमें उतना ही फँसता जाता है।

आदि अनेक नीतियुक्त दोहे कवि ने तैयार किये जिनमें अन्योक्ति का प्रयोग कर नीति सम्मत तथ्यों का उद्घाटन किया। इस दृष्टि से बिहारी का काव्य प्रशंस्य है।

प्रश्न 4 'बिहारी सतसई' की विशेषताओं पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर – रीतिकालीन काव्यधारा के रससिद्ध कवियों में कवि बिहारी का अन्यतम स्थान है। बिहारी द्वारा विरचित 'सतसई' रीतिकाल का सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ हैं। इसमें दोहों के माध्यम से भाव–गाम्भीर्य की सशक्त व्यंजना हुई है। इसलिये कहा जाता है कि **'सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर, देखन में छोटे लगे घाव करे गम्भीर।'** 'बिहारी सतसई' श्रेष्ठ मुक्तक काव्य है तथा इसमें शृंगार रस का विशेष परिपाक हुआ है। इस काव्य में भक्ति, नीति व शृंगार का संगम है जिसमें अन्योक्तियों का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। 'बिहारी सतसई' में कल्पना की समाहार–शक्ति, भाषा की सामासिकता बिम्बात्मकता, कोमल भाव गाम्भीर्य, भाषा की कलात्मकता एवं व्यंग्य–वैभव का अनूठा प्रयोग किया गया है। रसोद्रेक की दृष्टि से बिहारी का एक–एक दोहा आकर्षक है साथ ही इसमें विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के साथ सात्विक भावों की सहज व्यंजना हुई है। कवि ने अलंकारों का भावानुकूल प्रयोग किया है। विभिन्न नायिकाओं के विलास–चित्रण में कवि सिद्धहस्त रहे हैं। उन्होंने एक–एक शब्द का सोच समझकर प्रयोग किया है और स्वानुभूतियों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। एक विशेष बात यह है कि इनकी रचना 'गागर में सागर' समाहित करने वाली रही है। अतः हम यह कह सकते हैं कि 'बिहारी सतसई' मुक्तक काव्य की सभी विशेषताओं से मण्डित रचना है।

प्रश्न 5 हिन्दी साहित्य की 'सतसई काव्य परम्परा' में बिहारी सतसई का महत्त्व स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – हिन्दी साहित्य की 'सतसई काव्य परम्परा' में बिहारी सतसई का सर्वोत्कर्ष स्थान रहा है। इसके अक्षय प्रकाश में अन्य सभी सतसई काव्य उसी प्रकार निष्प्राण हो जाते हैं जिस प्रकार पूर्णिमा के सुधाकर की ज्योत्सना से असंख्य नक्षत्र कान्तिहीन हो जाते हैं। बिहारी सतसई पर 'गाथासप्तशती', 'आर्यासप्तशती' और 'अमरुकशतक' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। बिहारी की 'सतसई' शृंगार–रस–प्रधान है। यह एक श्रेष्ठ मुक्तक काव्य है तथा लक्ष्य एवं लक्षण–काव्य की परम्पराओं से सर्वथा मुक्त रहा है। फिर भी इसमें शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का मार्मिक विवेचन, अनुभावों की रमणीय विवृति, प्रेम एवं विरह की दशाएँ, हाव–भावों एवं संचारियों का प्रयोग, प्रकृति का मनोहारी चित्रण, कविता एवं दर्शन का सम्पूर्ण सजीव विवरण प्राप्त होता है। इसमें भाव गाम्भीर्य एवं रस ..... स्वरूप को देखकर विभिन्न सूक्तियाँ प्रचलित हैं –

"सतसईया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करे गम्भीर।।"

Jan Kshya Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"जो कोइ रस–रीति को, समुझा चाहे सार।
पढै बिहारी सतसई, कविता को शृंगार।।"
"दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परत गाँठ दुरजन हियै, दई नई यह रीति।।"

हिन्दी साहित्य में 'बिहारी सतसई' अनुपम रचन ग्रन्थ हैं। वैसे सतसई काव्य परम्परा ईसा के बारहवीं शताब्दी 'गाथा सप्तशती' से लेकर आज तक विकसित हो रही है। आधुनिक युग में 'उद्धव शतक', 'वीर सतसई' तथा 'हरिऔध सतसई' भी पूर्वागत परम्परा की प्रतीक हैं।किन्तु हिन्दू साहित्य परम्परा के इतिहास 'बिहारी सतसई' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस साहित्य में भावपक्ष व कलापक्ष का कलात्मक स्वरूप उभरकर सामने आया है। शृंगार के साथ वैराग्य, भक्ति, नीति और विनय के मार्मिक दोहे भावों की तीव्रता और गहनता के साथ दिखाई देते हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। यही कारण है कि हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य में प्रसिद्धि, उत्कृष्टता एवं सर्वाधिक लोकप्रियता की दृष्टि से 'रामचरितमानस' के बाद 'बिहारी सतसई' की ही गणना की जाती है।

3.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 'बिहारी ने सतसई में गागर में सागर भरा है।' प्रस्तुत कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

अथवा

बिहारी की लोकप्रियता के कारण स्पष्ट कीजिये।

अथवा

भावपक्ष एवं कलापक्ष की दृष्टि से 'बिहारी सतसई' का विवेचन कीजिये।

अथवा

'बिहारी के दोहे गागर में सागर भरने के अप्रतिम उदाहरण हैं।' प्रस्तुत कथन के आधार पर उनकी बहुज्ञता को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' के बाद यदि किसी ग्रन्थ को लोकप्रियता प्राप्त हुई है तो वह बिहारीकृत 'सतसई' है –

ब्रज–भाषा बरनी कविन, बहुविधि बुद्धि विकास।
सबकी भूषण 'सतसई', करी बिहारी दास।।
जो कोऊ रस रीति को, समुझौ चाहे सार।
पढै बिहारी सतसई, कविता को सिंगार।।

रीतिकालीन काव्यधारा के कवियों में बिहारी का नाम पूर्ण सम्मान के साथ लिया जाता है। वे बहुश्रुत, प्रभावशाली और लोकानुभव से परिपूर्ण एवं रससिद्ध कवि थे। यद्यपि बिहारीकृत सतसई का प्रमुख रस शृंगार है किन्तु उसमें नीति, भक्ति, वैराग्य एवं सामाजिक व्यवहार विषयक अन्योक्तियों दोहों के रूप में समावेश हुआ है। उनकी रचना का एक–एक दोहा कलात्मकता एवं व्यापकता का अनूठा उदाहरण है और उनमें अनेक भावों को समाहित करने की क्षमता है यही विशेषता ऐसी है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि बिहारी की रचनाओं में गागर में सागर समाहित है तथा इसकी बहु पक्षीय मारक क्षमता प्रशंस्य है –

सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करै गम्भीर।।

इस कथन के आलोक में यदि देखा जाये तो बिहारी के दोहों में व्यंजना की मात्रा व शक्ति इतनी सघन है कि क्षणभर में पाठक की सम्पूर्ण चेतना को एक चमत्कारिक सौन्दर्य–बोध की अनुभूति से मुक्त कर देता है। यही कारण इनकी प्रसिद्धि का मूल है। विशेष बात तो यह है कि सतसई में मात्र सात सौ तेरह दोहे हैं। और इसके अतिरिक्त उनकी और कोई रचना नहीं है फिर भी इतनी व्यापक प्रसिद्धि प्राप्त हुई। यद्यपि रीतिकाल में शृंगारी कवियों की कोई कमी नहीं थी। किन्तु नारी सौन्दर्य के जितने चतुर–चितेरे कवि बिहारी थे और जितना सूक्ष्म व संवेदनात्मक ज्ञान उनमें था वैसा किसी अन्य कवि में नहीं देखा गया। उन्होंने नारी के नेत्रों का इतने रूपों में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वर्णन किया है कि आश्चर्य होता है जैसे 'ऐ छबि छाके नैन, आँखिन सौ लपटाति, ए कजरारे, कौन पर करत कजाकी नैन, खंजन गंजन नैन, अहेरी नैन, नेह नचैहों नैन, लोचन लालची, रंगनिचुरत से नैन, से नैना निझावर, इन्दीवरनयनी आदि विभिन्न अलंकृत अभिव्यक्तियों के समग्र नारी सौन्दर्य नेत्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। वस्तुतः, नारी सौन्दर्य में नेत्रों का विशेष महत्त्व रहा है। नारी हृदय में जहाँ काम–वासना की उद्दाम लालसा छुपी हुई रहती है। वहाँ उनका नारी सुलभ संकोच और लज्जा प्रियतम से मिलने से रोकती है और इस द्वन्द्वपूर्ण स्थिति की अभिव्यक्ति नारी के प्यासे नेत्रों से ही होती है। इस प्रकार बिहारी ने नारी के सौन्दर्य का सशक्त चित्रण किया है। इस प्रकार के चित्रण में बिहारी ने कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया है और लालित्य व गाम्भीर्य का सुन्दर समायोजन किया है।

बिहारी का काव्यगत सौंदर्य

भाव पक्ष और कला पक्ष काव्य के दो रूप माने गये हैं। जिसके भावपक्ष में कवि का सूक्ष्म अवलोकन एवं उसकी संवेदना समायोजित रहती है। जबकि कला पक्ष में उसकी अभिव्यक्ति की कुशलता रहती है। इन दोनों ही पक्षों में काव्य में असामान्य निर्वाह हुआ है, इसलिये उनके छोटे दोहों में कल्पना की समाहार शक्ति, भाषा की समास शक्ति और कलात्मक कुशलता का सुन्दर समावेश मिलता है इसीलिये काव्य सौन्दर्य से मण्डित है।

भाव पक्षीय विशेषताएँ

कवि बिहारी ने कल्पना की समाहार शक्ति के बल पर अपने दोहों में जिस भाव गाम्भीर्य की अभिव्यक्ति की है वैसी अन्य कवियों के बड़े–बड़े पदों में भी नहीं मिलती है और यही वजह उनकी गागर में सागर भरने वाली कहावत पर चरितार्थ होती है। काफी लम्बी चौड़ी बात को संक्षेप में प्रभावकारी ढंग से व्यक्त कर देना उनकी महती विशेषता है।

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास एहि काल।
अली कली ही सों बन्ध्यों, आगे कौन हवाल।।

इसी प्रकार उनके भावों की गंभीरता को व्यक्त करने के लिये अन्य कई दोहे हैं जो इस दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं –

फूली काली फूल–सी, फिरतु जु विमल विकास।
भोर तरैया होहुँते, चलत तोहि प्रिय पास।।

बिहारी के इन छोटे–छोटे दोहों में भावाभिव्यक्ति के लिये इतनी कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति समाहित है कि खुद–ब–खुद बिहारी के गाम्भीर्य चिन्तन का साक्षात्कार कराने में पूर्णतः सफल है।

डिगत पानि डिगुलात गिरि, लखि सब ब्रज बेहाल।
कंपि किसोरी दरस कै, खरे लजाने लाल।।

प्रस्तुत दोहे में राधा–कृष्ण की रागात्मक स्थिति को स्पष्ट किया और दूसरे दोहे में कृष्ण के द्वारा ब्रज की रक्षा करने के लिये गोवर्धन पर्वत उठाने की घटना वर्णित है किन्तु राधा की ओर देखने से उनके हृदय में प्रेम उद्रेक होने लगा और सात्विक भाव से रोमांस के कारण उनका हाथ डगमगाने लगा, जिससे ब्रजवासी घबराने लगे और सोचने लगे कि कहीं गिर्राज पर्वत भगवान कृष्ण के हाथों से गिर न जाये। ब्रजवासियों की इस स्थिति को देखकर कृष्ण भी लज्जित होने लगे। अब देखिये कि इतना लम्बा प्रसंग कवि बिहारी ने केवल एक ही दोहे के मात्र चार चरणों में समाहित कर दिया है।

प्रबन्ध काव्य के विस्तृत आकार में ऐसे भी स्थल आ जाते हैं, जहां अनुभावों और चेष्टाओं के बिना भी काम चल जाता है किन्तु जब एक ही दोहे में भाव की अभिव्यंजना करनी हो और विभाव पक्ष का निरूपण भी करना हो तो बिना अनुभाव तथा संचारी भाव की योजना के रस परिपाक नहीं हो सकता है। बिहारी ने अपनी कल्पना शक्ति का परिचय देते हुए बिना भावों के अनुभावों के द्वारा ही रसोद्रेक करने का प्रयास किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सटपटाति–सी ससिमुखी, मुख घूंघटि–पट ढाँकि।
पावक–झर–सी झमकि कै, गई झरोका झाँकि।।

कवि ने अनुभावों और हाव–भाव का सुन्दर चित्रण किया है जिसमें उन्होंने अपनी स्वतंत्र चेतना को काम में लिया है। वैसे भावों का स्थान काव्य शास्त्रानुसार नायिका में ही माना जाता है किन्तु उन्होंने अपनी काव्य कुशलता से एक ही स्थान पर नायक एवं नायिका के भावों को स्पष्ट किया है।

कहत, नटत रीझत, खिजत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत है, नैननि ही सों बात।।

बिहारी के गुणों में इतना तो कहना ही होगा और इसे सबको मानना ही होगा कि ये अर्थ के धनी, भावों के कुशल चित्रकार सुसंगठित एवं समाहार शैली के प्रयोक्ता तथा काव्यांगों के ज्ञाता कवि थे, उनमें भावों की तीव्रता, प्रखरता एवं गहनता रही है।

पल प्रगटि बरुननि बरी, नहीं कपोल ठहरात।
अँसुवा परि छतिया छनकु, छिन चिनाई छपि जात।।

प्रस्तुत दोहे में विरहिणी नायिका के व्यथित रूप का चित्रण किया गया है। वह अपने प्रियतम के विरह में अश्रु बहाती है इसमें व्यंजना लालित्य एवं अनुप्रास एक सथ दृष्टव्य हैं।

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर–चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई–नई यह रीति।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी का भाव पक्ष सशक्त है। कल्पना की समाहार शक्ति, माधुर्य एवं भावात्मक तीव्रता का बिहारी के मुक्तक काव्य में अत्यन्त सुन्दर समावेश किया हुआ है।

कला पक्षीय विशेषताएँ

किसी भी काव्य में उसके कला पक्ष के अन्तर्गत भाषा, छन्द, अलंकार, रीतिबद्धता एवं भाषा की समास शक्ति पर ध्यान दिया जाता है, इस दृष्टि से कवि बिहारी भाषा के सफल प्रयोगकर्त्ता हैं। उनकी भाषा में प्रत्येक शब्द का अपना महत्त्व है। बिहारी ने भावों के अनुरूप शब्दों का चयन किया है। भाषा की सरसता, समरसता, समाहार की पूर्णता उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। सामाजिक शब्दावली के कारण उनकी भाषा क्लिष्ट भी है किन्तु उसमें भाव सम्प्रेषण की क्षमता है।

'मंगल बिन्दु सुरंग मुख, ससि केसर आड गुरु।
इक नारी लहै संगु, रसमय किय लोचन जगतु।।'

प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने सुन्दर नायिका के मुख मण्डल की कान्ति को चन्द्रमा, लाल बिन्दी को मंगल और केशर की आड़ी रेखा में लगे चन्दन को बृहस्पति बताया है और ज्योतिष विज्ञान की स्थितिनुसार स्पष्ट किया है कि जब मंगल–चन्द्र और बृहस्पति तीनों ग्रह कन्या राशि में एक साथ प्रवेश कर जाते हैं तो अतिवृष्टि होती है – नायिका का मुख सौन्दर्य देखकर नायक के चक्षु–संसार में प्रेम की अच्छी वर्षा होने लगी। इस सम्पूर्ण दोहे में सांगरुपकता का सुन्दर समायोजन किया है, इसी प्रकार –

तो लगि या मन सदन में हरि आवे किहि बाट।
विकट जटै जौ लगु निपट, खुले न कपट कपाट।।

प्रस्तुत दोहे में कवि ने भगवद्–भक्ति के लिये मन–सदन को पवित्र रखने की प्रेरणा प्रदान की है।

कवि बिहारी ने सुन्दर उत्प्रेक्षाएँ अपनी सरस रचनाओं में समाहित की हैं और उनके माध्यम से श्रृंगारिक भावों का सुन्दर परिचय दिया है –

सोहत ओढे पीत पटु, स्याम सलौने गात।
मनौ नीलमणि सैल पर, आतप परयो प्रभात।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रस्तुत दोहे में बिहारी ने भगवान् कृष्ण के रूप–सौन्दर्य को उत्प्रेक्षा में बाँधा गया है। चित्रोपमा एवं अलंकारिक रूप विधान बिहारी की भाषा की विशेषता है जिसमें मर्मस्पर्शी भावों की समाष्टि है।

कहलाने एकहि बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सो कियो, दीरघ, दाघ निदाघ।।

प्रकृति एवं अचेतन जगत के साथ मानवीय भावों की सृष्टि करने में बिहारी ने अपनी सरलतम शैली का परिचय दिया है।

कवि ने समास शक्ति के बल पर नायक–नायिका की विभिन्न चेष्टाओं एवं क्रिया–कलापों का सफल व सुन्दर चित्रण किया है। छोटे–छोटे दोहों में इस प्रकार का चित्रण अत्यन्त प्रभावशाली है–

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौहनि हंसे, देन कहै नट जाय।।

वस्तुतः, बिहारी का मुक्तक काव्य इतनी सरस और मधुर, भावपूर्ण एवं ललित कृति है कि इससे सद्यः रसास्वाद हो जाता है। आज तक बिहारी के काव्य सागर से भाव रत्नों को ग्रहण करने का प्रयास किया गया है किन्तु उनका कोष तो सदैव अक्षुण्ण है यहाँ तक कि आलोचकों की आलोचना भी सही ढंग से बिहारी के दोहों को आज तक नहीं छू पाई। इस स्थिति का परिचय कवि बिहारी ने अनुमान के आधार पर स्वयं दिया है–

लिखन बैठि जाकी छवि, गहि–गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।।

बिहारी की बहुज्ञता

कवि बिहारी ने अल्प शब्दों में जहाँ विस्तृत भावों की व्यंजना की है वहीं उन्होंने अपनी बहुज्ञता भी प्रकट की है। कवि बिहारी के दोहों में गणितशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, वैद्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र, राजनीति विज्ञान, आखेट, पौराणिकता एवं मनोविज्ञान आदि का सुन्दर एवं सरस चित्रण अपने दोहों में किया है।

(नोट– कृपया इसी पाठ के लघुत्तरात्मक प्रश्न संख्या 1 को देखें।)

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि बिहारी के दोहे भावपूर्ण, व्यंजनाशक्ति से परिपूर्ण, गम्भीर एवं गहनतम अर्थ के प्रतीक एवं पूर्णतया कलात्मक हैं। इनके सभी दोहों में 'गागर में सागर' समाहित हैं। साथ ही 'देखन में छोटे लगे, घाव करै गम्भीर' का कथन पूर्णतः चरितार्थ होता है। कवि की अभिव्यक्ति कौशल की लगभग सभी समीक्षकों के द्वारा भूरि–भूरि प्रशंसा की गई है –

सतसैया के दोहरे, चुनै चौहरी हीर।
भाव परे तीछन खरे, अर्थ भरे गम्भीर।।

प्रश्न 2 'बिहारी के काव्य में श्रृंगार–भक्ति–नीति की त्रिवेणी तरंगित हो रही है।' इस कथन की समीक्षा कीजिये।

अथवा

'बिहारी के काव्य में श्रृंगार नीति एवं भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है।' कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – कविवर बिहारी रीतिकालीन कवियों में सर्वोत्कृष्ट स्थान आज भी बनाये हुए हैं। आज भी साहित्य प्रेमियों के दिल व दिमाग पर कवि बिहारी की सुन्दर रचना तरंगित होती है और मुक्त कण्ठ से अपनी स्वर–लहरी बिखेरती है। उन्होंने अपनी 'सतसई' में तत्कालीन सभी साहित्यिक परम्पराओं का सुन्दर चित्रण किया है साथ ही सभी प्रकार के भावों का संयोजन कलात्मक ढंग से किया है। उनके काव्य में जहाँ एक ओर श्रृंगार रस की मंदाकिनी प्रवाहित होती है वहीं दूसरी ओर भक्ति की असंख्य तरंगों के साथ कालिन्दी की अविरल धारा का प्रवाह है और तीसरी ओर वैराग्य, नीति एवं विनय की सरस्वती सरिता की कल–कल नाद हर काव्य हृदय को विभोर किये हुए है। इन तीनों के सम्मिश्रण से 'सतसई' का काव्य स्वरूप त्रिवेणी संगम तुल्य अत्यन्त मनोरम हो गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वस्तुतः, कवि बिहारी निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे जिसकी वजह से राधा–कृष्ण के श्रृंगारिक वर्णन के साथ उन्होंने अपनी भक्ति भावना को भी व्यक्त किया है। और उनकी मार्मिक अनुभूतियों का पुट देकर नीतिगत विषयों का स्वाभाविक रूप से समावेश किया है। इस प्रकार उनके श्रृंगार वर्णन में, खासकर वियोग वर्णन में भक्ति व नीति का पूर्ण समावेश हुआ है।

श्रृंगार वर्णन और बिहारी

श्रृंगार वर्णन की दृष्टि से कवि बिहारी का अपना स्वयं का वजूद रहा है। इन्होंने अपने काव्य में श्रृंगार रस की प्रचलित परम्परा के साथ–साथ मौलिक तत्त्वों का भी समावेश किया है और अपने पूर्ववर्ती कवि विद्यापति एवं सूरदास से सूक्ष्म चित्रण की प्रेरणा पाकर श्रृंगार के संयोग व वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। इसी वजह से उनकी सतसई की गणना श्रृंगार रस के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में मानी जाती है –

जो कोई रस रीति को, समुझा चाहे सार।
पढै बिहारी सतसई, कविता को श्रृंगार।।

संयोग श्रृंगार का वर्णन

बिहारी का संयोग श्रृंगार 'शास्त्रीय परम्परा' अथवा 'रीतिकालीन परम्परा' पर आधारित है। उन्होंने नायक–नायिकाओं के मिलन, रतिक्रीड़ा, हास्य–विनोद, हाव–भाव, विलास एवं श्रृंगारिक चेष्टाओं को समाहित किया है। कहीं पर नायिका के मान–गर्व का तो कहीं पर व्यंग्य भरी तीखी उक्तियों का और कहीं पर सुर–ताल भावों का चित्रण कर के कवि ने श्रृंगार संयोग में मार्मिकता का समावेश किया है।

एक स्थान पर तो प्रेमिका द्वारा प्रेमी के भेद को मिटाकर प्रेमसत्ता के चरम स्वरूप को प्रकट कर दिया है–

प्रिय के ध्यान गही गही, रही वही है नारि।
आपु–आपु ही आरसी, लखि रीझति रिझवारि।।

बिहारी की एक खास विशेषता यह भी रही है कि उन्होंने नायक–नायिका के रूप सौन्दर्य का समान भाव से वर्णन किया है। बिहारी की नायिका नायक के रूप पर मुग्ध रहती है और उसकी रूप सुधा का आस्वादन करते हुए वह आगे–पीछे का जरा–सा भी ध्यान न करते हुए निर्निमेष नायक की ओर देखती रहती है और फिर भी तृप्त नहीं होती है –

त्यों–त्यों प्यासे ही रहत, ज्यों ज्यों पियत अघाय।
सगुन सलौन रूप की, जु न चख–तृषा बुझाय।।

बिहारी ने नायिका के हाव–भावों का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है –

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करें भौहनि हंसे, देन कहै नट जाय।।

इसी प्रकार नायिका के नेत्रों की चंचलता, कटाक्ष एवं भृकुटि–वक्रता का अनुपम वर्णन किया है –

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सों बात।।

नायक के सारे संकेतों का भावपूर्ण उत्तर यह नायिका अपनी आँखों के द्वारा ही दे देती है।

वियोग श्रृंगार का वर्णन

कवि बिहारी का संयोग श्रृंगार जहाँ अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है वहीं दूसरी ओर उनका वियोग वर्णन का भी अपना अलग वर्चस्व रहा है। इस संदर्भ में कवि ने ऊहात्मक प्रवृत्ति को अपनाया है एवं उसमें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आध्यात्मिकता का भी समावेश किया है। उन्होंने पूर्वराग की व्यथा से लेकर विरह की सभी दशाओं का चित्रण किया है। नायक के बिछड़ जाने पर नायिका रात–दिन परेशान रहती है, उसकी याद करती है और एक पल के लिये भी वे चैन से नहीं रह पाती है –

सोवत जागत सुपनवस, रस रिस चैन कुचैन।
सुरति स्यामघन की सुरति, विसरे हुँ बिसरे न।।

प्रस्तुत दोहे में कवि ने विरह विदग्धा नायिका का अत्यन्त मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

एक नायिका को अपने प्रियतम का पत्र मिला उसे पढकर वह कितनी व्याकुल हो गई उसका चित्रण कवि ने–

कर लै चूमि चढाइ सिर, उर लगाइ भुज भेट।
लहि पानी पिय की लखति, बाचति धरति समेट।।

कवि बिहारी ने विरह पीड़िता नायिका की कृशता का वर्णन करते समय कहीं–कहीं पर अतिश्योक्ति का प्रयोग किया है –

इति आबति चलि जाति उत, चली छ सातक हाथ।
चढी हिण्डोले पै रहै, लगी उसासन साथ।।

प्रस्तुत दोहे में नायिका की विरह अवस्था का वर्णन करने में अतिश्योक्ति का प्रयोग किया है, क्योंकि वह इतनी दुबली हो गई है कि श्वास–प्रश्वास के समय वह छः सात हाथ आगे पीछे झोंके खाने लगती है मानों वह किसी झूले में हिण्डोली खा रही है। इसके साथ इस दोहे में मार्मिकता भी है कि वह अपने प्रियतम के विरह में इतनी कृशकाय हो चुकी है कि श्वास की स्थिति को भी सहन नहीं कर पाती है।

मैं तो सो कैवां कह्यो तू जिन इन्हें पत्याइ।
लगा लगी किये लोइनु उर में लाई लाइ।।

एक सखी दूसरी सखी को सम्बोधित करते हुए कहती है कि मैंने तुम्हें कितनी बार समझाया कि तुम इन आँखों पर भरोसा मत करो, क्योंकि ये आपस में लगा लगी करते हैं और हृदय में आग लग जाती है। कवि ने विरह की कातरता का वर्णन बहुत ही अच्छे व मार्मिक ढंग से किया है।

जाति मरी विधुरी धरी, जल सकरी की रीति।
खिन–खिन होती खरी–खरी, अरी अरी यह प्रीति।।

प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक विरहिणी की स्थिति उस मछली के समान बताई है, जो जल से अलग कर दी गई हो।

कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।
कहि है सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात।।

एक नायिका जब अपने प्रियतम को खत लिखने बैठती है तो उसे लिखने के लिये शब्द नहीं मिलते हैं वह केवल यह लिखकर पत्र समाप्त कर देती है कि हे प्रिय! तुम अपने ही हृदय से पूछ लो कि मेरे हृदय की क्या स्थिति है?

इस प्रकार कवि बिहारी ने अनेक दोहों के माध्यम से संयोग व वियोग श्रृंगार के दोनों पक्षों को सजीवता प्रदान कर अपने श्रृंगारी कवि होने का परिचय दिया है।

भक्ति भावना और बिहारी

कवि बिहारी की सतसई में लगभग पचास ऐसे दोहे हैं जिनमें भक्ति का रस पगा हुआ है। इन दोहों से यह स्पष्ट होता है कि बिहारी राधा–कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनकी भक्ति सरल भाव की प्रकट होती है जिसके प्रमाण कवि के कई दोहे प्रस्तुत करते हैं जिनमें कवि ने अपने आराध्य को अनेक प्रकार के उपालम्भ भी दिये हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चूंकि बिहारी निम्बार्क सम्प्रदाय से दीक्षित थे इसलिये कृष्ण की कृपा पाने के प्रयोजन से उनकी प्राणेश्वरी राधा की मधुर स्तुति की है। राधा और गोपियों का प्रेम ही उनके कृष्ण प्रेम का आदर्श रहा तथा उनके सदृश्य उनमें भी अपने इष्ट के प्रति अनन्य श्रद्धा व निष्ठा है और इसी वजह से उनके भक्ति सम्बन्धी दोहों में श्रृंगार की मधुर झलक दृष्टिगोचर होती है –

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाई परै, स्याम हरित दुति होय।।

बिहारी ने भक्ति भावना के साथ अपने उद्धार की बलवती इच्छा को अपने आराध्य व आराध्या के श्रीचरणों में प्रस्तुत की है –

हरि कीजत तुम सौं यह, विनती बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डरो रहौ, परयौ रहौ दरबार।।

कवि ने अपनी भक्ति भावना को सख्य भाव से प्रभु कृष्ण के श्रीचरणों में अर्पित की है और एक मुँह लगे सेवक की भाँति अपने आप को भगवान के आगे समर्पित किया है –

करौ कुवत जग कुटिलता, तजौ न दीन दयाल।
दुखी होउगे सरल चित, बसत त्रिभंगी लाल।।
कब को टेरत दीन रट, होत न स्याम सहाय।
तु हूँ लागी जगत गुरु, जग नायक जग बाय।।
थोरे हूँ गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनो भये, आज काहि के दानि।।

कवि बिहारी ने बताया कि भगवान की सच्ची भक्ति भावना के लिये मन की शुद्धता व सच्ची आस्था का होना आवश्यक है –

तौ लागि या मन सदन में, हरि आवै केहि बाट।
विकट जटे जो लगु निपट, खुले न कपट कपाट।।

भक्ति के नाम पर किया जाने वाला आडम्बर अथवा दिखावे की प्रवृत्ति का बिहारी ने विरोध किया है और मन की शुद्धि पर विशेष बल दिया है –

जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचै नाचैं व्यथा, साँचैं राचै राम।।

बिहारी यद्यपि निम्बार्क सम्प्रदाय के दीक्षित थे किन्तु उन्होंने प्रभु राम के प्रति भी समान रूप से अपनी आस्था प्रकट की है –

बन्धु भये तुम दीन के, को तारयो रघुराई।
तूठे–तूठे फिरत हौं, झूठे विरद कहाई।।
यह बरिया नहीं और की, तू करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढाइ जिहिं, कीन्हे पार पयोधि।।

कवि बिहारी ने सगुण एवं निर्गुण दोनों ही भक्ति धाराओं में किसी प्रकार का भेद नहीं रखा। उन्होंने निर्गुण रूप की व्यापकता के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि –

दूरि भजन प्रभु पीठ दै, गुन विस्तारन काल।
प्रकटत निर्गुण निकट रहि, चंग रंग गोपाल।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक बात और भी थी कि कवि बिहारी विभिन्न मतवादों को पूर्णतः अनुचित मानते थे, उनकी आस्था एक मात्र नन्द किसोर में थी और समग्र प्रपंच को वे उसी की लीला मानते थे –

अपने अपने मत लगे, वाद मचावत सोर।
ज्यों सबहीं को देइबो, एकै नन्द किसोर।।

जिस प्रकार ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्य कवियों ने शुद्ध मन व विवेक को महत्त्व दिया वैसे ही बिहारी ने मन की पवित्रता पर बल दिया है –

दीरघ साँस न लेहू दुःख, सुख साई नहिं भूलि।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि।।

प्रस्तुत दोहे के माध्यम से कवि ने सुख–दुःख में समान रहने की प्रेरणा दी है और बताया है कि ये दोनों ही ईश्वर की देन है दोनों को समान रूप से वरदान समझकर स्वीकार करना चाहिये।

कवि बिहारी ने अपने भक्तिपरक दोहों में अनेक प्रकार के भाव प्रकट किये हैं जिनमें राधा स्तुति, राधा–कृष्ण प्रेम, गोपी–कृष्ण प्रेम, सख्य भाव के रूप में उपालम्भ, प्रेम की एक निष्ठा, विनय एवं विश्वास आदि विविध भाव व्यक्त हुए हैं। उनकी भक्ति में वैराग्य का भी पुट देखने को मिलता है, साथ ही दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन भी है –

ज्यों ह्वै हौं त्यौं होऊँगी, हौ हरि अपनी चाल।
हठ न करौ अति कठिन है, मो तारियो गोपाल।।

बिहारी ने सांसारिक कर्मजाल और भौतिक आकर्षणों में उलझे व्यक्तियों को गाथा के प्रभाव को अन्योक्ति के माध्यम से समझाया है–

को छूट्यो एहिं जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहति, त्यों–त्यों अरु उरझत जात।।

अतः हम कह सकते हैं कि बिहारी 'सतसई' में शृंगार की प्रधानता होते हुए भी भक्ति भाव की सरस कालिन्दी प्रवाहित हुई है जिसमें अवगाहन करके गोप–गोपियों की तरह भक्त जन अपना उद्धार कर लेते हैं।

नीति वर्णन और बिहारी

जहाँ एक ओर शृंगार की पावन सरिता अपनी अनगिनत तरंगों से काव्य प्रेमियों के शुष्क हृदय को प्लावित करती हैं वहीं दूसरी ओर भक्ति भावना की पावन कालिन्दी भक्तों का निरन्तर मोक्ष द्वार हेतु मार्ग प्रशस्त करती है वहीं तीसरी ओर नीति की सरस्वती जीवन की पूर्णता में अपना पूरा–पूरा वरदान देती है यही तो कारण है कि बिहारी सतसई को त्रिवेणी का मनोरम संगम कहा गया है। बिहारी को लोक व्यवहार का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने मथुरा, आगरा, जयपुर में रहते हुए अनेक लोकानुभव प्राप्त किये।

साथ–साथ नीति विषयक दोहों की भी सृष्टि तैयार की। इनके नीति विषयक दोहे मानव व्यवहार के प्रत्येक पहलू को निःसंकोच छूते हैं और उन पर सशक्त आक्षेप करते हैं –

नर की अरु नल नीर की, एके गति कर जोई।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊंचौं होय।।

बिहारी ने सज्जनों की प्रशंसा की है और दुर्जनों की उपेक्षा करते हुए बताया कि समय के परिवर्तन के साथ मानव मन भी परिवर्तित हो गया है और अल्प बुद्धि या दुष्ट प्रवृत्ति के लोग समाज में सम्मान पाते हैं।

बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमानु।
भलो भलो कहिं छोडिये, खोटे ग्रह जप दान।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चूंकि बिहारी हमेशा से कहीं न कहीं दरबारी कवि रहे इसलिये उन्हें राज दरबारों का अच्छा खासा अनुभव था और धन–वैभव की चमक–दमक से वे अच्छे परिचित थे। उन्होंने धन के मद का सुन्दर चित्रण करते हुए लिखा कि –

कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
उहि खाये बौराय जग, इहि पाये बौराय।।

यह एक कटु सत्य है कि सांसारिक विषय–वासनाओं की आसक्ति जीवन के वास्तविक सुख और शान्ति को नष्ट कर देती है और वह (भोग–विलास) एक ऐसा भ्रमजाल है जिसमें एक बार जब मन फँस जाता है तो वह उससे मुक्त नहीं हो पाता है बल्कि जैसे–जैसे उस जाल से निकलने का प्रयास किया जाता है, वैसे–वैसे उसमें उलझता चला जाता है –

को छूट्यो एहि जाल पर, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों–ज्यों सुरझि भज्यो चहति, त्यों–त्यों उरझत जात।।

बिहारी ने समय के परिवर्तन के साथ होने वाले मानवीय व्यवहार के परिवर्तन और अन्धविश्वासों पर तीखा व्यंग्य किया है और कहा है कि समय विशेष पर और हमरे अज्ञानवश –

मरत प्यास पिंजरा परयो सुवा समय के फेर।
आदर दे दे बोलियतु, वायस बलि की बेर।।

कवि ने बताया कि इस संसार में मूर्खों की कोई कमी नहीं है किन्तु उन्हें पहचानने की आवश्यकता है अतः ज्ञानी को चाहिये कि वह गुण ग्राहकता का विशेष ध्यान रखे –

करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गन्धी मति मन्द तू, इतर दिखावत काहि।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी ने लोक अनुभव की पूर्णता के माध्यम से सुन्दर नीति विषयक दोहों का सृजन किया है और लोक व्यवहार का अच्छा संदेश दिया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि बिहारी सतसई में श्रृंगार, भक्ति और नीति की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। तीनों ही प्रकार के दोहे अत्यन्त मार्मिक एवं अनुभूतिमय हैं। इस प्रकार की समन्वित भावधारा के कारण बिहारी का काव्य अत्यन्त प्रभावशाली व लोकप्रिय है।

प्रश्न 3 मुक्तक काव्य के रूप में 'बिहारी सतसई' की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिये।

अथवा

सिद्ध कीजिये कि 'बिहारी सतसई' एक सफल मुक्तक काव्य है।

अथवा

'बिहारी एक सफल मुक्तक कवि थे' इस कथन की सोदाहरण पुष्टि कीजिये।

उत्तर – काव्य दो प्रकार के माने गये हैं – श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। श्रव्य काव्य में प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य दो भेद होते हैं। प्रबन्ध काव्य का एक भेद महाकाव्य भी कहा जाता है और मुक्तक काव्य में खण्डकाव्य, गीति काव्य, कथा, आख्यायिका आदि होते हैं। काव्य चाहे किसी भी प्रकार का हो, इनका सृजन प्राचीन काल से अनवरत रूप से चला आ रहा है। भक्तिकाल व रीतिकाल में मुक्तक काव्य धारा का विकास अधिक हुआ है जिसमें अनेक मुक्तक काव्यों का सृजन किया गया है। कवि बिहारी की प्रतिभा का संस्पर्श पाकर ये रचनाएँ और भी अधिक प्रभावशाली और लोकप्रिय बन गई हैं। अगर हम यह कहें कि मुक्तक काव्यधारा में बिहारी का अपना कोई आज तक सानी नहीं है तो इसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है। बिहारी ने दोहा, छन्द के मात्र चार लघु चरणों में काव्य कला के साथ जो गाम्भीर्य और लालित्य समाहित किया है और जो काव्य सौष्ठव प्रस्तुत किया है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वह अपने आप में शीर्षस्थ है और हम यह कहने में कतई नहीं हिचकिचायेंगे कि बिहारी की सतसई एक अनुपम कृति है।

मुक्तक काव्य स्वतन्त्र अर्थ स्पष्ट करने वाला होता है, यह ऐसी रचना होती है जिसमें कवि स्वेच्छानुसार विभिन्न वस्तुओं, दृश्यों एवं विचारों का पृथक–पृथक छन्दों में वर्णनात्मक चित्रण करता है और उसके लिये हर शब्द का संयोजन पूरे चमत्कार के साथ करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मुक्तक काव्य को परिभाषित करते हुए कहा कि 'मुक्तककार एक–एक शब्द को सोचकर और संभल कर प्रयोग करता है, एक–एक वर्ण को सजाकर रखता है। प्रत्येक मात्रा को तौलकर लगाता है और इसी प्रकार एक ही दृष्टिपात में अपनी कला की पूर्ण चमत्कृति की चकाचौंध दिखा देता है, वस्तुतः, मुक्तक काव्य में जीवन की छोटी–छोटी अनुभूतियों का भावात्मक निरूपण होता है और प्रत्येक पद्यांश में कवि हृदय की अभिव्यक्ति मर्मस्पर्शी एवं भावप्रवण हो जाती है। ऐसी रचनाओं में प्रबन्ध काव्य का प्रवाह नहीं होता है। इस सभी विशेषतओं को देखकर आचार्य शुक्ल ने मुक्तक काव्य को एक 'चुना हुआ गुलदस्ता' कहा है। जिस प्रकार गुलदस्ते में भाँति–भाँति के रंग–बिरंगे फूल अपनी आभा बिखेरते रहते हैं और अपना अलग–अलग महत्त्व रखते हैं ठीक इसी प्रकार मुक्तक काव्य का प्रत्येक पद स्वतंत्र सौन्दर्य, पृथक विषय, मुक्त भाव को व्यक्त करने वाला होता है। मुक्तक काव्य के सन्दर्भ में हम यह कह सकते हैं कि –

अ. मुक्तक काव्य में छन्द अपने पूर्ण भाव को व्यक्त करता है जिसमें रसोद्रेक की पूर्ण क्षमता होती है।
ब. मुक्तक का प्रत्येक पद पूर्वापर सम्बन्धरहित होता है।
स. मुक्तक काव्य में समास शैली और समाहार शक्ति दिखाई देती है।
द. भाषा में कोमलता, प्रखरता, गम्भीरता एवं लालित्य रहता है।
य. बिम्बमयता एवं नाद सौन्दर्य का भी समावेश होता है।
र. कवि–कल्पना का चमत्कार एवं व्यंग्यात्मकता की प्रखरता इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

मुक्तक काव्य की इन सम्पूर्ण विशेषताओं को ध्यान में रखकर यदि हम कवि 'बिहारी सतसई' का अवलोकन करें तो यह एक सफल मुक्तक काव्य होगा। बिहारी 'सतसई' की मुक्तक सम्बन्धी विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिये –

1 अभिव्यक्ति की पूर्णता – कविवर बिहारी का हर दोहा पूर्ण भाव, अनुभूति, घटना अथवा पूर्ण प्रसंग का अर्थ समाविष्ट किये हुए है और अर्थ की दृष्टि में बिहारी का प्रत्येक दोहा अपने आप में पूर्ण है –

'कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
इहि खाये बौराय जग उहि पाये बौराय।।'
अति अगाध अति ओथरो, नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहाँ, ताकी प्यास बुझाय।।

इन दोनों का पूर्वापर से कोई सम्बन्ध नहीं है प्रत्येक दोहा का सम्बन्ध अलग–अलग संदर्भ से जुड़ा हुआ है। यही विशेषता बिहारी की सबसे बड़ी सफलता है।

2. भाषा की सामासिकता – भाषा शैली में सामासिकता बिहारी की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता है। कम से कम भावों में अधिक से अधिक अभिव्यक्ति इनकी शैली में है। बिहारी के छोटे दोहों के कलेवर में अधिकाधिक भाव समाहित हैं और यही वह कारण है जिसकी वजह से बिहारी की रचना गागर में सागर भरने वाली मानी गई है। सामासिक शैली का उदाहरण –

कहत नटत रीझत खिजत, मिलत खिलत लजियात।
भरे मौन में करत हैं, नैनन ही सों बात।।

प्रस्तुत उदाहरण मात्र 48 मात्रा के दोहा छन्द में प्रेमी व प्रेमिका की प्रेम चेष्टाओं का सामासिक भाषा में सुन्दरतम चित्रण प्रस्तुत किया है –

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुड़त चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. कल्पना की समाहार शक्ति – कवि बिहारी की कल्पना शक्ति के आधार पर एक ऐसा जादुई आकर्षण समाहित हुआ है जिसके प्रभाव से प्रत्येक पाठक कवि की रचनाओं का हो जाता है। उन्होंने जिस कल्पनाशील और सरस व्यक्तित्व का परिचय दिया है उसे अनेक प्रसंगों में देखा जा सकता है–

छिप्यौ छबीली मुँह लसै, नीले अंचल चीर।
मनो कलानिधि झलमलै, कालिन्दी के नीर।।

प्रस्तुत उदाहरण में गौरांगना का चन्द्रमुख नीली सारी के घूंघट में कालिन्दी के जल में उसकी सुन्दर परछाई सा झिलमिला रहा है इसी प्रकार नायिका के आभूषणों की शोभा के लिये भी कवि ने अपनी सुन्दर कल्पना का परिचय दिया है –

मानहुँ विधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिवे काज।
दृग पग पौछन को कियो, भूषण पायंदाज।।

इसी प्रकार एक नायिका अपने प्रियतम की मधुर बातों के आनन्द की लालची का सुन्दर मनोभाव व्यक्त किया है –

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौहनि हँसे, देन कहै नट जाय।।

4. सुकोमल और प्रखर भाषा का प्रयोग – भाषा की सरलता, मधुरता और उसका प्रभावशाली गुण मुक्तक काव्य के लिये अत्यन्त अनिवार्य होता है। कविवर बिहारी ने मुक्तक काव्य के इस दृष्टिकोण को प्रगावशाली बनाया है–

अंग अंग नग जगमगै, दीपशिखा सी देह।
दिया बढाए हूँ रह्यो, बड़ो उजेरो होय।।

भाषा की सुन्दरता और प्रखरता को कहीं–कहीं अलंकार योजना के द्वारा भी रोचक और कर्णप्रिय बना दिया गया है –

सोहत औढे पीत पट स्याम सलौने गात।
मनो नील-मनि सैल पर, आतप परयो प्रभात।।

बिहारी की एक विशेषता यह भी रही कि उनकी भाषा सरल होते हुए भी अत्यन्त प्रभावशाली है भाषा शैली के कारण ही जयपुर नरेश जयसिंह प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी देते थे –

नहीं पराग नहीं मधुर मधु, नहीं विकास ऐहि काल।
अली कली ही सो बन्ध्यो आगे कौन हवाल।।

यह कहावत सर्वत्र प्रसिद्ध है कि बिहारी सतसई तो शक्कर की रोटी है, जिधर से तोड़ो उधर से मीठी है।

5. बिम्बात्मकता एवं नाद सौन्दर्य – जहाँ एक ओर बिहारी के दोहों में चित्रात्मकता परिलक्षित होती है वहीं दूसरी ओर वह बिम्ब प्रधान साहित्य भी है जो पाठकों के मानस पर एक सुन्दर चित्र उभारने में सक्षम है और बिहारी में चित्रात्मकता की सशक्त अभिव्यक्ति दी है –

सघन कुंज धन, धन तिमिरु, अधिक अंधेरी राति।
तउ न दुरि है स्याम वह, दीप शिखा सी जाति।।

इसी प्रकार कवि बिहारी ने एक विरह विदग्धा नयिका की स्थिति का अति सुन्दर चित्र उभार कर प्रस्तुत किया गया है –

इत आवत चलि जात उत, चलि छ सातक हाथ।
चढी हिण्डोरे सी रहे, लगी उसासनु साथ।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कवि बिहारी ने अपने दोहों में नाद सौन्दर्य को भी समाहित किया है। उनकी ध्वन्यात्मकता एवं सरसता सर्वत्र प्रशंस्य है और काव्यानन्द की वृद्धि की है –

रुनित भृंग घण्टावली, झरत दान मधु मीर।
मन्द मन्द आबत चल्यो, कुन्जर कुंज समीर।।

इसी प्रकार एक प्रेमी नायिका की गली से गुजरता है तो नायिका उसे किस तरह निहारती है का सुन्दर चित्रण –

सटपटाति–सी ससिमुखी, मुख घूँघट पट ढाँकि।
पावक झर सी झमक के, गई झरोखा झाकि।।

कवि बिहारी ने इसी कलात्मकता से ओतप्रोत दोहे में श्रीकृष्ण की आभा का मनोरम चित्रण किया है और उनके होठों पर विराजमान मुरली की छवि का कलात्मक रूप प्रस्तुत किया है –

अधर धरत हरि के परत ओठ दीठ पट जोति।
हरित बाँस की बासुरी, इन्द्र धनुष सी होति।।

मुक्तककार बिहारी का व्यंग्य प्रयोगों में भी किसी प्रकार का सानी नहीं हैं उन्होंने जयपुर दरबार में रहकर के महाराज जयसिंह को लक्ष्य बनाकर अनेक व्यंग्यात्मक दोहों का सृजन किया था और अन्योक्ति का सुन्दर प्रयोग किया। अन्य कई ऐसे प्रसंग रहे जिनमें कवि में चमत्कारिक ढंग से व्यंग्यात्मक दोहे हैं –

स्वारथु सुकृत न श्रम वृथा देखि विहंग विचार।
बाज पराये पानि परि तू पाच्छिन मत मार।।
नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास एहि काल।
अली कली ही सौं बन्ध्यो आगे कौन हवाल।।

6. रसोद्रेक का समावेश – यह मुक्तक काव्य की एक महत्ती विशेषता मानी जाती है कि रचना में रसोद्रेक होना चाहिये। रसोद्रेक की क्षमता जितनी अधिक होगी, वह रचना उतनी ही प्रभावशाली मानी जायेगी। बिहारी रससिद्ध कवि थे। उन्होंने श्रृंगार विषयक का पर्याप्त प्रणयन किया है। विशेष बात तो यह है कि चार चरणों वाले छोटे दोहा छन्द में विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का सामूहिक परिपोष करना जो अपने आप में एक कठिन कार्य है, उसे बिहारी ने बड़ी आसानी से सफल किया है। उन्होंने कहीं पर मात्र अनुभाव से अथवा विभाव एवं सात्विक भावों के वर्णन मात्र से रसोद्रेक की क्षमता को प्रस्तुत किया है। इस प्रसंग में विरहिणी नायिका –

कर के मीडे कुसुम लों गई विरह कुम्हलाय।।
सदा समीपिनि सखिन हुं नीति पिछानी जाय।।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'बिहारी सतसई' में मुक्तक काव्य की सभी विशेषताएँ हैं जिसमें रसानुभूति, व्यंजना वैभव, कल्पना की समाहार शक्ति, भाषा की समास शक्ति, नाद सौन्दर्य, अर्थ गाम्भीर्य एवं वाक्पटुता का जो समावेश हुआ है वह अति प्रशंसनीय है।

प्रश्न 4 'बिहारी सतसई' का अलंकार–विधान अत्यन्त कलात्मक है और साथ में चमत्कार से परिपूर्ण है। इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

अथवा

बिहारी की अलंकार योजना की समीक्षा कीजिये।

उत्तर – कविवर बिहारी रीतिकालीन काव्य धारा के अग्रणी कवि माने गये हैं उनके काव्य का भाव–पक्ष जितना सशक्त रहा है उतना ही कला–पक्ष भी अत्यन्त समृद्ध रहा है। वस्तुतः, किसी काव्य की श्रेष्ठता मात्र भावों की उत्कृष्टता से ही नहीं होती है वरन् वह बहुत कुछ कलात्मक अभिव्यक्ति पर भी निर्भर रहती है। काव्य का कला–पक्ष वह माध्यम है, जिसके द्वारा भावों की अभिव्यक्ति होती है और उनका पाठकों तक सम्प्रेषण होता है। इसके अन्तर्गत अलंकार योजना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। साहित्यशास्त्री इस बात को मानते हैं कि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सहज सौन्दर्य के लिये अलंकार एक विशिष्ट उपादान हैं। एक बात और यह है कि रीति धारा के अधिकतर कवि विशुद्ध रूप से रसवादी या अलंकारवादी कवि थे। कव्य–शिल्प में अलंकारिक चमत्कार की स्थिति और भी आवश्यक मानी गई है जो बिहारी के काव्य में स्पष्ट दिखाई देती है।

वैसे तो 'अति सर्वत्र वर्जयेत' के अनुसार काव्य में भी अलंकारों का आधिक्य सौन्दर्य को विकृत कर देता है और उक्ति में क्लिष्टता आ जाती है फिर भी यह उतना ही सत्य है यदि किसी काव्य में अलंकार योजना का समुचित उपयोग नहीं किया जाये तो उनका काव्य सौष्ठव पाठक के समक्ष अत्यन्त निखरे हुए रूप में ही प्रस्फुटित होता है। वस्तुतः कवित्व शक्ति से युक्त कलाकार ही अलंकारों के द्वारा अपने काव्य सौष्ठव को बढ़ाने में सफल होते हैं। कवि बिहारी एक सफल कलाकार माने जाते हैं उनकी अलंकार योजना की सशक्तता 'सतसई' में खुद–ब–खुद अपना परिचय देते हैं। उन्होंने अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, अन्योक्ति, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का काफी सीमा तक सफल उपयोग किया है। कवि बिहारी के काव्य में निहित अलंकार योजना का विस्तृत रूप निम्नलिखित अलंकारों के उदाहरणों से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग – कवि बिहारी ने अनेक स्थलों पर नाद सौन्दर्य एवं गत्यात्मकता की दृष्टि से अनुप्रास अलंकार का अत्यन्त सफल प्रयोग किया है –

"दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर–चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति।।"
"कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जपतु तपोवन सौ कियो, दीरघ दाघ निदाघ।।"

प्रस्तुत उदाहरणों में वर्णावृत्ति दृष्टव्य रही है।

2. यमक अलंकार का प्रयोग – जब एक ही शब्द की दो या दो से अधिक बार आवृत्ति हो और हर बार उसका अर्थ अलग निकलता हो, तो वह यमक अलंकार होता है। कवि बिहारी ने इस अलंकार में अपनी रुचि अधिक दर्शायी है और इसके प्रयोग के साथ–साथ उन्होंने अर्थ गाम्भीर्य का भी समावेश किया –

लाज कहौं बेकाज कत, घेरि रहे घर जाहि।
गोरस चाहत फिरत हो गोरस चाहत नाहि।।
कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
इहि खाये बौराय जग, उहि पाये बौराय।।

यमक अलंकार के सभंगपद प्रयोग भी बिहारी की रचनाओं में अधिक मिल जाते हैं यथा –

तंत्री नाद, कवित्त रस, सरस राग रति, रंग।
अन बूडे–बूडे तरै, जै बूडे सब अंग।।

3. श्लेष अलंकार का प्रयोग – जब एक ही शब्द में अलग–अलग संदर्भ के अलग–अलग अर्थ निहित हों और उस शब्द का प्रयोग केवल एक बार ही किया गया हो, वहाँ पर श्लेष अलंकार होता है। कवि बिहारी ने इस अलंकार का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है उन्होंने अतिशय प्रचलित शब्दों की श्लिष्ट योजना कर के अपने काव्य में रोचकता, कर्णप्रियता और चमत्कार उत्पन्न किया है।

अजौ तर्योना ही रह्यो, स्तुति सेवत इक रंग।
नाक वास बेसर लह्यो, बसि मुकतन के संग।।

प्रस्तुत उदाहरण में 'तर्योना', 'स्तुति', 'नाकवास' और 'बेसर' शब्दों का श्लिष्ट प्रयोग कवि कल्पना का उत्कृष्ट परिचायक है –

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै, स्याम हरित दुति होय।।

प्रस्तुत उदाहरण में 'स्याम' और 'हरित' शब्दों की श्लिष्ट योजना में पर्याप्त चमत्कार समाहित है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. उपमा अलंकार का प्रयोग – जहाँ पर उपमेय की उपमान से तुलना की जाती है और अर्थालंकार के चारों तत्त्व (उपमेय, उपमान, वाचक शब्द और साधारण गुण धर्म) संन्निहित हों, वहाँ पर उपमा अलंकार होता है। कवि बिहारी ने अपने लघु आकृति वाले दोहों में उपमा अलंकार का रोचक व सफल प्रयोग किया है –

"अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठ पर जोति।
हरित बाँस की बासुरी इन्द्र धनुष सी होति।।"
"अंग अंग नग जग मगै, दीप शिखा–सी देह।
दिया बढायो हूँ रहे, बडो उजेरो होय।।"

5. रूपक अलंकार का प्रयोग – जब उपमेय में उपमान का आरोप कर दिया जाये तो रूपक अलंकार होता है। कवि बिहारी ने सांगरूपक की योजना में विशेष सफलता प्राप्त की है और दोहे जैसे लघु छन्द में इस अलंकार का प्रयोग निश्चित रूप से कठिन होता है –

खौरि–पनिच भृकुटि–धनुष, बधिक–समऊ तजि कानि।
हनतु तरुन–मृग तिलक–सट, सुरक भाल भरि तानि।।

सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पाने के लिये विषय वासना के परित्याग का संदेश देने में भी कवि ने इसी अलंकार का प्रयोग किया है –

"जमकरि मुँह तरहरि पर्‌यो इहि धरि चित हरि लाउ।
विषय–तृषा परिहरि अजौ, नरहरि के गुन गाऊ।।"
"अरुन सरोरुह–कर चरन, दृग खंजन मुख चन्द।
समय आय सुन्दर सरद, काहि न करत अनन्द।।"
"तो लागि या मन सदन में, हरि आवे किहिं वाट।
विकट जटे जौ लगि निपट, खुले न कपट कपाट।।"

6. उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग – जहाँ पर उपमेय में उपमान की संभावना व्यक्त की जाये तथा मानो, मनहु, जानो, जनहुं आदि शब्दों का प्रयोग किया जाये वहां पर उत्प्रेक्षा अलंकार है। कवि बिहारी ने रूपक अलंकार की भांति उत्प्रेक्षा का भी सुन्दर प्रयोग किया है। श्रीकृष्ण की रूप छटा को उन्होंने उत्प्रेक्षा के माध्यम से वर्णित किया है –

मोर मुकुट की चन्द्रिकन यो राजत नन्द नन्द।
मनु ससि सेखर की अकस, किय सेखर सत चन्द।।
सोहत ओढे पीत पट, स्याम सलौने गात।
मनो नील मनि सैल पर आतप पर्‌यो प्रभात।।
मनहु विधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिवे काज।
दृग पग पौछनि को किये, भूषण पायंदाज।।

7. अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग – जब किसी उपमेय का वर्णन इतना अधिक बढा–चढा कर किया जाये कि सीमा या मर्यादा का उल्लंघन हो जाता हो वहां पर यह अलंकार होता है विरह वर्णन में बिहारी ने कुछ स्थलों पर अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया है जिसके माध्यम से विरह–वेदना की तीव्रता को प्रकट करने का प्रयास किया गया है –

इत आबति चलि जाति उत, चली छ सातक हाथ।
चढी हिण्डोरे पे रहे, लगी उसाँसनु साथ।।
आडै दे आले वसन, जाडे हूँ की रात्रि।
साहस करि के नेह–बस, सखी सबै ढिग जाति।।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग – दूसरों पर ढाल कर कहा गया कथन अन्योक्ति कहलाता है। कवि बिहारी ने इस अलंकार के प्रयोग में महारथ प्राप्त किया है। अपने आश्रयदाता महाराज जयसिंह को उद्देश्य बनाकर सृजित दोहा–

नहीं पराग नहीं मधुर मधु, नहीं विकास एहि काल।
अली कली ही सों बन्ध्यों, आगे कौन हवाल।।

ऐसा कहा जाता है कि जयपुर नरेश ने इस एक मात्र दोहे पर एक लाख अशर्फी देकर सम्मानित किया–

स्वारथु सुकृत न श्रम वृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराये पानि परि, तू पच्छीनु न मारि।।
जिन दिन देखे वे कुसुन, गई सो बीति बहार।
अब अली रही गुलाब में अपत कटीली डार।।
मरत प्यास पिंजरा पर्‌यो सुवा समय के फेर।
आदर दे दे बोलियत, वायस बलि की बेर।।

9. परिकर अलंकार का प्रयोग – साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करके कवि बिहारी ने परिकर अलंकार की अच्छी योजना समायोजित की है, यथा–

कबहूँ को टेरत दीन रट, होत न स्याम सहाय।
तुम हूँ लागी जगत् गुरु, जग नायक जन बाय।।

10. काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग – सहेतुक काव्यार्थ का उपन्यास करने में काव्य लिंग अलंकार होता है। कवि बिहारी ने ऐसे अलंकारों का प्रयोग भी अपने काव्य में किया है–

पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्यो ही रहति, आँगन ओप उजास।।

11. विरोधाभास अलंकार – उक्ति चमत्कार का अधिक ध्यान रखने में कवि बिहारी ने कई दोहों में इस अलंकार का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है –

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों–ज्यों बूड़ै स्याम रंग, तेतों उज्ज्वल होय।।

12. संसृष्टि अलंकार का प्रयोग–कवि बिहारी ने अपने काव्य के छोटे–छोटे दोहों में अनेक–अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है जिससे काव्य में रोचकता व चमत्कार उत्पन्न हो गया है–

नर की अरु नल नीर की, गति एकै कर जोई।
जेतो नीचो व्है चलै, त्यों–त्यों ऊँचो होय।।

इस उदाहरण में उपमा, विरोधाभास, दीपक और श्लेष अलंकार का सामूहिक प्रयोग किया गया है।

3.3 सारांश

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि बिहारी के काव्य में अलंकार योजना प्रशंसनीय है। श्रृंगारिक कवि होने के कारण उन्होंने प्रत्येक दोहे में अलंकारों का सन्निवेश करने का प्रयास किया है साथ ही अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं वाग् वैदग्ध्य को समाविष्ट किया है जिसमें वे पूर्णतया सफल रहे हैं। बिहारी के काव्य में कला पक्ष काफी सशक्त और चमत्कारिक बन गया है और इस दृष्टि से बिहारी का सतसई एक सफल काव्य है।

3.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. बिहारी के सतसई काव्य के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. कवि बिहारी के नीति वर्णन को स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–4 : घनानन्द

संरचना

4.0 कवि परिचय

4.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

4.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

4.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

4.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

4.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

4.3 सारांश

4.4 अभ्यास प्रश्नावली

4.0 कवि परिचय

नेह महा, ब्रज भाषा प्रवीण और सुन्दरतानि के भेद को जानैं।
योग–वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानैं।।
चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम साँति न मानैं।
भाषा–प्रवीण सुछन्द सदा रहै, सो घनजू के कवित्त बखानैं।।

रीतिमुक्त काव्य धारा के विकास में सर्वाधिक योगदान कवि घनानन्द का माना जाता है। एक प्रकार से घनानन्द ही इस धारा के सर्वोत्कृष्ट कवि थे। इन्हें प्रेम के पीर का कवि माना जाता है। इनका जन्म 1689 ई. में उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में हुआ और 1739 ई. मे ये पंच तत्त्व में विलीन हो गये। यदि घनानन्द के संदर्भ में यह कहा जाये कि वे रस के साक्षात् अवतार थे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। इनका रचना काल सं.1746 से सं.1817 विक्रमी तक माना है। वे रीतिकालीन स्वच्छन्द कवि थे। अपने आचार्यत्व को प्रकट करने में कई रस सिद्ध कवियों ने अपने कवि रूप को धूमिल कर दिया, किन्तु घनानन्द इस प्रलोभन से सर्वथा मुक्त थे।

कवि घनानन्द के संदर्भ में एक किवदन्ती है कि वे मुहम्मदशाह रंगीले के मीरमुंशी थे। वे दरबार की 'सुजान' नामक नर्तकी से प्रेम करते थे। सुजान और घनानंद के पारस्परिक प्रेम से चिढ़कर कुछ दरबारियों ने मुगल बादशाह से घनानंद की शिकायत थी। बादशाह ने घनानंद से गाना सुनाने के लिए कहा लेकिन घनानंद ने मना कर दिया। इस पर बादशाह ने सुजान को आदेश दिया कि वह घनानंद को गाने के लिए कहे। सुजान के आग्रह करने पर घनानंद ने इतना मोहक गाया कि स्वयं बादशाह मुग्ध हो गये लेकिन अपने आग्रह की अवहेलना और सुजान के द्वारा कहने पर गाने के कारण मुगल बादशाह ने घनानंद को अपने साम्राज्य से निष्कासित कर दिया। सुजान ने घनानंद का साथ नहीं दिया यही मानसिक चोट घनानंद के काव्य का आलम्बन बन गयी। घनानन्द मथुरा आ गये किन्तु वहाँ रहकर भी वे सुजान को चाहकर भी नहीं भुला पाये। कुछ समय पश्चात् वे निम्बार्क सम्प्रदाय से दीक्षा ली हुए और उपासना करने लगे। वे भावुक स्वभाव के कवि थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनको रीतिमुक्त धारा का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित करते हुए कहा कि 'प्रेममार्ग का ऐसा धीर और प्रवीण कवि तथा जबाँदानी का दावा करने वाला कवि दूसरा नहीं हुआ।'

नादिरशांह के आक्रमण के समय घनानन्द मारे गये थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं. रामनरेश त्रिपाठी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा मिश्र बन्धुओं ने घनानन्द की कृतियों के विषय में जानकारी प्राप्त की। उनके द्वारा सृजित 'सुजान सागर' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें 100 से अधिल छन्दों का संकलन किया गया है। पं. रामनरेश त्रिपाठी ने घनानन्द की जिन कृतियों का उल्लेख किया है वे हैं– सुजान सागर, घनानन्द कवित्त, रसकेलिवल्ली, कृपानन्द निबन्ध, कोक सार तथा विरह लीला। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने घनानन्द की कृतियों का उल्लेख मिश्र बन्धुओं की सूचना के आधार पर किया है। श्री बृजनाथ ने भी इनकी प्रशस्ति और कृतियों का संकलन किया है। पं. विश्वनाथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसाद ने घनानन्द ग्रन्थावली में जिन कृतियों को प्रमाणित माना उनमें – सुजानहित, प्रेम–पत्रिका, प्रेम सरोवर, बृजविलास, सरस बसंत, अनुभव चन्द्रिका, रंग बधाई, प्रेम पद्धति, वृषभानुपुर, सुषमा वर्णन, गोकुलगीता, नाम माधुरी, गिरीपूजन, विचारसार, दानछटा, भावना प्रकाश, कृष्ण कौमुदी, धाम चमत्कार, प्रिया प्रसाद, वृन्दावन मुद्रा, ब्रजस्वरूप, गोकुल चरित्र, प्रेम पहेली, रसनायश, गोकुल विनोद, कुरलिकामोद, मनोरथ मंजरी, बृज व्यवहार, गिरिगाथा पदावली, प्रकीर्णक, छन्दाष्टक, त्रिभंगी और परमहंस वंशावली आदि।

कवि घनानन्द की जैसी विशुद्ध टकसाली ब्रज भाषा लिखने वाले कवि बहुत कम हुए हैं। उन्होंने वियोग श्रृंगार के आधार पर प्रेम के संगीत की तान छेड़ी है। इनकी कविताओं में अनेक भावनाएं समाहित हैं। उन्होंने शब्दों में काव्योपयुक्त और लाक्षणिक प्रयोग किये हैं। नाद व्यंजना, अर्थगाम्भीर्य आदि की दृष्टि से उनकी रचनाएं अद्वितीय हैं –

कारी कूर कोकिल कहाँ को वैर काढत री।
कूकि–कूकि अबही करेजो किन कोरि लै।।
पैड़ें परे पापी ये कलापी, निसध्यौंस ज्यों ही।
चातक घातक त्यौं तू ही हू कान फोरि लै।।
आनन्द के घन प्रान जीवन सुजान बिना।
जानि कै अकेली सब घेरौ दस जोरि लै।।
जो लौ करें आबन विनोद बरसावन वे।
तौ लौ रे डरारे बजमारे घन घोरि लै।।

भाषा पर जैसा उनका अधिकार या वैसा किसी अन्य कवि को प्राप्त नहीं हुआ। उनकी भाषा भावों की अनुगामिनी तो थी ही हृदय के स्नेह से सनी हुई थी। उनके प्रत्येक पद में अनूठी भाव भंगिमा के दर्शन होते हैं।

कवि घनानन्द श्रृंगार रस के कवि थे और उसमें भी केवल वियोग पक्ष को उन्होंने काव्य रचना के लिये चुना। वे भावना के कवि थे और साथ में एक अच्छे कलाकार भी। उनकी अनुभूति मैत्रीपूर्ण है ज्ञानपूर्ण नहीं। यही कारण है कि उनकी महत्ता अनुभूति, भावना और सौन्दर्य के कारण ही अधिक है। एक प्रकार से उनकी कविता उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है जो न तो उपभोग की वस्तु हैं और न उपयोग की। वह उसकी शक्ति है जिसे निकाल देने से उसका जीवन समाप्त हो जाता है। कविता के सूक्ष्म यंत्र के द्वारा कवि घनानन्द ने जीवन के अचेतन में छुपे तत्त्वों को बड़ी खूबी के साथ निकाला है। उनकी इसी खोज से पाठक आनन्दित हुआ है और आनन्द का सम्बन्ध भावना से होता है। घनानन्द एक सच्चे कवि के रूप में अपने प्रति ईमानदार रहे, उनकी अनुभूतियाँ ईमानदार रही हैं। इसलिये वे भावों के लिये अनुरूप शब्दों की तलाश नहीं करते हैं बल्कि शब्द स्वयं उनके सामने आते रहे हैं। घनानन्द ने सभी सहज आगन्तुक शब्दों को अपने में समेट लिया। उनके काव्य का मूल विषय प्रेम और सौन्दर्य रहा है। उनके प्रेम का मार्ग सरल और सीधा रहा है उनमें कपट के लिये कोई स्थान नहीं था। प्रेम–सौन्दर्य और श्रृंगार के दोनों पक्षों का मार्मिक चित्र घनानन्द के कवित्तों में देखा जा सकता है। उनका शिल्प भी रीतिकाल से भिन्न प्रकृति का है। भाषा की लाक्षणिकता, यत्र–तत्र मानवीकरण के प्रयोग औ उक्तिवैचित्र्य तथा वाककौशल उनकी कविता में पर्याप्त हैं। भाषा की लाक्षणिकता, विरोधाभास का सौन्दर्य, कल्पना की सूक्ष्मता, वैयक्तिक अनुभूतियों का सच्चा निरूपण तथा प्रेम मार्ग की विशिष्टता तथा सरलता जैसी प्रवृत्तियों ने घनानन्द को एक श्रेष्ठ कवि के रूप में ख्याति प्रदान की।

4.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

रूप निधान सुजान सखी, जब ते इन नैननु नेकु निहारे।
दीढि थकी अनुराग–छकी मति लाज के साज–समाज बिसारे।।
एक अचम्भौ भयो घनानन्द है नित ही पल पाट उघारे।
टारे टरैं नहीं तारे कहूँ सुलगे मनमोहन मोह के तारे।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – निधान = भण्डार, नेकु = थोड़ा सा, निहारे = देखे, दीठि = दृष्टि, अनुराग = प्रेम, छकी = परिपूर्ण, बिसारे = भुला दिया, अचम्भो = आश्चर्य, पाट = किवाड़, उघारे = खोल दिये,

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'घनानन्द' नामक पाठ से अवतरित है जो 'सुजान प्रेम' से लिया गया है। इसमें नायिका की वियोग दशा और उसकी अपने प्रियतम से मिलन की प्रबल अभिलाषा का मनमोहक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या – एक विरह विदग्धा नायिका अपनी सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे सखी! जब से सौन्दर्य निधान प्रियतम को मेरी इन आँखों में देखा है तब से ये बेचैन हो गई है और ये निरन्तर उन्हें देखते–देखते थककर बेहाल हो गई है। मेरा मन उनके प्रेम से सराबोर हो गया है। मैं तुम्हें कैसे बताऊँ कि मेरी इन आँखों में सामाजिक लोक लाज को भी भुला दिया है अर्थात् बिना किसी परवाह के ये आँखें अपने प्रियतम श्री कृष्ण को खोजते रहती हैं। कवि घनानन्द कहते हैं कि उस नायिका ने अपनी सखी से कहा कि आश्चर्य की बात तो यह है कि मेरी आँखें हमेशा अपने प्रियतम के प्रेम में आनन्दमग्न रहती हैं और पलक रूपी किवाड़ों को बन्द करने का नाम ही नहीं लेती हैं अर्थात् निरन्तर प्रिय की राह देखती रहती है। पलकों के किवाड़ खुलते ही मन में से प्रिय मिलन की अभिलाषा का मोहक आनन्द निरन्तर निकलता ही रहता है और फिर भी इनका आनन्द कम नहीं होता है। मैं इन आँखों को जितना रोकने का प्रयास करती हूँ किन्तु उतना ही ये प्रिय दर्शन के लिये भटकती रहती हैं। मेरा हृदय प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रेमविरह में सुलगता ही जा रहा है अर्थात् मैं विरहाग्नि में तप रही हूँ।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में विरह विदग्धा नायिका की वियोग–दशा का अनुभूतिमय चित्रण प्रस्तुत किया है।
2. 'सुजान' शब्द श्री कृष्ण के लिये प्रयुक्त हुआ है।
3. 'सुजान' शब्द कवि की प्रियतमा का संकेत देता है।
4. अवतरण में रुपक, अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर चित्रण किया है।

(2)

हीन भये जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै,
नीर सनेही को लाय कलंक निरास है कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति को रीति सु क्यों समुझै जड़ मीत के पानि परै क्यों प्रमानै,
या मन की जु दसा घन आनन्द जीव की जीवनि जान ही जानै।।

शब्दार्थ – हीन = रहित, अलग, अभाव, मीन = मछली, अकुलानि = अकुलाता है, नीर = जल, सनेही = प्रेमी, मीत = प्रिय, जड़ = मूर्ख, जीवनि = जिलाने वाली, जान = सुजान (प्राण प्रिय)।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के घनानन्द नामक पाठ से लिया गया है जिसे 'सुजान प्रेम' प्रसंग से अवतरित किया गया है। इस अंश में कवि ने अपने मन की विरह व्यथा का वर्णन किया है।

व्याख्या – कविवर घनानन्द अपनी प्रियतमा के विरह में अपने मन की विवशता का अनुभूतिमय चित्रण करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार मछली पानी में रहते हुए भी अपना प्रेम निभाने में असफल रहती है और वह पानी से अलग होते ही अपने प्राण त्याग देती है। एक प्रकार से वह प्रेमी जल को कलंकित करते हुए भी निराश होकर मर जाती है अर्थात् उसे गदला करती है। मछली तो कायर के समान है जो जरासी विरह व्यथा को भी सहन नहीं कर पाती है और अपने प्राण त्याग देती है। कवि घनानन्द कहते हैं कि मछली तो वैसे भी बुद्धिहीन और नासमझ है इसीलिये वह प्रेम निर्वाह की परम्परा का निर्वाह करना जानती ही नहीं है। वह तो अपने प्रिय जल को ही प्रेम का प्रमाण मानती है। वह मेरी तरह नहीं है। सुजान के विरह में मेरे मन की जो स्थिति है उसे कोई नहीं जानता है इसे तो प्राणों को जिलाने वाली वह प्रियतमा सुजान जान सकती है। अस्तु, सुजान के विरह में तिल–तिल कर जल कर जी रहा हूँ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने अपनी प्रियतमा के विरहजनित अपने मन का श्लिष्ट वर्णन किया है।
2. 'सुजान' को कृष्ण मानने पर कवि की प्रेमाभक्ति स्पष्ट होती है।
3. प्रस्तुत अवतरण में श्लेष अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
4. अधीन होना, कलंक लगाना, प्राण त्यागना, हाथों पड़ना आदि मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(3)

आँखिन मूदिवो बात दिखावत,
सोवनि जागनि वातहि पेखि लै।
वात–सरुप अनूप–अरुप है,
मूल्यो कहा तू अलेखहिं लेख लै।
बात की बात सुबात विचारिबो,
सच्छमता सब ठौर विसेखि लै।
नैननि कानन बीच बसै,
घन आनन्द मौन–बखान सु देखि लै।।

शब्दार्थ – सोवनि = सोने पर, जागनि = जागने पर, पेखिलै = देख लो, अनूप = अनोखी, अलेखहिं = चित्रण रहित, सच्छमता = सक्षमता, ठौर = जगह, बिसेखि लै = विशेष रूप से जान ले।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के घनानन्द द्वारा विरचित 'सुजान प्रेम' प्रसंग से अवतरित है जिसमें कवि ने प्रियतमा के विरह से व्यथित नायक की मनोव्यथा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – कवि घनानन्द नायिका को अपना लक्ष्य मानकर मन की विवशता एवं उपालम्भ को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जब भी मैं अपनी आँखें बन्द कर लेता हूँ तो तुम्हारी यादों का समा बँध जाता है किन्तु सोते हुए और जागते हुए जो मेरी हालत होती है हे प्रियतमा! तुम उसे तो देखो कि मेरी विवशता कितनी हैं, मेरी विरह व्यथा कैसी हैं? मुझे तुम्हारी बातों का रह–रह कर ख्याल आता है जो मुझे अत्यन्त सरल लगती है किन्तु अनुपम और अरूप हैं। मैं चाहकर भी उन बातों को नहीं भुला पाता हूँ क्योंकि तुम मेरे अन्तःकरण में चित्रण रहित होती हुई भी स्पष्ट चित्रित सी दिखाई देती हो अर्थात् हमेशा तुम्हारी सजीव छवि मेरे अन्तःकरण में बसी रहती है। बात–बात पर उक्तियों पर विचार करने की जो क्षमता है उस पर भी थोड़ा विचार करो। अर्थात् प्रत्येक बात को समझने की क्षमता होनी चाहिये। अगर ऐसी क्षमता है तो सर्वत्र प्रिय का प्रणय भाव देखने को मिल जाता है। कवि कहते हैं कि हे प्रियतमा सुजान! कानों और नेत्रों के मध्य कम दूरी होते हुए भी काफी अन्तर है। क्योंकि कानों पर सुना उतना सत्य नहीं होता है जितना आँखों द्वारा देखा गया सत्य होता है, किन्तु कानों और नेत्रों के मध्य की स्थिति प्रिय–प्रणय बखान के मौन–बखान की होती है। तुम अव्यक्त प्रणय–भाव को अच्छी तरह से समझने का प्रयास करो। मेरी विवशता को समझो।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने सुजान को लक्ष्य मानकर अपने मन की विवशता को स्पष्ट किया है।
2. सोते–जागते प्रेम–भाव का स्मरण विरह की उद्दीप्त स्थित का परिचायक है।
3. प्रस्तुत अंश में पुनरुक्ति प्रकाश,अनुप्रास,काव्यलिंग और आक्षेप अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(4)

सुधि करै भूल की सुरति आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकों गहि मौन कों।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाते सुधि भूलै सो कृपा ते पाइयत प्यारे,
फूलि–फूलि भूलौ या मरोसे सुधि हौंन कों।
मेरी सुधि भुलहिं विचारिये सुरति नाथ,
चातक उमाहैं घन आनन्द अचौन कौं।
ऐसी भूलहुँ सों सुधि रावरी न भूलै क्यों हूं,
ताहि जो विसारौ तो संभारो किरि कौन को।

शब्दार्थ – सुधि = याद, कूंको = करुण विलाप करुँ, फूलि = प्रसन्न, उमाहें = उत्सुकतायुक्त, अचौन = आचमन, राबरी = तुम्हारी, संभारौ = संभालना।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के घनानन्द द्वारा विरचित 'सुजान प्रेम' प्रसंग से लिया गया है, जिसमें कवि ने विरहिणी नायिका के मनोभावों का सजीव चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि घनानन्द की आत्मा रूपी विरहिणी नायिका अपने प्रियतम कृष्ण को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि हे प्रिय!जब मैं अपने प्रियतम के वियोग को भूलाने का प्रयास करती हूँ तो उतनी ही अधिक उनकी पूर्वप्रिय स्मृतियाँ ताजा होने लगती हैं और उस समय मैं अपनी सारी सुध–बुध भूलकर एकान्त में चुपचाप करुण क्रन्दन करती रहती हूँ। प्रिय की यादें तो तभी शान्त होंगी जब मुझे उनके दर्शन होंगे। इसलिये मैं सदैव प्रियतम की यादों को तरोताजा बनाये रखती हूँ और इसी आस में रहती हूँ कि मेरी याद जो आप भूल गये हो। उस पर फिर से विचार कीजिए। वे इस तरह मेरे द्वारा याद करेंगे और मेरे पास आयेंगे। कवि अपनी आत्मा रूपी विरहिणी नायिका के शब्दों में कहते हैं कि मेरे प्रियतम सुजान तो मेरी व्यथ को भूल गये हैं। जिस प्रकार चातक स्वाति मेघ के जल का आचमन करने के लिये सदैव लालायित रहता है। इस प्रकार मेरी स्मृति भी आपके प्रेम भावों को स्मरण रूप में अपनाकर आनन्दित और लालायित बनी रहती हैं। इसलिये हे प्रियतम! आपको भूलने से तो आपको याद करना अच्छा है, फिर मैं क्यों आपको भूलने का प्रयास करूँ? यदि मैं आपको भूल जाऊँ तो कौन सँभाल पायेगा? अर्थात् मेरी विरह व्यथा का निवारण आपके अतिरिक्त इस संसार में और कोई भी नहीं कर पायेगा आप ही एकमात्र मेरे प्रेम समर्पण का निर्वाह कर सकते हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में यादों की स्थिति का वर्णन किया है।
2. मन की विवशता, अनन्यता, उपालम्भ और रति–भाव का सुन्दर वर्णन किया है।
3. 'सुधि' और 'भूल' का चमत्कारी वर्णन है।
4. अवतरण में अनुप्रास, यमक, पुनरुक्ति प्रकाश और उदाहरण अलंकार का वर्णन किया है।
5. कवित्त छन्द की पद योजना और भावाभिव्यक्ति के अनुरूप नाद सौन्दर्य प्रशंस्य है।

(5)

भये अति निठुर, मिटाय पहिचानि डारी,
या ही दुःख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तो निपट निरदई, गइ भूलि सुधि,
हमें सूल–सेलनि सो क्यों हूँ न भुलाय हैं।
मीठे मीठे बोल बोलि ठगी पहिलें तौ तब,
अब जिय जारत कहाँ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाही, यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपाय है सु कैसे कल पाय है।

शब्दार्थ – निठुर = निष्ठुर (कठोर), जक = रट, निपट = अतीव, सूल सेलनि–परछी की चुभन, जिय हृदय, जारत = जलाते हुए, कलपायं = तडपाना, कल = चैन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के घनानन्द नामक पाठ से अवतरित है जिसे सुजान प्रेम प्रसंग में लिया गया है। जिसमें एक नायिका की प्रेमजनित स्थिति का वर्णन किया है, वह एक लोकोक्ति का सहारा ले कर अपने प्रियतम को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती है।

व्याख्या – एक नायिका कहती है कि हे प्रियतम! आप तो अब अत्यन्त कठोर हृदय बन गये हो और अपनी कठोरता के कारण आपने अपनी पहचान को भी मिटा दिया है और इस बात की मुझे बहुत वेदना है और इस वेदना के कारण मेरे मन में हाय–हाय की रटना लगी हुई है। आप इतने निर्दयी हो गये हो कि मेरी तो आप कभी सुधि ही नहीं लेते हो। हमें तो आपकी विरह वेदना की कसक बरछे की चुभन के समान दुःखदायी अनुभव होती है उसे हम कैसे भूल सकते हैं। प्रेम करते समय आपने मधुर–मधुर वचन बोलकर हमें ठग लिया था और अब स्वयं हमसे दूर रहकर हमारे मन को विरहाग्नि में जला रहे हो। अब आप ही बताइये कि यह कौन–सा न्याय है? अर्थात् आपका यह व्यवहार अत्यन्त कठोर और कपट से परिपूर्ण है जो अन्याय से युक्त हैं। नायिका कहती है कि हे प्रिय! आपने यह कहावत तो सुनी होगी जो किसी को तड़पायेगा। वह स्वयं कैसे शान्त रह पायेगा अर्थात् जो दूसरों को जान–बूझकर कष्ट पहुँचाता है उसे भी कभी शान्ति नहीं मिलती है।

विशेष

1. कवि घनानन्द ने लोकोक्ति के माध्यम से नायिका के द्वारा दिये जाने वाले उपालम्भ को प्रकट किया है और उसकी विरह–व्यथा को स्पष्ट किया गया है।
2. भावाभिव्यक्ति की सशक्तता के लिये सम्पूर्ण कवित्त में मुहावरों का प्रयोग किया गया है।
3. अनुप्रास, वीप्सा, यमक, पुनरुक्ति प्रकाश और आक्षेप अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(6)

तब तौ छवि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे।
हिय–पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महादुःख–दोष–भरे।।
घन–आनन्द मीत सुजान बिना सब ही सुख साज समाज टरे।
तब हार पहार से लागत है अब आनि कै बीच पहार परे।।

शब्दार्थ – लोचन – नेत्र, सोचन – सोच विचार में, पोष – पोषण, तोष – संतोष, बिललात – तड़पते हुए, पहार – पर्वत।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'घनानन्द' नामक पाठ से अवतरित है जो 'सुजान प्रेम' प्रसंग से लिया गया है जिसमें कवि ने एक ऐसी नायिका की मनःस्थिति का चित्रण किया है जो संयोग और वियोग की परिस्थितियों की तुलना कर रही है।

व्याख्या – कवि घनानन्द नायिका के शब्दों में कहते हैं कि हे प्रियतम! संयोग काल में तो मेरे नेत्र आपकी शोभा का पान करते हुए जीवित रहते थे अर्थात् वे रूप सौन्दर्य का अवलोकन करते हुए आनन्द को प्राप्त करते थे किन्तु अब वियोगावस्था में वे ही नेत्र हमेशा अनेक प्रकार के सोच–विचारों में तपते रहते हैं। संयोगावस्था में मेरे प्राण प्रेम के पोषण से संतुष्ट होकर जीवित थे, किन्तु वियोगावस्था में विरह वेदना से पीड़ित होकर तड़प रहे हैं अर्थात् आपके विरह में इनके सम्पूर्ण सुख–साधन समाप्त हो गये हैं जब हम आपके पास थे अर्थात् संयोग अवस्था में तो गले में पड़ा हुआ हार भी पहाड़ के समान प्रतीत होता था अर्थात् मिलन के समय हमारे गले का आभूषण भी बुरा लगता था। किन्तु अब वियोगावस्था में मेरी व्यथा भी पर्वत के समान मेरे व आपके बीच में आ गई है। वियोग व्यथा के कारण अब प्रियतम से मिलने में व्यवधान आ गया है अतः वियोगावस्था असहनीय बनी हुई है।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में विरहावस्था की असहनीयता का सुन्दर चित्रण किया है।
2. उपमा, अनुप्रास, यमक अलंकारों का प्रयोग किया है।
3. सवैया छन्द की पद मैत्री प्रशंस्य है।
4. सोच में जलना, प्राण पालना, सुख–साज टलना, पहाड़ आकर पड़ना आदि मुहावरों का भावपूर्ण प्रयोग हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(7)

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढति री,
कूकि–कूकि अबही करेजो किन कोरि लैं।
पैंडे परे पापी ये कलापी निसधौंस ज्यों ही,
चातक घातक त्यों ही तू हू कान फोरि लै।
आनन्द के घन प्राण–जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दस जोरि लै।
जौं लौं करैं आवन बिनोद बर सावन वे,
तौ लौ रे डरारे बजमारे घन घोरि लै।।

शब्दार्थ – कूर = क्रूर, करेजो = कलेजा, हृदय, कोरि लैं = कोर कर कमजोर करना, पैंडे = द्वार पर, कलापी = मोर, निसधौंस = रात–दिन, दस जोरि ले = तंग करते हुए घेर रहे हैं, डरारे = डरावने, बजमारे = ब्रज के मारे हुए।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के घनानन्द नामक पाठ से अवतरित है जिसे 'सुजान प्रेम' प्रसंग से लिया गया है। इसमें कवि ने विरह विदग्धा नायिका की विरहावस्था का चित्रण किया है वह प्रेम को उद्दीप्त करने वाली कोयलों और पपीहा पक्षी को अपना शत्रु मानती है।

व्याख्या – कवि घनानन्द कहते हैं कि एक विरहिणी नायिका कोयल को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे काली और कठोर स्वभाव वाली कोयल! तू मेरे साथ कब का तथा कौन–सा बैर निकाल रही है इससे ज्यादा अब तू कुहुँक–कुहुँक कर मेरा हृदय दुखा रही है तू मेरा और क्या अहित करना चाहती है। ये पापी मोर भी हमेशा मेरे घर के ही द्वार पर पड़े रहते हैं और अपनी टेर लगाकर मेरे दिल को और अधिक दुखी करते रहते हैं। नायिका कहती है कि अरे चातक! तू भी मेरे प्राणों को समाप्त करने पर तुला हुआ है क्योंकि तू पीउँ–पीउँ की रट लगाकर मेरे कानों को फोड़ रहा है। आनन्द की वर्षा करने वाले बादल की तरह मेरे प्राण प्रिय प्रियतम के बिना मैं अकेली हो गई हूँ। शायद यह जानकर कि ये मोर, कोयल और चातक आदि सब मिलकर मुझे अकेली समझकर परेशान कर रहे हैं और मेरा मन दुखा रहे हैं। अन्त में विरहिणी नायिका कहती है कि जब तक मेरे लिये आनन्द की वर्षा करने वाले घनश्याम नहीं आयेंगे तब तक ये ब्रज के मारे हुए घनघोर बादल मुझे डराते रहेंगे।

विशेष

1. कवि ने विरह विदग्धा नायिका की विरह गाथा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।
2. कोयल, मोर, चातक पक्षी विरह को उद्दीप्त करने वाले साधना बताया गया है।
3. "इन्द्र अपने ब्रज से बादलों पर प्रहार करता है तब ये जल वर्षा करते हैं। जब तक ये गरजते रहेंगे तब तक नायिका का मन व्याकुल रहेगा और जब ये बरसेंगे तो उसके साथ ही प्रियतम का आगमन होगा" को स्पष्ट कर नायिका की प्रियमिलन उत्सुकता को स्पष्ट किया है।
4. अवतरण में कवि कल्पना और अनुभूति का सुन्दर समन्वयात्मक चित्रण हुआ है।
5. अनुप्रास और परिकर अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
6. मनहरण कवित्त छन्द की पद मैत्री प्रशंस्य है।
7. कलेजा काढ़ना, पैड़े पड़ना, कान फोड़ना, प्राणों के प्राण इन सभी में लक्षणा शब्द शक्ति का अत्यन्त श्रेष्ठ प्रयोग है।

(8)

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि वहै,
लडकीली वानि आनिं उर में अरति है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वहै गति लेन और बजावनि ललित बैन,
वहै हंसि दैन हियरा तै न टरति है।
वहै चतुराई स चिताइ चाहने की छवि,
बहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनन्द निधान प्रान प्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भांतिन सौं बेसुधि करति है।

शब्दार्थ – बतरानि = बातचीत, लडकीली = चपलतापूर्वक, उर = हृदय, अरति = अडती है, चिताई = जगाई गई, छैलताई = रसिकता, छिनक = क्षणभर।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के घनानन्द पाठ से अवतरित है। जो 'सुजान प्रेम' प्रसंग से लिया गया है इसमें कवि ने एक नायिका की संयोग कालीन चेष्टाओं, क्रियाकलापों एवं मुद्राओं की स्मरणोपरान्त वियोग व्यथा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या – कवि घनानन्द कहते हैं कि प्रियतम सुजान की वह मधुर मुस्कान, माधुर्य युक्त वार्तालाप, उसके हाव–भाव व उसका चपलतापूर्वक स्वभाव का स्मरण आते ही मेरे हृदय में सर्वत्र छा जाता है अर्थात् प्रियतम की यादें हमेशा मेरे मन में छाई रहती हैं। सुजान का नाचना, ताल व स्वरों के साथ अंगों का संचालन करना, बांसुरी बजाना, उनका हँसना मैं नहीं भुला पा रहा हूँ। उनके सौन्दर्य का अवलोकन की प्रबल इच्छा और उनका रंगीला छैलापन भुलाये नहीं भुला जाता है। इस प्रकार आनन्द के आधार और प्राण प्रिय सुजान की यादें सदैव मुझे बेचैन किये रहती हैं।

विशेष

1. नायिका की विरहावस्था का सजीव चित्रण किया है।
2. भावों की कोमलता एवं अभिव्यक्ति की सशक्तता के लिये मुहावरों का प्रयोग किया गया है।
3. अनुप्रास, सभंगपदयमक, विषय और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(9)

अति सुधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँच चलै तजि आपुनपौ,
झिझकै कपटी जे निसाँक नहीं।
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ,
इत एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पीटि पढे हौ लला,
मनु लेहुँ पै देहु छटांक नहीं।

शब्दार्थ – अति – अत्यन्त, सूधो – सीधा, सनेह – प्रेम, मारग – मार्ग, नेकु – थोड़ा सा, सयानप – सयानापन, आपनपौं = अहंकार, निसांक = निःशंकता, पाटी पढ़े = शिक्षा ली, लेहुँ = लेते हो।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के घनानन्द पाठ से अवतरित है। जिसे 'सुजान प्रेम' प्रसंग से लिया गया है। जिसमें कवि घनानन्द ने नायिका के उपालम्भ का चित्रण किया है। नायिका प्रेम के सीधे सरल मार्ग में प्रिय की कुटिलता तथा छल–कपट का उलाहना देती हुई कहती है कि मेरे मन में तो तुम्हारे प्रति अनन्यता या एकनिष्ठा का भाव है किन्तु तुम्हारी ओर से इसका कोई प्रतिदान नहीं किया जाता है।

व्याख्या – नायिका कहती है कि प्रेम का मार्ग अत्यन्त सरल व सीधा है। इसमें थोड़ा सा भी सयानापन नहीं है। प्रेम मार्ग में थोड़ा–सा भी छल–कपट शोभनीय नहीं है। प्रेम के ऐसे मार्ग पर अहं भावना को त्यागकर वास्तविक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रेमी (सच्चे प्रेमी) ही चल सकता है किन्तु जो शंकालु और कपटी है वह इस मार्ग पर नहीं चल सकता है। वह इस पथ पर चलने से झिझकता है। कवि घनानन्द कहते हैं कि हे प्रियतम! मेरे हृदय में एक के अलावा कोई दूसरी छाप नहीं ही है अर्थात् मैं एकनिष्ठ हूँ अर्थात् मेरे हृदय में तुम्हारे ही रूप सौन्दर्य का प्रभाव समाहित है इसके अलावा मैं किसी अन्य को प्रेम नहीं करता। किन्तु तुम बताओ कि तुमने यह कौन–सी शिक्षा ग्रहण की है जो मेरा मन अपने प्रेम से भर देने पर भी थोड़ा सा प्रतिदान तुम्हारी ओर से प्राप्त नहीं होता है। तुम मन भर लेकर के छटांक भर भी नहीं देना चाहते।

विशेष

1. विरह व्यथा का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।
2. प्रेम का प्रतिदान प्रेम ही है। प्रेम के बदले प्रेम का निर्वाह न करना अन्यायपूर्ण है।
3. प्रस्तुत अवतरण में अनुप्रास और श्लेष अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
4. सवैया छन्द की गेयता है।
5. प्रेम में एक दूसरे के प्रति त्याग व समर्पण आवश्यक है।
6. प्रेमी हृदय में छिपी हुई व्याकुलता मुखरित हुई है।

4.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

4.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 कवि घनानन्द का जन्म कब और कहाँ हुआ?
उत्तर – कवि घनानन्द का जन्म 1689 ई. में उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में हुआ था।

प्रश्न 2 कवि घनानन्द का रचनाकाल कौन–सा था?
उत्तर – कवि घनानन्द का रचनाकाल सं. 1746 से सं. 1817 विक्रमी तक माना जाता है।

प्रश्न 3 कवि घनानन्द किसके आश्रय में रहते थे?
उत्तर – कवि घनानन्द मोहम्मद शाह रंगीले के मीर मुंशी थे।

प्रश्न 4 'प्रेममार्गी का ऐसा धीर और प्रवीण कवि तथा जवाँदानी का दावा करने वाला दूसरा नहीं हुआ।' प्रस्तुत कथन किसने किसके लिये कहा है?
उत्तर – यह कथन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिमुक्त धारा के श्रेष्ठ कवि घनानन्द के लिये कहा है।

प्रश्न 5 कवि घनानन्द की प्रेम पीड़ा का कारण क्या है?
उत्तर – कवि घनानन्द सुजान नामक वेश्या से प्रेम करते थे और वही उनकी प्रेम पीड़ा का कारण बनी।

प्रश्न 6 'अति सूधो सनेह को मारग ..... पद किसके द्वारा रचित है और किस प्रसंग से सम्बन्ध रखता है?
उत्तर – प्रस्तुत पद घनानन्द द्वारा विरचित 'सुजान प्रेम' प्रसंग से सम्बन्धित है।

प्रश्न 7 कवि घनानन्द ने बार–बार अपने पदों में किसका नाम लिया है?
उत्तर – कवि घनानन्द ने अपने पदों में बार–बार 'सुजान' का नाम लिया है। यह कवि की प्रेमिका थी।

प्रश्न 8 कवि घनानन्द किस सम्प्रदाय के अनुरागी और किसके शिष्य थे?
उत्तर – कवि घनानन्द निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे और इसी सम्प्रदाय के तैतीसवें गुरु श्री नारायणदेव के शिष्य थे।

प्रश्न 9 कवि घनानन्द को रीतिकाल की किस धारा का कवि माना जाता है?
उत्तर – घनानन्द को रीतिकाल की स्वच्छन्द धारा अर्थात् रीतिमुक्त काव्यधारा का कवि माना जाता है।

प्रश्न 10 कवि घनानन्द की सबसे बड़ी विशेषता क्या थी?
उत्तर – हृदय की प्रेम व्यथा को भाव प्रवणता के साथ सशक्त अभिव्यक्ति करना घनानन्द की सबसे बड़ी विशेषता थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 11 घनानन्द के काव्य में कौन–सी भाषा प्रयुक्त हुई है?
उत्तर – घनानन्द के काव्य में विशुद्ध सरस और भावपूर्ण ब्रज भाषा प्रयुक्त हुई है।

प्रश्न 12 कवि घनानन्द की प्रमुख रचनाएँ कौन–कौन सी हैं?
उत्तर – सुजान सागर, सुजानहित, सुजानहित–प्रबन्ध, सुजान विनोद, विरह लीला, इश्कलता आदि प्रमुख है जो घनानन्द द्वारा विरचित हैं।

प्रश्न 13 कवि घनानन्द ने अपनी कृतियों में 'सुजान' पद का प्रयोग किसके लिये किया है?
उत्तर – कवि घनानन्द ने अपनी रचनाओं में 'सुजान' पद राधा और श्रीकृष्ण के लिये किया है।

प्रश्न 14 कवि घनानन्द की भक्ति–भावना किस प्रकार की है?
उत्तर – कवि घनानन्द की भक्ति–भावना सखी भाव पर आधारित रही है – सख्य भाव भी कहा जा सकता है।

प्रश्न 15 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।' इस कथन से घनानन्द का क्या भाव व्यक्त हुआ है?
उत्तर – घनानन्द स्वानुभूति के आधार पर आत्मिक चेतना से ही काव्य–रचना करते रहे, बौद्धिक श्रम से नहीं।

प्रश्न 16. घनानन्द किस अलंकार के सिद्धहस्त कवि थे?
उत्तर – कवि घनानन्द विरोधाभास अलंकार के सिद्धहस्त कवि थे।

प्रश्न 17 घनानन्द की प्रेमानुभूति की क्या विशेषता थी?
उत्तर – घनानन्द का प्रेम सुजान नायिका के साथ लौकिक था किन्तु बाद में सुजान (श्रीकृष्ण राधा) के रूप में बदलकर अलौकिक बन गया।

प्रश्न 18 घनानन्द ने प्रेमानुभूति की प्रक्रिया में बुद्धि और प्रीति को क्या बताया है?
उत्तर – घनानन्द ने प्रेमानुभूति की प्रक्रिया में बुद्धि को दासी तथा प्रीति को रानी बताया है।

प्रश्न 19 'सुधि सब भाँतिन सौं बे सुधि करत हैं।' कवि घनानन्द ने किसकी सुधि को बेसुधि करने वाली बताया है?
उत्तर – कवि घनानन्द ने सुजान की मधुर स्मृति (सुधि) को बेसुधि का कारण बताया है।

प्रश्न 20 कवि घनानन्द के प्रेम का मार्ग किस प्रकार का है?
उत्तर – कवि घनानन्द के प्रेम का मार्ग अत्यन्त सीधा–सरल है जिसमें थोड़ा–सा भी सयानापन और छल–कपट नहीं हैं।

प्रश्न 21 'टारे टरै नहीं तारे कहु सुलरो मन–मोहन के तारे।' प्रस्तुत पंक्ति में कवि ने कौन–सा भाव व्यक्त किया है?
उत्तर – प्रस्तुत पंक्ति के माध्यम से कवि घनानन्द कहते हैं कि प्रेम निष्ठा के कारण नेत्र प्रियजन के रूप सौन्दर्य पर निरन्तर आसक्त रहते हैं।

प्रश्न 22 'काहु कलपाय है सु कैसे कलपाय है।' में किस तथ्य की अभिव्यंजना की है?
उत्तर – कवि घनानन्द कहते हैं कि किसी को परेशान करना या तड़पाना ठीक नहीं है और जो कोई किसी को तड़पाता है वह भी समय आने पर उतना ही तड़पता है और कष्ट भोगता है।

प्रश्न 23 'अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं हैं। कवि के अनुसार प्रेम के मार्ग पर कौन चल सकता है?
उत्तर – कवि के अनुसार प्रेम के सरल मार्ग पर केवल वही चल सकता है जो अहंकार रहित हो, छलिया व कपटी न हो और निःशंक भाव से युक्त हो।

प्रश्न 24 'तब हार पहार से लागत हैं अब आनि के बीच पहार परे।' प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने किस दशा का वर्णन किया है?

उत्तर – प्रस्तुत पंक्ति में कवि ने विप्रलम्भ शृंगार की उन्माद दशा का वर्णन किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रश्न 25 'हीन भये जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।' कवि ने 'जल' और 'मीन' के रूपक द्वारा क्या भाव व्यक्त किया है?

उत्तर – मीन जल के बिना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते हैं वही स्थिति सच्चे प्रेमी की होती है। विरह दशा में उसका जीवन संकटमय बन जाता है।

प्रश्न 26 'एक अचम्भो भयो घन आनन्द' – कवि घनानन्द के नेत्रों के किस आचरण में आश्चर्य है?

उत्तर – कवि घनानन्द ने बताया है कि प्रियतम के रूप सौन्दर्य का पान करने के लिये नेत्र सदैव ही निर्निमेष बने रहते हैं।

प्रश्न 27 कवि घनानन्द ने अपनी श्रृंगारिक रचनाओं में कौन से पक्ष को चुना है?

उत्तर – कवि घनानन्द ने श्रृंगार के वियोग पक्ष को ही अपनी रचनाओं का आधार बनाया है।

प्रश्न 28 घनानन्द ने सुजान के माध्यम से रचनाओं में क्या गुण समाहित किया है?

उत्तर – घनानन्द ने काव्य में श्रृंगार के लौकिक रूप का उदात्तीकरण किया है जिसमें सुजान को लक्ष्य बनाया है।

प्रश्न 29 घनानन्द की शैली में क्या विशेषताएँ हैं?

उत्तर – इनकी शैली में लाक्षणिकता और व्यंजकता की शक्ति को चरम रूप में प्रकट किया है।

प्रश्न 30 कवि घनानन्द ने मोहम्मद शाह रंगीले का दरबार क्यों छोड़ा?

उत्तर – घनानन्द को 'प्रेम की पीर' का कवि माना जाता है। ये सुजान नामक गणिका से प्रेम करते थे, अन्य दरबारी उनसे चिढ़ते थे और उन्हीं के षड़यंत्र के कारण उनको दरबार भी छोड़ना पड़ा।

4.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 स्वच्छन्द धारा के कवियों में घनानन्द का महत्त्व बताइये।

उत्तर – रीतिकाल में तीन काव्य धाराएँ प्रचलित थी – रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। उस समय अधिकतर कवि रीतिवादी परम्पराओं का अनुसरण करते हुए श्रृंगार के स्थूल–सूक्ष्म चित्रों का अंकन कर रहे थे। वे लक्षण ग्रन्थों की रचना कर आचार्यत्व का निर्वाह भी कर रहे थे ये रीति बद्ध कवि हैं। कुछ कवियों ने न तो कोई लक्षण ग्रन्थ लिखा और न रीतिवादी परम्पराओं का अंधानुकरण किया किन्तु उन्होंने श्रृंगार विलास को अपनी काव्य रचना का आधार बनाया। रीतिसिद्ध कहा जाता है। घनानन्द रीतिमुक्त काव्य धारा के अग्रणी कवि थे। उन्होंने न तो रीतिवादी परम्परा को अपनाया और न स्वयं को नियमों के आबद्ध रखा अपितु स्वच्छन्दता के साथ अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया। उन्होंने बौद्धिक चेतना की अपेक्षा हृदय की स्वानुभूति को प्राथमिकता देकर प्रेम पीर एवं विरह वेदना का मार्मिक चित्रण किया। उन्होंने प्रेम को वासना के घेरे से बाहर निकाल कर सात्विकता प्रदान की और अपने लौकिक प्रेम को अलौकिक रूप में व्यक्त कर हार्दिक अनुभूतियों का भी प्रकाशन किया इस प्रकार रीतिवादी परम्पराओं से सर्वथा मुक्त रहने के कारण घनानन्द का स्वच्छन्द धारा के कवियों में विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है।

प्रश्न 2 घनानन्द के काव्य में चित्रित प्रेम की पीर व विरह वेदना पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिये।

उत्तर – रीतिकालीन कवियों में कवि घनानन्द को स्वच्छन्द काव्यधारा में अग्रगण्य माना जाता है। रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम के स्थूल एवं बाह्य सौन्दर्य का चित्रण न कर आन्तरिक सौन्दर्य को महत्त्व दिया है। इस विशेषता के कारण घनानन्द के काव्य में चित्रित प्रेम–पीर वासनामय न होकर सात्विक एवं सहज है। उसमें कोरी कल्पना न होकर हृदयगत वेदना का समावेश है। उनका प्रेम प्रारम्भ में तो लौकिक आसक्ति रखता है किन्तु बाद में वह अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। इस कारण से घनानन्द के काव्य में जो प्रेम पीर की अभिव्यक्ति हुई है वह एकनिष्ठ एवं अनन्य है। उसमें प्रेयसी का रूप अलौकिक है तथा वह प्रेम परिपक्व अवस्था का प्रेम है। वस्तुतः घनानन्द मन की आँखों से प्रेम पीर को देखते रहे हैं। परिणामतः उसमें आन्तरिक अनुभूति के साथ विरह वेदना का जो स्वर व्यक्त हुआ है वह अत्यन्त उदात्त एवं भावात्मक है। घनानन्द ने 'सुजान' के विरह में उसके दर्शन की लालसा रखकर जो वेदना अनुभूति व्यक्त की है उसमें मिलन की उत्कृष्ट चाह भी व्यंजित हुई है। अतः घनानन्द के काव्य में आन्तरिक भावों की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति हुई है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रश्न 3 घनानन्द के काव्य की भावगत विशेषताओं को संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – घनानन्द रीतिकालीन स्वच्छन्द कवियों में सर्वाग्र रहे हैं। इनका प्रमुख विषय श्रृंगार एवं प्रेम रहा है। इनके काव्य में बौद्धिक चमत्कार तथा पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति न होकर हृदयगत अनुभूतियों का सरस चित्रण किया गया है। इस वजह से इनके काव्य में प्रेम की पीर की उदात्त सात्विक अनुभूति हुई है। भावों की जैसी मार्मिकता घनानन्द में देखी जा सकती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेम–पीर के निरूपण में घनानन्द में प्रेमी–प्रेमिका के संयोग और वियोग को सात्विक अभिलाषा का परिणाम माना है। इसलिये उन्होंने बार–बार संयोग और वियोग की स्मृति और वास्तविक वियोग में वेदना का चित्रण किया है। जब कोई प्रेमी चाह के रंग में भीगा रहता है और मन की आँखों से प्रियतमा को देखता रहता है तो वियोग भी संयोग जैसा बन जाता है। घनानन्द ने विरह वेदना के साथ–साथ नायक–नायिकाओं के रूप सौन्दर्य का भी सुन्दर चित्रण किया है। अंगों की नवीन आभा तथा वाणी का माधुर्य भी निरूपित किया है। इनका प्रेम अलौकिक एवं आध्यात्मिक है उसमें अनुभूति की तीव्रता है, इस प्रकार का चित्रण करने में घनानन्द के काव्य में अनेक भावनाओं का सुन्दर समावेश हुआ है जो अपने आप में अनुपम हैं।

प्रश्न 4 घनानन्द के काव्य की भाषागत विशेषता पर रांक्षेप गें प्रकाश डालिये।

उत्तर – कवि घनानन्द रीतिकालीन स्वच्छन्द कवियों में अपना अलग ही स्थान रखते हैं। इस काल के लगभग सभी कवियों ने ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। उनकी साहित्यपूर्ण, लालित्यपूर्ण ब्रजभाषा को लक्ष्य बनाकर प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने लिखा है कि 'नेही महाब्रज भाषा प्रवीन औ सुन्दरतानि के भेद को जानै। अर्थात् घनानन्द के काव्य में सभी रूप देखने को मिल जाते हैं। उन्होंने ब्रज भाषा को लाक्षणिकता और प्रेषणीयता प्रदान की है। कुछ स्थानों पर प्रेम पीर के भावात्मक चित्रण में चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया है। नाद–सौन्दर्य तथा भावानुकूलता तो घनानन्द की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता रही है। उन्होंने कहीं–कहीं पर सामासिक शब्दावली और वक्रोक्ति का प्रयोग भी किया है जिससे उनके काव्य में अभिव्यक्ति की प्रखरता आ गई है। उन्होंने रोजमर्रा काम आने वाली भाषा का मुहावरों के साथ प्रयोग किया है।

इस प्रकार घनानन्द की ब्रज भाषा सभी गुणों व सभी रूपों से परिपूर्ण है उसमें कोमलता, प्रवाहपूर्णता, सरसता, सशक्तता एवं भावाभिव्यंजना में समर्थ एवं अर्थगाम्भीर्य से युक्त हैं। जो अपने आप में अनुपम है।

प्रश्न 4 'घनानन्द के काव्य में प्रेम की मौन पुकार है, संयोग में वियोग का भय है और अभिलाषा की प्रधानता व प्रतीक्षाकूलता का भाव सर्वोपरि है।' पठित अंश के आधार पर इस कथन की मीमांसा कीजिये।

उत्तर – रीतिमुक्त स्वच्छन्द काव्य धारा के प्रवर्तक रूप में कवि घनानन्द का महत्त्व सर्वविदित है। ये प्रेम की पीर के गायक कवि माने गये हैं। चाह के रंग में भीज्यौ हियौ – अनुभूति के कारण वे जिस प्रियतमा से इश्क करते थे उसका व्यवहार उपेक्षापूर्ण था, फिर भी मन की आँखों से अपने प्रेम की मौन पुकार व्यक्त करते रहते थे। वस्तुतः हिय आँखिन नेह की पीर तकी – के कारण घनानन्द का प्रेम वासनामय न होकर शुद्ध भावनात्मक रहा। उनके काव्य में जहाँ एक ओर संयोग में भी वियोग का भय अभिलाषा एवं अनन्यता में भी उपेक्षा एवं प्रतिकूलता की वेदना अभिव्यक्त हुई है। अतः घनानन्द के सम्बन्ध में समीक्षात्मक दृष्टि से उपयुक्त कथन पूर्णतः सत्य है इस कथन की मीमांसा निम्नलिखित बिन्दुओं से की जा सकती है–

1. प्रेम की सात्विकता
2. प्रेम की एकनिष्ठा
3. प्रेम की उदात्तता
4. प्रेम जन्य वेदना
5. प्रेमानुभूति की तीव्रता
6. प्रेम और संयोग श्रृंगार
7. संयोग में वियोग का भय
8. प्रेम की पीर तथा विरह वर्णन
9. निष्कर्ष।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(**नोटः** विद्यार्थीगण कृपया ध्यान दें, इस प्रश्न के उत्तर में अंकित बिन्दुओं का विस्तार प्रश्न संख्या 2 व प्रश्न संख्या 3 से प्राप्त किया जा सकता है।)

4.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 'मोहि तो मेरे कवित्त बनावत' कवि के इस कथन को स्पष्ट करते हुए उनकी स्वच्छन्द काव्यधारा का निरूपण कीजिये।

अथवा

'घनानन्द स्वच्छन्द धारा के अग्रणी कवि थे।' इस कथन को सोदाहरण पुष्टि कीजिये।

अथवा

'घनानन्द ने प्रचलित काव्य–प्रणाली की लीक छोड़कर काव्य रचना की है।' इस कथन की सत्यता की समीक्षा करते हुए स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – कवि घनानन्द को रीतिकाल का स्वच्छन्द व भावुक कवि माना जाता है। इन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय से दीक्षा प्राप्त की और इसी सम्प्रदाय के सैतीसवें गुरु श्री नारायणदेव से शिक्षा–दीक्षा लेकर उन्हें गुरु बना लिया। इस सम्प्रदाय के द्वैताद्वैत दर्शन में विश्वास किया जाता है और सखी भाव की भक्ति को प्रधानता दी जाती है। घनानन्द यद्यपि रीतिकाल के कवि थे किन्तु उन्होंने काव्यशास्त्रीय नियमों और बन्धनों को स्वीकार नहीं किया। रीतिकाल में परम्परानुसार श्रृंगार प्रधान रचनाओं का निर्माण हुआ। किन्तु यदि सूक्ष्मता से देखा जाये तो रीति मार्ग सर्वमान्य होने पर भी उसका प्रभाव कुछ कवियों पर उतना नहीं रहा जितना कि रहना चाहिये। इस दृष्टि से ही रीतिकालीन कवियों को तीन श्रेणी में रखा है। जिन्होंने रीतिवादी परम्पराओं का पालन करते हुए श्रृंगार के स्थूल सूक्ष्म चित्रों का वर्णन किया ये प्रथम श्रेणी के कवि माने जाते हैं जिन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जाता है। दूसरे वर्ग में वे कवि आते हैं जिन्होंने रीतिवादी परम्परा को यथारूप में नहीं अपनाया और कोई रीति ग्रन्थ भी नहीं लिखा जिसमें श्रृंगार को प्रधानता दी हो। ऐसे कवियों को रीतिबद्ध कवि कहा जाता है। तीसरे वर्ग में वे कवि आते हैं जो रीतिवादी परम्पराओं से मुक्त रहकर, काव्यशास्त्रीय नियमों से मुक्त रहकर स्वच्छन्द मनोवृत्ति के थे, ऐसे कवियों को रीतिमुक्त कवि कहा जाता है। इन कवियों में घनानन्द, बोधा, आलम, ठाकुर आदि कवियों का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है।

घनानन्द और उनकी मुक्त काव्य धारा

कवि घनानन्द को स्वच्छन्द काव्य धारा का सिरमौर माना जाता है। इनके काव्य में इस काव्य धारा की सभी प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं। इस धारा के कवियों में प्रेम–पीर के अनुरूप अनेक मार्मिक अनुभूतियों के दर्शन होते है।। इसी विशेषता के प्रमाण स्वरूप घनानन्द का यह कथन दृष्टव्य है –

'लोग हैं लागि कवित्त बनावत।
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।।'

कविगण स्वानुभूति के अभाव में बौद्धिक प्रयास करके काव्य रचना करते रहे हैं, किन्तु स्वच्छन्द काव्यधारा के कवि आत्मिक प्रेम–पीर भावना में रत रहते हैं। कवि घनानन्द इसी प्रकार के कवि थे जिनकी काव्य चेतना को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. प्रेम और श्रृंगार की अनुभूति – रीतिबद्ध कवियों ने प्रेम की स्थूलता और श्रृंगार की उद्दाम वासना को जीवन्त रूप से चित्रित किया है और काव्य के विभिन्न पक्षों को प्रधानता दी है। उनका काव्य आन्तरिक पक्ष से सर्वथा निर्बल होने लगा जिससे काव्यानुभूति का पक्ष दबता ही चला गया। इस प्रकार की प्रवृत्ति से मुक्त होकर कुछ कवियों ने अपना अलग स्वतन्त्र मार्ग चुना। जिनमें घनानन्द अपनी आत्मानुभूति की ऐसी सामग्री प्रस्तुत की, जिससे न केवल तत्कालीन कविता के अभाव की पूर्ति हो गई। साथ ही आगामी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त हुआ। घनानन्द ने रीतिमुक्त धारा का आश्रय लेकर परम्परागत वासनामय अनुराग को न अपनाकर प्रेम के उदात्त स्वरूप को अपनाया और प्रेम की एकनिष्ठता, अनन्यता एवं दृढ़ता का सशक्त प्रतिपादन किया है। इतना ही नहीं, घनानन्द ने उन रीतिवादियों की निन्दा भी की है जो प्रेमहीन एवं स्थूल वासना के उपासक थे। इस प्रसंग में उन्होंने स्पष्ट किया

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कि दिखावटी प्रेम की अनुभूति का सही आस्वाद नहीं होता है। व्यक्तिगत प्रेमानुभूति ही काव्य के लिये महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। प्रेम का मार्ग बुद्धि की वक्रता से नहीं बल्कि हृदय की शुद्धता व सरलता से तथा निष्कपट भाव से निर्मित होता है।

'अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँच चलैं तजि आपुनपौ,
झिझकै कपटी जे निसाँक नहीं।।'

घनानन्द रीतिबद्ध कवियों को बुद्धि नेत्रधारी समझते थे और वे कहते थे कि बुद्धि नेत्र वाले, हृदय नेत्र वालों (प्रेम की व्यक्तिगत अनुभूति करने वाले) की तुलना में मोर पंख के समान मात्र सौन्दर्य वाली हैं और कुछ भी नहीं हैं। ऐसे कवि प्रेम के अगाध तल का स्पर्श कभी भी नहीं कर पाते हैं। कवि घनानन्द कहते हैं कि वास्तविक अनुभूति बुद्धि से परे की चीज है।

जो त्यों जनै न भूल, तौ तौ सोवे सुरति सुख।
वही होय अनुकूल तो भूलै सुख सुधि सबै।।

इसी कारण घनानन्द ने प्रेमानुभूति की प्रक्रिया में बुद्धि को दासी और प्रीति को रानी बताया है –

'रीझि सुजान सचि पटरानी, बची बुधि कबरि वै कर दासी।'

2. **अनुभूतिमय भावधारा** – रीतिकालीन कवियों में घनानन्द ऐसी विचारधारा वाले कवि थे जो प्रेम की हार्दिक अनुभूतियों को अपने काव्य के माध्यम से व्यक्त करना चाहते थे और उसी को अपने कवित्व की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि मानते थे। उनकी दृष्टि में बौद्धिक व्यायाम कविता के साथ एक प्रकार का दल था। क्योंकि उन सभी रचनाओं में वासना का नंगा नाच दिखाई देता था इस संदर्भ में उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि–

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै, सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनिकै सबके मन लालच दौरे, पै बौरे लखैं सब बुद्धि–चकी।।
जग की कविताई के धोखे रहै, ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी।
समुझे कविता घन आनन्द की, हिय आँखिन नेह की पीर तकी।।

कवि घनानन्द ने बुद्धि–नेत्र से प्रेम व्यापार करने वाले कवियों पर आक्षेप करते हुए कहा है कि बुद्धि के आधार पर प्रेम–कथन पानी को मथने के समान असफल प्रयास है, जो व्यक्ति ऐसा करता है वह यथार्थ प्रेम के प्रति अज्ञान है, वह हृदय से जड़ है, प्रेम का थोथा निर्वाह करने वाला है –

बात के पेस तें दूरि परै जडता नियरे सिपटै हिये दाहैं।
चित्र की आँखिन लीने विचित्र महारस रूप संवाद सराहै।।

3. **वेदना व दुःख की तीव्रता** – कवि घनानन्द ने अपने काव्य में विवरणात्मक वर्णन को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। यह विवरण जहाँ वस्तु–सत्य है, वहाँ पर भाव–सत्य भी है किन्तु उनका विवरणात्मक वर्णन बहुत अधिक व्यक्तिगत एवं भावना प्रधान है। उनके अनुसार विषाद या वेदना का प्रतिनिधित्व करने वाला काव्य की उत्कृष्ट काव्य हो सकता है। इस अर्थ में वे रीतिकाल के छायावादी कवि माने जा सकते हैं। उनके मत में कवि को हृदयगत विषाद का व्यक्तिगत अनुभव होना चाहिये क्योंकि जब तक वह इस विषाद–मार्ग से नहीं जुड़ता है और गुजरता है तब तक उसकी कविता उत्कृष्ट और उत्तम हो ही नहीं सकती है, इसलिये उन्होंने अपने काव्य में रीतिबद्ध काव्य शास्त्रीय नियमों की अवहेलना करते हुए उक्ति वैचित्र्य अलंकृत भाषा और चमत्कार विधान को कोई महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि –

'समझि समझि बातै बोलिवो न काम आवै।
छवै घन आनन्द न जो लौ नेह बौरई।।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Dehradun

अर्थात् समझ–समझ कर बात करना सिद्ध–दायक कार्य नहीं होता है जब तक कि 'नई बौरई' हृदय पर नहीं छा जाती है। विरह वेदना की अनुभूति को हृदय के साक्षात्कार का विषय बताते हुए कवि ने कहा कि –

'समुझै कविता घन आनन्द की,
हिय आँखिन नेह की पीर तकी।'

3. **भाषा सौष्ठव** – घनानन्द ने अक्षर के महत्त्व का प्रतिपादन करके भाषा सौष्ठव को स्वीकार किया है क्योंकि अक्षर ही हृदय को छलने वाला होता है और उसे तृप्त करने वाला भी अक्षर ही होता है। यद्यपि अक्षर सत्य से परे है तथापि वह अक्षर ही उस सत्य का परिचय कराता है और भावमग्न होकर अक्षर की गति जानने पर तत्त्व बोध हो जाता है–

4.

'उर मौन में मौन को घूंघट कै दुरि बैठी विराजति बात बनी।
मृदु मंजु पदारथु भूषण सौं सुलसै हुलसै रस–रूप–मनी।।
रसना–अलि कान गली मथि कै, पथरावति लै चित सेज ठनी।
घन आनन्द बूझनि अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान घनी।।'

अर्थात् वाणी मौन का घूंघट डालकर हृदय के भवन में दुलहन की भांति बैठी रहती है वह रसना सखी के साथ कान की गली में होकर चित्र रूपी शैय्या पर पहुँचती है। सुजान घनी रिझाने वाले होकर उसे बूझ के अंक में लेते हैं और उसके साथ विहार–विलास करते हैं। इसी प्रकार घनानन्द ने कविता में शब्द के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा है –

सवद सरूप वहै जानत सुजन चहै,
अचिरज यहै औरे होत सुर लाग में।
सूक्षम उसास गुन बुन्यो ताहि नखै कौन,
पौट–पट रंग्यो पैखियत रंग–रांग में।।

अर्थात् शब्द वक्ता के सूक्ष्म श्वास–प्रश्वास रूपी पट में अनुराग रंग में रंगा रहता है। इस प्रकार घनानन्द ने भावानुकूल शब्द–चयन को महत्त्वपूर्ण बताया है। वे सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में विश्वास करते थे। इसलिये उनके काव्य में लाक्षणिकता के साथ अनुभूति का सुन्दर समन्वय मिलता है। वे प्रेम की स्थूलता, सौन्दर्य के नख–शिख वर्णन की माँसलता तथा शिल्प में पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति को कोरा शब्द जाल मानते थे। वे तो ऐसे प्रेम मार्ग के पथिक थे जो स्वान्तः सुखाय काव्य साधना में प्रवृत्त हुए थे और मौन समर्पण को अपना प्रथम कर्त्तव्य मानते थे –

'आँखिन मूदिवो बात दिखावत सोवनि जागनि वातहि पौंखि लै।
बात–सरूप अनूप सरूप है, भूल्यो कहा तू अलेखहिं लेखि लै।।
बात की बात सुबात विचारिबो सूक्षमता सब ठौरि बिसेखि लै।
नैननि–काननि बीच बसै घन आनन्द मौन–बखान सुदेखि लै।।'

इस प्रकार घनानन्द रीतिमुक्त कवि थे और रीतिकालीन काव्य परम्परा के नियमों से मुक्त रह कर स्वच्छन्द काव्यधारा के सच्चे उपासक थे। उन्होंने प्रचलित काव्य प्रणाली की लीक से हटकर स्वच्छन्द धारा का आश्रय लिया और अपने लिये अलग से काव्यादर्शों की स्थापना की।

निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि रीतिकालीन स्वच्छन्द धारा के कवियों में घनानन्द का स्थान सर्वोपरि है। भावानुकूल शब्द चयन, छन्दों का सहज प्रवाह, अनुभूति और अभिव्यक्ति की समुचित अन्विति एवं रसपूर्ण सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं का चित्रण करने में रीति काल में उनका अपना कोई सानी नहीं।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 2 'घनानन्द प्रेम की पीर के कवि थे।' इस कथन की सोदाहरण विवेचना कीजिये।

अथवा

'घनानन्द के काव्य में प्रेम की पीड़ा और रूप की छटा का जो चित्रण हुआ है वह रीतिकालीन काव्य में अनूठा है।' स्पष्ट कीजिये।

अथवा

घनानन्द के काव्य में निरूपित प्रेम और सौन्दर्य की विवेचना सोदाहरण व्यक्त कीजिये।

अथवा

प्रेम व्यंजना के लौकिक एवं अलौकिक आधारों का वर्णन करते हुए घनानन्द के काव्य में वर्णित प्रेम व्यंजना का स्वरूप स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – रीतिकाल के सभी कवियों ने अपने काव्य को श्रृंगार एवं प्रेम के रंगों में रंगा है चाहे वे कवि रीतिसिद्ध हों या रीतिबद्ध हों। रीतिबद्ध एवं रीतिसिद्ध कवियों ने श्रृंगार और प्रेम व्यंजना के जो चित्र प्रस्तुत किये हैं उनमें वासना का आधिक्य है, बुद्धिवाद का चमत्कार है और हृदय की अनुभूतियों का सर्वथा अभाव रहा है। उनके द्वारा प्रतिपादित प्रेम केवल स्थूल–मांसल एवं बाह्य सौन्दर्य पर आधारित हैं। आन्तरिक सौन्दर्य एवं हृदयगत अनुभूति का उसमें नितांत अभाव है, किन्तु रीतिकालीन स्वच्छन्द कवियों ने प्रेम के आन्तरिक सौन्दर्य को महत्त्व दिया। इनका प्रेम बौद्धिक प्रेम नहीं है, अपितु हृदय की सच्ची अनुभूति है। रीतिमुक्त सभी कवियों में घनानन्द का स्थान सर्वोपरि माना गया है। घनानन्द एक सच्चे से प्रेमी एवं भावुक कवि थे। उन्होंने अपनी प्रेयसी सुजान से सच्चा प्रेम किया था, किन्तु उनकी सुजान बेवफा निकली, किन्तु वे उसे चाहते हुए भी नहीं भुला पाये इसलिये प्रारम्भ में उनका प्रेम लौकिक था किन्तु वह धीरे–धीरे अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो गया। इसलिये उनके काव्य में प्रेम के पीर की अनुभूति होती है उनके हृदय की अन्तर्दशाओं तथा स्थितियों का मार्मिक चित्रण हुआ है।

घनानन्द प्रेम की पीर के कवि थे। उनका हृदय सदा प्रेम भाव के सुन्दर रंगों में रंगा हुआ था – 'चाह के रंग में भीज्यो हियौ।' वे मन की आँखों से प्रेम का दिव्य रूप देखते थे – 'हिय आँखिन नेह की पीर तकी।' इस प्रकार उनकी प्रेम–पद्धति संयोग, विरह व्यथा मौन समर्पण एवं अनन्यता आदि तत्त्वों से निर्मित थी। घनानन्द की प्रेम पीड़ा को हम निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट कर सकते हैं –

1. प्रेम की सात्विकता – कवि घनानन्द का प्रेम सात्विक प्रेम था, उसमें तनिक भी वासना की गंध नहीं थी, अपितु उसमें सरलता, सात्विकता एवं सहजता की मनमोहक महक व्याप्त थी, उनका प्रेम मात्र कल्पना नहीं था। जब घनानन्द दरबारी कवि थे तो एक सुजान नामक नर्तकी से उनका इश्क हो गया था। उनका प्रेम आम होने लगा तो दरबारी उनसे चिढ़ने लगे। बादशाह मोहम्मद रंगीले ने उनसे एक गाने की पेशकश की। कवि ने एक ऐसा गाना गाया जिसे सुनकर बादशाह आग बबूला हो उठा। उस समय सुजान वहाँ पर उपस्थित थी। राजा ने कवि को निष्कासित हो जाने का आदेश दिया। सुजान ने कवि का साथ नहीं दिया और उनको एकाकी निष्कासन का दुःख भोगना पड़ा। प्रारम्भ में उनका सुजान प्रेम लौकिक था किन्तु बाद में वही प्रेम सुजान (सु + ज्ञान) के रूप में परमेश्वर के श्रीचरणों में अलौकिक हो गया। वे श्रीकृष्ण सुजान के आगमन में प्रतीक्षारत हो गये –

'दीठि की और कहूँ नहीं ठौर।
फिरी दृग रावरे रूप की दोही।।
एक विसास को टेकि गहै लगि।
आस रहै बस प्रान बटोही।।'

घनानन्द का हृदय प्रेम की पीर से व्याप्त है तो उसमें अन्य बातों का समावेश भला कैसे हो सकता है? उनका प्रेमी हृदय सदा आकुल रहता है –

हित–पीर सों पूरित जो हियरा।
फिरि ताहिं कहौ कहाँ लागनि है।।
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ।
जियराहीं सदा दुःख दागनि है।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. एकनिष्ठ प्रेम – अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह घनानन्द ने विविध नायिकाओं के प्रेम–रूप का चित्रण नहीं किया है क्योंकि उनका प्रेम एकनिष्ठ है और वे अपनी प्रियतमा सुजान के ही उपासक थे। घनानन्द के प्रेम का मूलाधार सुजान नामक वेश्या थी जिसके प्रति उन्हें तीव्रानुराग था। उनका यही लौकिक प्रेम उस वेश्या के छल–कपट एवं निष्ठुर व्यवहार के कारण अलौकिक प्रेम (कृष्ण प्रेम) में परिणित हो गया। घनानन्द का प्रेम सात्विक प्रेम है जिसमें प्रेयसी अथवा अपने आराध्य के प्रति अनन्य एकनिष्ठा है –

'मोसो तुम्हें सुनौ जान कृपानिधि,
नेह निबाहिबौ यो छबि पावै।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर सु,
रंकहि ले निज अंक बसावै।।'

घनानन्द का प्रेम सच्चा व निष्कपट प्रेम है जिसके संकेत कई स्थलों पर मिलते हैं यथा –

'घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ
यहां एक ते दूसरों आंक नहीं।'

जिस प्रकार चातक स्वाति नक्षत्र के बादल से एकनिष्ठ रहता है उसी प्रकार कवि घनानन्द के लिये उनका प्रेम अनन्य बना रहता है –

'चन्द चकोर की चाह करै,
घन आनन्द स्वाति पपीहा को धावै।
यों त्रस रौति के एन बसे रवि,
मीन पै दीन है सागर आवै।।

3. उदात्त प्रेम – अन्य कवियों एवं प्रेमियों ने अपने–अपने प्रेम को अपनी बुद्धि के नेत्रों से देखा है किन्तु कवि घनानन्द ने अपने प्रेम को मन की आँखों से देखा है। उनके प्रेम में वासना के लिए तनिक भी स्थान नहीं है, अपितु स्वच्छ मन के स्वच्छ भावों से सराबोर है। उनका प्रेम चाहे संयोगजनित हो या वियोगजनित, इससे उनकी भावना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि उदात्त प्रेम तो जीवन का एक पाथेय होता है –

'कंत रमै उर अन्तर में सुलहैं,
नहिं क्यों सुख रासि निरन्तर।'
अन्तर में वासी पै प्रवासी को सौ अन्तर।
मेरी न सुनम दैया आपनी यौ न कह्यो।।'

घनानद जी का प्रेम बौद्धिक प्रेम नहीं है अपितु उसमे कोरी हृदय की उद्दाम लालसा होती है। सच्चे प्रेम की उत्कंठा का प्राधान्य है। बाह्य आडम्बर लेश मात्र भी नहीं है। उनका प्रेम मार्ग तो अत्यन्त सीधा एवं सरल है जिस पर वहीं चल सकते हैं जो सच्चे एवं निच्छल है और तनिक भी कपट व्यवहार नहीं जानते।

'अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।
तहाँ साँचे चलै तजि आपुनपौ,
झिझकै कपटी जे निसांक नहीं।।'

4. अलौकिक प्रेम की व्यंजना – घनानन्द की जीवनी से यह ज्ञात होता है कि युवावस्था में वे सुजान नर्तकी जो एक वेश्या थी के प्रेम पाश में आबद्ध थे किन्तु परिस्थितियों की कसौटी पर सुजान का प्रेम खरा नहीं उतरा। वे ब्रजभूमि में आकर निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हुए और साधना की विशेष स्थिति में उन्होंने सुजान को अलौकिक रूप में प्रतिस्थापित कर दिया और उसके दिव्य रूप सौन्दर्य का वर्णन किया। घनानन्द ने अपनी प्रेयसी नर्तकी सुजान को श्रीकृष्ण सुजान के रूप में अपना आराध्य बना लिया और उसी के अतीन्द्रिय रूप सौन्दर्य का वर्णन उन्होंने किया। उन्होंने अपने काव्य में जगह–जगह पर 'सुजान' और 'आनन्द घन' आदि शब्दों का प्रयोग किया है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जो उनकी प्रेम पीर की आनन्दमयता एवं सर्वज्ञता को सूचित करते हैं। अंत तक वे उसी के लिये ही तड़पते रहे हैं–

'घन आनन्द जीवन प्रान सुजान,
तिहरियै वातनि लीजिये जू।
नित नीके रह्यो तुम्हें चाउ कहा,
वै असीस हमारियौ लीजिये जू।।'

यद्यपि अलौकिक प्रेम भावना के कारण कवि ने विरह–मिलन की उभयात्मकता की ही तीव्रतम अनुभूति प्रकट की है। इस तरह उन्होंने लौकिक प्रेम की असफलता तथा अलौकिक प्रेम की पूर्ण सफलता की मधुर व्यंजना की है –

संग लगे फिरौ हौ अलगै रहौं,
मोहु पै गैल लगावत क्यों नहीं।
नीरस राचनि ही सरसौं
रस मूरति प्रीति पगावत क्यों नहीं।।'
'जागत सोबत से हौं कहा कहौं,
सोबत मोहि जगावत क्यों नहीं।'

5. प्रेमजनित पीड़ा – घनानन्द प्रेम पीर के गायक कवि थे। जिनका हृदय सागर प्रेम पीर के जल से पूरित था। ये सदैव सुजान के दरस–मिलन के लिये व्याकुल रहते थे। हर पल उसकी प्रेम प्रतिक्षा में राह तकते रहते थे किन्तु उनकी सुजान के इनको दर्शन नहीं हो पाते थे और इनका मन प्रेम विरहाग्नि में झुलसता रहता था। उनकी एक विडम्बना यह भी थी प्रेम विरह वेदना की पराकाष्ठा पर भी उनके प्राण नहीं निकल पाते थे और सदैव मिलन की आस बनी रहती थी –

'कौन की सरन जैये आप त्यौं न काहु पैये,
रूनो रो चितैये जग वैया कित कूकिये।
सोचनि सचैये मति हेरति हिरैये उर,
आँसुनि भिजैये ताप तैये तन सूकिये।
क्यों करि जितैये कैसे कहाँ धौ विरैये मन,
बिना जान प्यारे कब जीवन तै चूकिये।
बनी है कठिन महा मोहि घन आनन्द यौं,
मीचौ मारि गई आसरौ न जित ढूकिये।'

घनानन्द की प्रेम वेदना सहृदय है क्योंकि उनकी प्रिया सुजान उनसे परिचित है तथा उनसे प्रेम भी करती थी फिर भी वह उनसे अनजान है और कवि के प्रेम से बे–खबर है। इस द्वन्द्वात्मक स्थिति से उन्हें जहाँ एक ओर आनन्दानुभूति होती है वहीं दूसरी ओर पीड़ा भी है। अतः उनके हृदय में आशा और निराशा का संचार एक साथ होता है और वे उसे सहन करने का साहस जुटाते हैं –

'घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ, जिहि भाँतिन हौं दुख सूल सहौ।
नहिं आवत औधि न राबरी आस, इतै पर एक सी बाट चहौ।।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोउ बूझे तो उतर कौन कहौ।
जिय नेकु विचारिकै देहु बताय हहा प्रिय दूरि ते पाय गहौं।।'

6. तीव्रतम प्रेमानुभूति –

'हिय मैं जु आरति सु जारति उजारति है,
मारति मरारै जिय ढारबे कहा करौं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रसना पुकारि कै विचारि पचि हारि जाति,
कहैं कैसे अकह उदागे रुंधि कै मरौ।।'

घनानन्द में प्रेमानुभूति की गहराई है। प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं को उन्होंने व्यावहारिक रूप से परखा है जिससे इनका प्रेम आन्तरिक भाव से अभिभूत है, जिसमें आन्तरिक भावों की निर्मलता व्याप्त है। रीतिकालीन अन्य कवियों की भांति इनका प्रेम बहुमुखी न होकर एकनिष्ठ है, जिसमें सूक्ष्मतम भावों की अभिव्यंजना है।

7. पूर्वानुराग युक्त प्रेमानुभूति – कवि घनानन्द का प्रेम उनके जीवन में आई सुजान प्रेयसी की स्मृति को लेकर के व्यक्त हुआ है किन्तु तत्पश्चात् वह मात्र पूर्वानुराग है। जब से घनानन्द ने प्रेमरस की साक्षात् मूर्ति सुजान को देखा है तब से उसके दीवाने बने हुए हैं किन्तु उनका प्रेम वासनायुक्त नहीं है –

'जब से निहारे घन आनन्द प्रिया रे,
तब तै अनोखी आगि लागी रही चाह की।'
'निस–धौंस खरी उर मॉझ अरी,
छवि रंग भरी मुरि चाहन की।
तकि मोरनि ज्यों चख ढोर रहैं,
ढरिगौ हिय ढोरनि वाहनि की।
चट दै कटि पै बढि प्राण गये,
गति सौं मति मैं अवगाहनि की।
घन आनन्द जान लखी जब तै,
जकि लागियै मोहि कराहनि की।'

इस प्रकार सुजान की रूप–छटा के प्रथम दर्शन से ही कवि का प्रेम इतना बढ़ जाता है कि दिन–रात उनको चैन नहीं मिलता है और हृदय उत्तप्त बना रहता है।

8. एकांगी प्रेम (इकतरफी)– घनानन्द का प्रेम लौकिक से अलौकिक होने के कारण एकांगी रहा है; उनका मन सुजान प्रिया से बहुत अधिक प्रेम करता है किन्तु उनकी प्रिया इतनी निष्ठुर है कि उनकी ओर देखती भी नहीं है। दर्शन भी नहीं देती है उनकी प्रेमिका अनासक्त, निर्विकार और निष्ठुर बनी रहती है; जबकि प्रेमी एकनिष्ठ, सरल और आसक्त बना रहता है –

'भये अति निठुर मिटाय पहिचानि डारी,
याही दुःख हमें जक लागी हाय–हाय है।
तुम तो निपट निरदई गई भूलि सुधि,
हमै सूल–सेलनि सो क्यों हूं न भुलाय है।'

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि घनानन्द प्रेम की पीर के कवि थे जिसे जिन्होंने आत्मिक अनुभूति व मार्मिक व्यंजना के साथ प्रस्तुत कर अपने काव्य में विरह व्यथा का सशक्त प्रतिपादन किया है। इस कारण वियोग–व्यथा को घनानन्द के काव्य का प्राण–तत्त्व माना है। उनका प्रेम लौकिक से अलौकिक बना और उसमें आन्तरिक साधनों का निखार आता चला गया। इस प्रकार कवि घनानन्द रीतिकालीन कवियों में बेजोड़ दिखाई देते हैं।

प्रश्न 3 'घनानन्द के काव्य में भाव सौन्दर्य के साथ–साथ अनुभूति सौन्दर्य भी उत्कृष्ट है।' इस कथन की समीक्षा कीजिये।

अथवा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'घनानन्द के काव्य में भावानुभूति तथा सौन्दर्यानुभूति का सुन्दर समन्वयात्मक समावेश हुआ है।' इस कथन की सोदाहरण विवेचना कीजिये।

उत्तर – प्रेमाभिव्यक्ति की दृष्टि से रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द का अपना कोई सानी नहीं है। उनका काव्य उनके प्रेमोद्‌गारों का भण्डार है। उनके प्रेम के संयोग पक्ष में उल्लास की भावना एवं मादकता इतनी अधिक है कि प्रत्येक सहृदय का हृदय आनन्द से आप्लावित हो जाता है। घनानन्द विशेषतः वियोग पक्ष के कवि रहे हैं क्योंकि उनके जीवन में संयोग सुख अत्यन्त अल्पकालीन था। ऐसा लगता है कि विधाता ने उनका सम्पूर्ण जीवन ही वियोग व्यथा को सहन करने के लिये ही बनाया है। उनके विरह वर्णन में भी इतनी टीस और कराह है कि पाषाण हृदय व्यक्ति भी उसे पढ़कर द्रवित हुए बिना नहीं रह पाता है। एक बात और यह कि घनानन्द को एक ऐसा कवि हृदय मिला हुआ है कि अपने वियोग के साथ–साथ उन्होंने बहुत ही सुन्दर कल्पनाओं तथा भावों का मार्मिक वर्णन किया है कि वह सौन्दर्यानुभूति की दृष्टि में बेजोड़ है। उनकी भावानुभूति और सौन्दर्यानुभूति का विवेचन हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं –

कवि घनानन्द और उनकी भावानुभूति

चूंकि घनानन्द मूलतः भावनाओं के कवि थे। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से मानव के अन्तः में सूक्ष्मतम भावों का सहज व सरल ढंग से प्रकाशन किया है। अन्य कवि ऐसी सुन्दर भाव–योजना का सफल चित्रण नहीं कर सकते हैं। इसका मूल कारण सुजान नामक नर्तकी जो कवि की प्रेमिका थी और जिसे वे दिल–औ–जान से चाहते थे, ने बेवफाई की। घनानन्द की प्रेम व्यथा का दर्द भरा सफर यहीं से प्रारम्भ होता है। वे सुजान की संगदिली के आगे अपने प्यार को मजबूर और कमजोर मान बैठे –

'क्यों हँसि हेरि हरयो हियरा,
अरु क्यों हित कै चित चाह बढाई।
काहे को बोले सुधा–सने बैननि,
चैननि मैन–सिसैन चढाई।
सो सुधि मो हिय में घन आनन्द,
सालति क्यों हूँ कढ़े न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीति की पाटी,
इतै पै न जानियै कौन पढाई।।'

घनानन्द के प्रेम में कृत्रिमता एवं आडम्बरों के लिए कोई स्थान नहीं है। वे तो सुजान के अनन्य प्रेमी हैं और सुजान का प्रेम उनकी रग–रग में समाया हुआ है; चाहे सुजान इनसे प्रेम करती है या नहीं इसकी, उन्हें जरा–सी भी परवाह नहीं है

'चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पैं आनन्द घन,
प्रीति–रीति विषम सु रोम रोम रमी है।
मोहि तुम एक तुम्हे मोसो अनेक आहि,
कहा कहूँ चन्दहि चकोरन की कमी है।।'

घनानन्द सुजान की स्मृति में रात–दिन व्याकुल रहते हैं किन्तु इनकी विरहाग्नि को शीतलता प्रदान करने वाली प्यार की बदली बनकर इसके जीवन में बरसती ही नहीं है। कवि मन ही मन सुलगते रहते हैं –

रैन बिना घुटिबौ करै प्रान,
झरै अखियाँ दुखियाँ झरना–सी।
प्रियतम की सुधि मन में कसकै,
सखि ज्यौं पसुरीन में गांसी।
चौचन्द चार चवाइन के चहुँ ओर,
मचै बिरचै करि हाँसी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यों मरियै भरियै कहि क्यों सु,
परौ जनि कोइ सनेह की फाँसी।।'

उनकी प्रेम दीवानी आँखों की तो अत्यन्त दयनीय दशा बन गई है जो देखते ही नहीं बनती हैं –

'जिनको नित नीके निहारति हौ,
तिनको अँखियाँ अब रोबति हैं।
पल–पावड़े पावन चायनि सौं,
असुवान की धारहि धोवति हैं।।'

नेत्रों की करुणो शक्ति एवं तृष्णा के भाव को कवि ने बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है –

'नैन कहैं सुन रे मन, कान दै,
क्यों इतनी गुन मोहि दयो है।
सुन्दर प्यारे सुजान को मन्दिर,
बावरे तू हम ही ते भयौ है।।
लोभी तिन्हें तन को न दिखावत,
ऐसी महा मद छाकि गयो है।
कीजिये जू घन आनन्द आप कै,
पाय धरयो यह न्याय नयौ है।।'

घनानन्द स्वच्छन्द काव्य के श्रेष्ठ सृष्टा हैं इसलिये उन्होंने शास्त्रों के निर्दिष्ट भावों का चित्रण नहीं किया है फिर भी उनकी कविता में आन्तरिक व्यथा, आकुलता, व्याकुलता, वेदना, पीडा, आसक्ति आदि के मनोरम चित्र मिलते हैं। प्रिय को देखे बिना आंखों को कुछ भी दिखाई नहीं देता है उसकी आंखे सदैव खरकती रहती हैं। आँखें बन्द करने पर और भी अधिक बेचैन होने लगती है।इस स्थिति का मनोरम चित्रण –

'आँखि ही ऐरी पै चेरी भई लखि,
फेरी फिरै न सुजान की बेरी।
रूप–छकी तित ही बिखरी,
अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी।
प्रान लै साथ परी पर हाथ,
बिकानी की बानि पै कानि बखेरी।
पायन पारि लई घन आनन्द,
चायनि बावरी प्रीति की बेरी।।'

सौन्दर्यानुभूति – घनानन्द सौन्दर्य के चतुर चितेरे थे। वे अपनी सुजान पर आसक्त थे। उनकी सुजान एक ऐसी सुन्दरी थी कि जो भी कोई उसे देखता था, वह उस पर मोहित हो जाता था। कवि घनानन्द ने अपनी सुजान के अंग–प्रत्यंगों का खुलकर वर्णन किया है किन्तु इनके सौन्दर्य वर्णन में अति सूक्ष्मता है, आसक्ति है, सरसता है और नित्य जीवन्तता है कहीं पर भी यह चित्र वासना के रंग से युक्त नहीं हैं –

'रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो–नयो लागत ज्यों–ज्यों निहारिये।'

उन्होंने सुजान के रूप सौन्दर्य के चित्रण को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा ने इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'सुजान के सौन्दर्य–वर्णन' का प्रत्येक छन्द उसकी नई छवि सामने लाता है और प्रत्येक छवि में एक नवीनता है जो तीन कारणों से आती है –

'एक तो दृष्टि–बिन्दु बदल जाने के कारण, दूसरे शोभा की,
अतिशयता के कारण और तीसरे हृदयगत प्रेमाधिक्य के कारण।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सौन्दर्यानुभूति की विशेषताएँ – घनानन्द ने जो भी कुछ जीवन में देखा है अथवा अनुभव किया है उसका अभिव्यक्तिकरण ही उनका काव्य है। अतः सौन्दर्य का निरूपण भी उनका निजी अनुभव है –

1. सुजान के अंग–प्रत्यंगों का वर्णन कवि ने अत्यन्त मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है जिसमें असीम उल्लास एवं विकसित होती हुई अवस्था है –

'अंग–अंग रंग भरे दल फल रलै,
सौरभ सुरस मधुराई को न अन्त है।'

घनानन्द ने जहाँ पर सुजान के यौवन, रूप, छवि, लावण्य, अंगों की कान्ति आदि का सुन्दर वर्णन किया है वहीं पर सौन्दर्य में मादकता, गत्यात्मकता का समावेश है एवं वह हिलोरें लेता हुआ सा प्रतीत होता है–

'श्याम घटा लिपटी घिर बीच की,
सौंह सुअंग में अंग उजारी।
घूम के पुंज में ज्वाल की माल सी,
वै दृग शीतलता सुख कारी।।'

2. घनानन्द ने कहीं कहीं पर सौन्दर्य के ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं कि वहाँ रूप सौन्दर्य की अतिशयता भी दिखाई देती है किन्तु वहाँ मादकता व मार्मिकता की कोई कमी नहीं आने दी है। प्रेषणीयता एवं नवीनता तो वहां पर भी विद्यमान रही है –

'झलकै अति सुन्दर आनन गौर,
छकै दृग राजति कानि छूवै।
हँसि बोलनि में छवि–फूलन की,
बरखा उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै,
कल कण्ठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै, दुति की,
परिहैं मनो रूप अबै धरि च्वै।।'

3. घनानन्द ने सौन्दर्य का निरूपण शरीर के अंगों को लेकर भी किया है। सुजान के नेत्र, स्तन, कमर, भौंह, चिकना बदन, चमकीले बाल, रस भरे होठ, सुन्दर गर्दन, तलुआ, प्रशस्त भाल आदि का निरूपण अत्यन्त मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उसके अंग मानस हृदय में रस का संचार करने वाले हैं। कवि ने सुजान के दांतों का वर्णन करते हुए लिखा है –

सहज हँसोही छवि फबति रंगीले मुख,
दसननि ज्योति जाल मोती माल–सी करै।'

इसी प्रकार सुजान के रसीले गुलाबी होठों का वर्णन –

'दसन बसन ओली भरिये रहैं गुलाल,
हसनि लसनि त्यौं कपूर सरस्यो करे।।'

नेत्रों का वर्णन भी घनानन्द ने अत्यन्त मोहक ढंग से किया है –

'बडी–बडी आँखियान में अजन रेख,
लजीली चितौन हियौ रस पागै।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

घनानन्द का प्रेम आन्तरिक प्रेम है इसीलिये उनका सौन्दर्य–चित्रण मन पर व्यापक प्रभाव डालता है। सुजान के लावण्य पर कवि इतना आसक्त है कि उसके सिवाय जगत में उसे और कोई मोहित नहीं कर सकता है–

'गति हंस प्रसंसित सौं कब धौं, मुख लै आँखियान में आय हौ जू।
अभिलाषनि पूरित हैं, उफन्यों, मन ते मन मोहन पाय हौ जू।
चित चातक के घन आनन्द हौ, रटना पर रीझनि छाय है जू।।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुजान का रूप, उसका यौवन, उसकी अंग छवि, उसकी कान्ति मानों घनानन्द के काव्य में साकार हो उठी हो। उनका सौन्दर्य वर्णन संश्लिष्ट है, अतिशय है, मादकता है, भावों में प्रेषणीयता का गुण है घनानन्द के अंग–अंग में उठने वाली दीप्ति का मनोहारी चित्रण उनके काव्य में यत्र–तत्र सर्वत्र बिखरा पड़ता है।

कल्पनानुभूति – रचना चाहे कैसी भी हो, यदि वह रचना है या किसी लेखन श्रम को रचना का रूप देना है तो उसमें कल्पनाशक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है अथवा यों कहें कि किसी भी कवि के काव्य में कल्पना एक अति आवश्यक अवयव है। भावुक कवि की कल्पना में तो कल्पना निश्चित रूप से विद्यमान रहती है। घनानन्द एक उच्च कोटि के भावुक कवि थे। उनके काव्य में कल्पना का होना स्वाभाविक था। इसका मतलब यह कतई नहीं है कि घनानन्द कोरे कल्पना के कवि थे। जब भी कोई कवि या सामान्य व्यक्ति वियोग से पीड़ित होकर कुछ सोचता है तो उसके मन रूपी सागर में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ हिलोरें लेने लगती हैं और ऐसा ही कवि घनानन्द के साथ हुआ। इनकी कल्पनानुभूति बहुत मार्मिक बन पड़ी हैं, क्योंकि ये प्रेमानुभूति के कवि रहे हैं। अनुभूति से सम्पृक्त होकर उनकी कल्पना मनोरम बन गई हैं और अपनी कल्पनाओं के सहारे उन्होंने सुन्दर से सुन्दरतम काव्य का सृजन किया –

झलकै अति सुन्दर आनन गौर,
छकै दृग राजति काननि छुवै।
हँस बोलनि में छवि फूलन की,
बरखा उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै,
कल कण्ठ बनी जलजावलि हौ।
अंग–अंग तरंग उठै दुति की,
परिहै मनो रूप अबै धरि च्वै।।'

एक बार गौर वर्णा सुजान ने नीले रंग की साड़ी पहन रखी थी तो कवि के प्रेमी हृदय ने उसके रंग वैषम्य द्वारा झलकते सौन्दर्य की अति सुन्दर कल्पना की है –

श्याम–घटा लिपटी घिर बीजुकी, सोहे अमावस अंक उन्यारो।
घूम के पुंज में ज्वाल के माल–सी, पै दृग शीतलता–सुखकारो।
कै छवि छायौ सिंगार निहारि, सुजान–तिया–तन दीपति प्यारो।
कैसी कवी घन आनन्द चौपनि, सो पहिरे चुनि साबरी सारो।।

कल्पना के सहारे कवि का सौन्दर्य वर्णन अत्यन्त मनोरम माना गया है। एक छन्द में कवि ने प्रेम के आदर्श जैसे – चातक, मीन, पतंग आदि से भी आगे बढ़कर काव्य में जान डाली है।

हीन भये जल–मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक, निरास है कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै, जड़ मीत के पानी परै कि प्रमानै।
या मन की जु दसा घन आनन्द, जीव की जीवन जानि ही जाने।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि की कल्पनानुभूति संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों में मार्मिक है। कल्पना के सहारे कवि ने अनेक सुन्दर काव्यों का सृजन किया है, एक बात यह भी है कि उनकी कल्पना में उच्छृंखलता नहीं है बल्कि संश्लिष्टा, सरलता, सरसता एवं माधुर्य का समावेश है।

4.3 सारांश

कवि घनानन्द के काव्यगत गुणों का समग्र विवेचन करने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि घनानन्द केवल प्रेम अनुभूति अथवा कल्पनानुभूति के कवि ही नहीं थे बल्कि उनमें सौन्दर्यानुभूति का भी समुचित समावेश है। प्रेमानुभूति तो उनके काव्य की प्रमुख आवश्यकता है, किन्तु कल्पना और सौन्दर्य–निरूपण भी पीछे नहीं रहा है। उनके भावों में मार्मिक, संश्लिष्ट और गाम्भीर्य समाहित है।

4.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. घनानन्द प्रेम की पीर के कवि थे, सिद्ध कीजिए।
2. घनानन्द के काव्यों के भाव–सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–5 : देव

संरचना

5.0 कवि परिचय

5.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

5.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

5.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

5.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

5.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

5.3 सारांश

5.4 अभ्यास प्रश्नावली

5.0 कवि परिचय

रीतिकाल के श्रृंगारिक रीतिबद्ध कवियों में देव का नाम विशेष सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है। इनका पूरा नाम देवदत्त था। उन्हें लक्षण ग्रन्थकारों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। देवदत्त का जन्म संवत 1730 में उत्तर प्रदेश के इटावा में एक धनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था और सं. 1846 में इनका देहावसान हो गया। इनका रचनाकाल 1689 ई. से 1733 ई. तक माना जाता है। वे बड़े ही अनुभवी व्यक्तित्व के धनी थे और उन्होंने विभिन्न व्यक्तियों के नाम पर अनेक ग्रन्थों का सृजन किया। उनके प्रमुख ग्रन्थों की संख्या 52 और 72 के बीच में मानी जाती है। मनोनुकुल आश्रयदाता के अभाव में ये विभिन्न राज दरबारों में भटकते रहे जिससे इनका अनुभव परिपक्व हो गया। विशेष बात यह रही कि 16 वर्ष की आयु में इन्होंने 'भाव–विलास' नामक ग्रन्थ की रचना पूर्ण कर ली। यह ग्रन्थ एक सुन्दर रीति ग्रन्थ था। मुगल सम्राट औरंगजेब के पुत्र आजमशाह तृतीय को उन्होंने अपना 'भाव–विलास' तथा 'अष्टयाम' सुनाया था। अन्ततः उन्हें अकबर अली खाँ का आश्रय प्राप्त हुआ। उन्होंने अधिकांशतः रस और नायिका–भेद वर्णन किया है, यद्यपि कुछ ग्रन्थों में कुछ अन्य अंगों का विवेचन भी मिल जाता है। भाव विलास (1689) का सम्बन्ध रस और अलंकारों से है। रस विलास (1726) में विस्तार से नायिकाओं के भेदों व उपभेदों का वर्णन किया है। जाति, देश, अवस्था आदि अनेक आधारों पर उन्होंने स्त्रियों के विभिन्न वर्ग निर्धारित किये हैं। 'भवानी विलास' में देव ने श्रृंगार को रसराज मानते हुए रस विवेचन किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने श्रृंगार के भेदों, भावों, नायिका भेद, पूर्वानुराग आदि विषयों पर विचार भी प्रस्तुत किये। संचारियों का उल्लेख करते समय उन्होंने अपनी कुछ मौलिकताएँ प्रदर्शित की हैं। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शब्द रसायन' में शब्द शक्ति, वृत्ति, गुण, रस और अलंकारों पर प्रकाश डाला गया है।

रस की दृष्टि से तो उनके 'भाव–विलास' और 'भवानी विलास' ग्रन्थ ही मुख्य माने गये हैं। उन्होंने इसका वर्णन अति उत्तम और उच्च कोटि का किया है। विवेचन–पद्धति, काव्य सौन्दर्य, शब्दों के उपयुक्त प्रयोग, विषय–प्रतिपादन–शैली आदि की दृष्टि से देव के ग्रन्थ अति महत्त्वपूर्ण हैं। उनके वर्गीकरण में मौलिकता है। देव ऐसे बिरले कवियों में से एक हैं जिनमें कवित्व के साथ आचार्यत्व के साक्षात दर्शन होते हैं। यद्यपि इन दोनों में भी काव्य–तत्त्व उनकी रचनाओं का प्रमुख अंग हैं। उनकी रचनाओं में अलंकारों की अनुपम छटा और प्रासाद गुण एवं गाम्भीर्य हैं। उन्होंने काव्य की सरसता के साथ–साथ रीतिशास्त्र के ऐसे अनेक अंगों पर विचार किया जिन पर अन्य कवियों ने कभी सोचा भी नहीं। उनकी रचनाओं में मौलिकता, भाषा की साहित्यिकता और शब्द लालित्य का संगम है। अक्षर मैत्री पर वे विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करते रहे। देव रीतिकाल के प्रगल्भ और प्रतिभा सम्पन्न कवि थे।

'घार में धाय धँसी निरधार है जाय फँसी उकसी न अबेरी।
रो अँगराई गिरी गहरी गहि फेरे फिरी नहीं धेरी।।
'देव' कछु अपनो बसु ना रस लालच लाल चितै भई चेरी।
वेगि ही बूड़ि गई पंखियाँ अंखियाँ मधु की मुखियाँ भई मेरी।।
'देव' मैं सोस बसायो सनेह सो माल मृगम्मद बिन्दु के भारव्यो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लै मख्तूल गुहे गहने, रस मूरतिवंत सिंगार के चाख्यो।।
साँवरे लाल को साँबरो रूप में नैननि को कजरा करि राख्यो।

देव ने तुकबन्दी या अनुप्रास के लिये शब्दों में तोड़–मरोड़ नहीं की है। अभीष्ट भाव को पूरी तरह से प्रकट कर पाने का सामर्थ्य उनमें विद्यमान था।

देव आचार्य के रूप में भले ही सफल नहीं हुए हों, परन्तु कवि के रूप में उनको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उनकी सभी रचनाएँ काफी सशक्त रही हैं। ब्रज भाषा के प्रौढ़ और प्रांजल रूप का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त कवि रहे हैं।

देव रसवादी कवि थे उन्होंने रस, अलंकार, शब्द शक्ति और काव्यांगों का जमकर वर्णन किया। उनमें मौलिकता एवं कवित्व शक्ति पर्याप्त थी किन्तु उनका प्रमुख गुण रसात्मक ही रहा। देव के काव्य में कल्पना की सूक्ष्मता और विश्वसनीयता दोनों ही गुण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। देव को हित हरिवंश के बारह शिष्यों में गिना जाता है। ऐसा नहीं था कि उनको आश्रय मिला ही नहीं था, आश्रय कई जगह पर मिला था, किन्तु उनकी यायावर प्रवृत्ति के कारण एक स्थान पर टिक नहीं पाये। उनकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति उनके काव्य को स्वच्छन्दतावादी बनाने में सहायक सिद्ध हुई। इन्हें रससिद्ध कवि का सम्मान प्राप्त हुआ।

देव की प्रमुख कृतियों में भाव विलास, अष्टयाम, भवानी विलास, सुजान विनोद, प्रेमतरंग, राग–रत्नाकर, कुशल विलास, देवचरित, प्रेमचन्द्रिका, जाति विलास, रस विलास, काव्य रसायन या शब्द रसायन, सुख सागर तरंग, वृक्ष विलास, पावस विलास, ब्रह्मदर्शन–पचीसी, तत्त्वदर्शन पचीसी, आत्मदर्शन पचीसी, जगदर्शन–पचीसी, रमानन्द लहरी, प्रेम दीपिका, नख–शिख, प्रेम दर्शन आदि प्रमुख रूप से चर्चित रही हैं।

5.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

जीवन–सार–सुधा

(1)

सूनौ के परम पदु, ऊनौ के अनन्त यदु,
दूनौ कै नदीस–नदु इन्दिरा फुरै परी।
महिमा मुनीसन की, सम्पत्ति दीगीसन की,
ईसन की सिद्धि, ब्रज–बीथी बिथुरै परी।।
भादों की अंधेरी अधराती, मथुरा के पथ,
आई मनोरथ 'देव' देवकी दुरै परी।
पारावार, पूरन, अपार, परब्रह्म रासि,
जसुदा के कोरे एक बारक कुरै परी।।

शब्दार्थ – परम पदु = स्वर्ग, ऊनौ = कम, नदीस = सागर, इन्दिरा = लक्ष्मी, दिगीसन = दिक्पालों, ईसन = देवताओं, ब्रजवीथि = ब्रज की गलियाँ, विथुरै = बिखरी, पाराबार = सागर, पारब्रह्म शक्ति = परम ब्रह्म स्वरूप, कोरे = गोद, कुरै परी = चमत्कृत कर दिया।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'देव' नामक पाठ से अवतरित है। जिसमें कवि ने अपनी भक्ति–भावना का परिचय देते हुए श्री कृष्ण के जन्म के समय घटित अलौकिक विशेषताओं का तथा मथुरा नगरी के सौभाग्य का सुन्दर वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि देव कहते हैं कि कृष्ण जन्म के अवसर पर ऐसा वातावरण मथुरा नगरी का बन गया था मानों स्वर्ग से स्वयं लक्ष्मी और वहाँ का सम्पूर्ण वैभव सिमट कर ब्रज में बिखर गया हो। सर्वत्र अतीव आनन्द की अनुभूति होने लगी। ऐसा लग रहा था मानों साक्षात् लक्ष्मी जी भगवान श्री हरिविष्णु के बैकुण्ठ को सूना कर के तथा शेषनाग के अहंकार को दमन कर तथा समुद्र के तूफान को दुगना करके ब्रज भूमि में अवतरित हो गई हों। ऋषि–मुनियों की महिमा, दिक्पालों की सम्पत्ति तथा देवताओं की सभी सिद्धियाँ उस समय ब्रज की गलियों में बिखर गई थी। अर्थात्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जिस परम परमेश्वर की महिमा का सदैव देवता एवं श्रेष्ठ मनुष्य गुणगान करते हैं, जो प्रभु सम्पूर्ण सिद्धियों के स्वामी हैं उनके ब्रज मे अवतार लेने पर सारा वातावरण पूर्णतः वैभवयुक्त हो गया था। भाद्रमास मे अष्टम तिथि की अर्द्ध रात्रि मे मथुरा नगर की भूमिपर वह दिव्य ज्योति अवतरित हुई, जिसमें वसुदेव और देवकी के सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। सागर के समान जिनकी शक्ति निस्सीम है, जो परम ब्रह्मस्वरूप हैं तथा सब प्रकार के गुणों से युक्त एवं परिपूर्ण है वे भगवान् श्रीहरि विष्णु के अवतार श्री कृष्ण ने देवकी की कोख से जन्म लिया तथा माता यशोदा की गोद में खेलकर अपनी लीलाओं से सभी को चमत्कृत करने लगे।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में देव ने कृष्ण के अवतार रूप में जन्मे भगवान का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है।
2. अवतरण में अनुप्रास, यमक और यथासंख्य अलंकार का सुन्दर उपयोग किया है।
3. कवित्त छन्द की गति–यति एवं पद मैत्री प्रशंस्य है।

(2)

तेरो कह्यो करि–करि जीव रह्यो जरि–जरि,
हारी पाँय परि–परि तऊ तै न की संभार।
ललन विलोकि 'देव' पल न लगाये तब,
यों कल न दीनी तैं छलल उछलन हार।।
ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधिं हौ बँधाई,
आपु बिधि बूड्यो माँझ बाधा सिंधु निरधार।
एरे मन मेरे तै घनेरे दुःख दीने पल,
एकै बार देकै तोहि मूंदि मारौ एकै बार।।

शब्दार्थ – सँभार = सँभालना, पल न लगाये = पलकों में बिठाया, ललन = प्रियतम, निरमोही = स्नेहशून्य, निरधार = व्यर्थ ही, घनेरे = अत्यधिक, मूँदि मारो = आँखें मूंदकर निश्चिन्त हो जाऊँ।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'देव' नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि देव ने एक विरह विदग्धा नायिका की मनोदशा का चित्रण किया है और बताया है कि वह नायिका जहाँ एक ओर अपने प्रियतम के विरह में परेशान हैं वहीं दूसरी ओर उसका मन भी उसे परेशान करने में पीछे नहीं है वह उसे बार–बार समझाती हैं किन्तु वह मानता ही नहीं है।

व्याख्या – एक विरह विदग्धा नायिका अपने मन को अनेक उपालम्भ देते हुए कहती हैं कि हे मन! मैंने आज तक हमेशा तेरा कहा माना है और इसका परिणाम यह हुआ कि मेरा हृदय विरहाग्नि में निरन्तर जल रहा है। मैंने अपने प्रियतम के पैर पकड़कर अनेक अनुनय विनय की और हार गई। मैंने अपने आप को पूरी तरह उनके आगे समर्पित कर दिया है, किन्तु वे निर्मोही मेरी जरा सी भी परवाह नहीं करते हैं और मेरी सुधि नहीं लेते हैं। मुझे उनके बिना एक पल के लिये भे चैन नहीं मिलता है। कवि देव कहते हैं कि (नयिका के शब्दों में) हे मन! तूने तो सदैव ही मेरी आँखों में आँसू बहाये हैं, उस समय तूने प्रियतम को पलकों पर बिठाकर मेरा बहुत अहित किया है। मुझे क्या पता था कि मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण इतने निष्ठुर और निर्मोही होंगे अन्यथा मैं उनसे प्रेम करके उस तरह स्वयं को कभी भी प्रेम बन्धन में बंधने नहीं देती। अब तो मेरा हृदय उनके प्रेम सागर में सराबोर हो चुका है अब यह अलग नहीं हो सकता है। अब तो श्रीकृष्ण को अपने प्रेम बन्धन में बांधना ऐसा लगता है मानों किसी सागर को बाँधा जा रहा हो अर्थात् जिस प्रकार सागर को बाँधने का प्रयास निष्फल रहता है वैसे ही श्रीकृष्ण को अपने साथ बाँधने का प्रयास असफल है। हे मन! तूने आज तक मुझे बहुत दुःख दिये हैं किन्तु अब मैं तेरी बातों में कभी भी नहीं आने वाली। बस एक बार मैं तुझे उन प्रियतम कृष्ण को समर्पित करके तेरी चंचलता को हमेशा–हमेशा के लिये समाप्त कर देना चाहती हूं और स्वयं आंख बन्दकर निश्चिन्त हो जाना चाहती हूँ अर्थात् मन की आसक्ति से छुटकारा पा लेना चाहती हूँ।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में नायिका की विरह–व्यथा एवं विवशता का आत्म कथात्मक चित्रण अत्यन्त मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. कृष्ण के रूपासक्त मन को अनेक उपालम्भ दिये हैं।
3. प्रस्तुत अंश में अनुप्रास, वीप्सा, काव्यलिंग, आक्षेप व रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है।
4. कवित्त छन्द की पद मैत्री उत्तम है।

(3)

कुल की सी करनी कुलीन की सी कोमलता,
सील की सी सम्पत्ति सुशील की सी कामिनी।
दान को सो आदरु उदारताई सूर की सी,
गुनी की लुनाई गुनमंती गजगामिनी।।
ग्रीषम को सलिल, सिसिर को सो घाम 'देव',
हेउन्त हँसती जल दागम की दामिनी।
पूज्यों को सो चाँद, परभात को सो सूरज,
सरद को सो वासरु वसन्त की सी जामिनी।।

शब्दार्थ – कुलीन = उच्च कुल से उत्पन्न, शील = सदाचरण, कामिनी = सुन्दरी, सूर = वीर या पराक्रमी, हेउन्त = बसंत ऋतु, हसंती = अंगीठी, पूज्यों = पूर्णिमा, सरद = शरद ऋतु, जामिनी = रात्रि।

व्याख्या – कवि 'देव' नायिका के अनिवार्य गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि एक नायिका में अपने उच्च कुल के अनुरूप आचरण करने की प्रवृत्ति होनी चाहिये और कुलीनता के अनुरूप स्वभाव में कोमलता होनी चाहिये। उसके शील में सम्पत्ति की अनुरूपता और सौन्दर्य में सुशीलता का योग होना चाहिये। दान भाव के साथ आदर भाव अपेक्षित है उसी प्रकार एक सुन्दरी में सद्गुणों के अनुरूप कोमलता भी होनी चाहिये। जिस प्रकार वीरता के लिये उदारता का गुण अनिवार्य होता है उसी प्रकार सुन्दर नायिका में आन्तरिक सौन्दर्य भी होना चाहिये। कवि कहते हैं कि जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में पानी तथा शिशिर ऋतु में सूर्य की धूप, हेमन्त ऋतु में अंगीठी और वर्षा ऋतु में बिजली का अनुरूप सहयोग माना जाता है अर्थात् उसी के अनुरूप ही उपयोगिता होती है। जिस प्रकार पूर्णिमा का चन्द्रमा और प्रातःकालीन भास्कर अपनी आभा बिखराते हैं और जिस प्रकार शरद ऋतु में दिन व बसन्त ऋतु में रातें अच्छी लगती हैं, उसी प्रकार गुणों एवं सौन्दर्य वाली नायिका आकर्षक लगती है अर्थात् अवस्था एवं रूप के अनुसार गुण भी नायिका में होने चाहिये।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में देव ने विभिन्न उपमानों के माध्यम से नारी के रूप–गुण की अनुरूपता को ही उपयोगी बताया है।
2. कवि की अनुभूति का स्वर प्रस्फुटित हुआ है।
3. अंश में उपमा, अनुप्रास और उदाहरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
4. कवित्त छन्द की यति–गति एवं नाद–सौन्दर्य ध्वन्यात्मक दृष्टि से प्रशंसनीय है।

(4)

कथा में न कंथा मैं न तीरथ के पंथा मैं न,
पोथी मैं न पाथ में न साथ की बसीति मैं।
जटा मैं न मुण्डन मैं न, तिलक त्रिपुण्डन मैं न,
नदी कूप कुंडन अन्हात दान रीति मैं।।
पीठ–पाठ–मंडल न, कुण्डल कमण्डल न,
माला दण्ड मैं न, 'देव' देहरे की भीति मैं,
आपु ही अपार पाराबार प्रभु पूरि रह्यो,
पाइये प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं।।

शब्दार्थ – कथा = फटा पुराना वस्त्र, पंथा = मार्ग, कुण्डन = कुण्डो या सरोबरो, अन्हात = स्नान करना, देहुरे = देवालय या मन्दिर, भीति = दीवार, पाराबार = सागर, परमेसुर = परमेश्वर या भगवान।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'देव' नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने ईश्वर के सम्बन्ध में प्रचलित विचारधाराओं के भेद–भाव को दूर करते हुए ईश्वर के प्रति सच्ची आस्था एवं श्रद्धाभाव को अधिक महत्त्व दिया है तथा बाह्य आडम्बरों की खण्डना की गई है।

व्याख्या – कवि 'देव' ईश्वर के नाम पर किये जाने वाले बाहरी आडम्बरों की खण्डना करते हुए कहते हैं कि ईश्वर न तो पौराणिक कथाओं के सुनने व सुनाने में हैं और न वह फटे–पुराने वस्त्रों अथवा गुदड़ियों में रहता है। उसे तीर्थ स्थलों के मार्ग में भी नहीं पाया जा सकता है और न ही धार्मिक ग्रन्थों में उसका निवास है। वह न किसी मत–मतान्तर में है और न किसी साधु–संत के आश्रम में है। उसे जटाओं में भी नहीं पाया जा सकता है और मुण्डन करने से ही तथा न तिलक छापा लगाने से उसे प्राप्त किया जा सकता है। पवित्र समझी जाने वाली नदियों, तालाबों, कुण्डों आदि में स्नान करने से भी वह नहीं मिल सकता है। अलग–अलग धर्मों के उच्च पद प्राप्त करने पर या मठों में, मन्दिरों अथवा अन्य धार्मिक स्थलों पर दीक्षा लेने से भी ईश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। वह ईश्वर न योगियों की भाँति कुण्डल पहनने से और माला या दण्ड धारण करने से मिल सकता है। अर्थात् धर्म या ईश्वर प्राप्त करने के नाम पर किये जाने वाले बाह्य–आडम्बरों या क्रियाकलापों या वेश–भूषाओं के धारण करने से उस परमपिता परमेश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। वह ईश्वर मन्दिरों की चहार दीवारों में कैद नहीं है अपितु सर्वव्यापी है वह इस संसार में सर्वत्र विद्यमान है किन्तु संसार का हर प्राणी उसे नहीं देख पाता है। 'देव' कहते हैं कि उसको तो सच्ची श्रद्धा व सच्चे प्रेम के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और निष्ठा व विश्वास रखने पर उसके दर्शन अवश्य ही हो सकते हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में देव ने स्पष्ट किया है कि ईश्वर के साक्षात्कार के लिये प्रचलित मत–मतान्तरों व बाहरी आडम्बरों की आवश्यकता नहीं है।
2. ईश्वर की सत्ता सर्व व्याप्त है। उसे सच्ची प्रेमासक्ति व श्रद्धा के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।
3. प्रस्तुत अवतरण में अनुप्रास, पुररुक्ति प्रकाश, यथासंख्य और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया है।
4. कवित्त छन्द की उचित गति व यति समाविष्ट है।

(5)

जिन जान्यो वेद ते तौ वादि कै विदित होहु,
जिन जान्यो लोक तेऊ लोक पै लरि मरौं।
जिन जान्यो तप, तीनो ताप नित्ते तपि तपि,
पंचागिनि साधि ते समाधिन धरि मरौं।।
जिन जान्यो जोग तेऊ जोगी जुग जुग जियौ,
जिनि जानी जोति तेऊ जोति लै जरि मरौं।।
हौ तो 'देव' नन्द के कुंवर तेरी चेरी भई,
मेरौ उपहास क्यों न कोटिन करिं मरौं।।

शब्दार्थ – बादि = मतवाद (बहसकरके), लीक पै = लोकाचार पर, समाधिन = समाधि को, जोति = परम तत्त्व का ज्ञान, चेरी = दासी, कोटिन = करोड़ों, उपहास = मजाक या उपेक्षा।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'देव' नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि देव ने स्पष्ट किया है कि एक गोपी श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व मानकर लोगों द्वारा किये जा रहे उपहास को सहन करने की अपूर्व क्षमता प्रकट करती है।

व्याख्या – प्रस्तुत अवतरण में कविवर देव के अनुसार एक नायिका कहती है कि जो व्यक्ति वेदों के ज्ञानी होते हैं वे मतों एवं सिद्धान्तों के भी ज्ञाता होते हैं तथा ईश्वरीय भक्ति या प्रेम के सम्बन्ध में तरह–तरह के विचार व्यक्त करते हैं और जो लोक व्यवहार के ज्ञाता हैं वे लोकाचार का पालन करने में अपने आप को समर्पित कर देते हैं और वाद–विवादों में लड़ मरते हैं। जो व्यक्ति तपश्चरण करते है वे प्रतिदिन तीनों प्रकार के सांसारिक तपों में तप–तप कर पंचाग्नि साध लेते हैं तथा समाधिस्थ होकर मर जाते हैं और उसी में वे अपना जीवन सफल मानते हैं। जो लोग योग साधना को जानते हैं वे योग बनकर अनेक युगों तक जीवित रहते हैं और जो परम तत्त्व की ज्योति का साक्षात्कार कर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लेते हैं वे उसी ज्योति पुंज को अपना सहारा मानकर अपनी ईहलीला समाप्त कर लेते हैं। कविवर देव के अनुसार वह नायिका कहती है कि हे नन्द के कुवर कन्हैया! मै तो अब इन सम्पूर्ण सासारिक विवादो से दूर रह कर तुम्हारी सेविका बन गई हूँ। अब ये संसार के लोग भले ही मेरा करोड़ों बार उपहास करें किन्तु मैं तो अब सदैव तुम्हारी दासी ही रहूँगी।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में नायिका की एकनिष्ठ प्रेमासक्ति को स्पष्ट किया है।
2. ईश्वर भक्ति के अनेक साधन व मार्ग हैं किन्तु दास्य भाव की भक्ति या प्रेम भक्ति सर्वश्रेष्ठ है।
3. अवतरण में अनुप्रास, यमक, पुनरुक्ति प्रकाश व परिसंख्या अलंकार का प्रयोग किया गया है।
4. भावाभिव्यक्ति सशक्त है।
5. कवित्त छन्द की ध्वन्यात्मकता व यति–गति प्रशंसनीय है।

(6)

ऐसी जो हौं जानती कि जै हैं तू विषै के संग,
एरे मन! मेरे हाथ पाँव तेरे तोखो।
आजु लौं हौं कत नर–नाहर की नाहीं सुनि,
नेह सों निहारि हारि वदन निहोरतो।।
चल न देतों 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चिता बनीन मारि मुंह मोरतो।
मारो प्रेम–पाथर नगारौ दै गरै सो बांधि,
राधावर–बिरद के बारिधि मैं बोरतो।।

शब्दार्थ – विषय = काम वासना, कत = कितने, नर–नाहन = राजाओं, निहोरतौ = देखता रहता, अचल = स्थिर, चितावनीन = चेतावनियों, नगारो = नगाड़ा, बारिधि = सागर।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक –'रीति–रस तरंगिणी' के 'देव' नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि देव ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति एवं आशा को प्रकट किया है। वे अपने मन को सांसारिक विषय वासना से दूर रखने के लिये सभी प्रयास करते हैं और सोचते हैं।

व्याख्या – कविवर देव अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मन! यदि मुझे ऐसा पूर्व ज्ञात होता कि तू सांसारिक विषय वासनाओं के पीछे दौड़ेगा तो मैं अपने ही हाथों से तेरे हाथ–पाँव तोड़ दूंगा जिससे तू दौड़ना तो दूर बल्कि चलने–फिरने के लायक भी नहीं रहेगा।। तेरी इन विषय–वासनाओं के कारण मुझे आज तक न जाने कितने राजाओं के सामने गिड़गिड़ाना पड़ा और फिर भी उनका इनकार सुनना पड़ा। मैं तेरे कारण ही तो प्रेम से उनके मुख तकता रहा और अनेक प्रकार से अनुनय–विनय करता रहा। कवि कहते हैं कि हे मन! यदि मुझे पूर्वाभास होता तो मैं तुझे इस प्रकार चंचल न होने देता। तुझे अचल या स्थिर बना लेता तथा चेतावनी रूपी चाबुक मार–मार कर जड़–निश्चेष्ट कर देता और तेरी प्रवृत्ति को सांसारिकता से मोड़कर ईश्वर की तरफ गतिमान बना देता। मैं डंके अथवा नगाड़े की चोट पर तेरे गले में श्री कृष्ण के प्रेम रूपी भारी पत्थर को बांध देता और तुझे राधा के प्रियतम प्रभु श्रीकृष्ण के यश रूपी सागर में डुबो देता अर्थात् मैं तुझे ईश्वर की प्रेम निष्ठा में निमग्न कर देता।

विशेष

1. कविवर देव ने आत्म परिष्कार के लिये मन की कमजोरियों का उल्लेख किया है।
2. वासनाओं से युक्त मन को सद्मार्ग पर लाने का प्रयास दर्शाया है।
3. अवतरण में अनुप्रास, रूपक और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर उपयोग किया है।
4. अवतरण में कवित्त छन्द है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(7)

झहरि–झहरि झीनी बूंद है परति मानौं,
घहरि–घहरि घटा घेरि है गगन में।
आनि कह्यो स्याम मो सौं चलो झूलबे को आज,
फूली न समानी भई ऐसी हौं मगन में।।
चाहत उठाई उठि गई सो निंगोडी नींद,
सोय गये भाग मेरे जागि वा जगन में।
आँखि खोलि देखौं तो न धन हैं, न घनस्याम,
वेई छाई बूँदें, मेरे आँसु ह्वै दृगन में।।

शब्दार्थ – झीनी = पतली, घटा = बादलों का पुंज (घटा), मगन = प्रसन्न, निगोडी = निर्दयी, दृगन = आँखों में, घन = बादल, घनस्याम = कृष्ण।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी के 'देव' पाठ से अवतरित है जिसमें छवि ने एक विरहिणी के 'देव' पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने एक विरहिणी नायिका की विवशता का वर्णन किया है। नायिका के स्वप्न में प्रियतम का संयोग प्राप्त होता है किन्तु चेतन अवस्था में उसे वियोग–व्यथा भोगनी पड़ती है।

व्याख्या – प्रस्तुत अवतरण में देव के अनुसार एक विरह–विदग्धा नायिका अपनी सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे सखी! आज रात्रि में मुझे एक सुखद स्वप्न देखा, उसमें मैंने देखा कि छोटी–छोटी बूंदें हौले–हौले गिर रही हैं और सम्पूर्ण गगन मण्डल घनघोर घटाओं से घिरा हुआ है और उसमें दामिनी दमक रही है और बादल बार–बार गर्जना कर रहे हैं। ऐसे मनभावन रोमहर्षक मौसम में प्रियतम श्याम ने मेरे पास आकर मुझसे कहा 'आओ प्रिय! हम और तुम मिलकर झूला–झूलने चलें।' प्रिय मनमोहन का यह प्रेम प्रस्ताव सुनकर मैं खुशी से झूमने लगी और उस प्रेमातिरेक से फूली न समाई। इस प्रस्ताव को मैंने मन से स्वीकार किया और जब मैं उनके साथ चलने के लिये तैयार हुई तो अचानक मेरी निर्दयी नींद उड़ गई और मैं जाग गई। उस समय ऐसा लगा कि मेरे जागने से मेरे जागे हुएभाग्य मानों सो गये हों और जब मैंने इधर–उधर देखा तो न आकाश में बादल थे और न मेरे पास मेरे प्रियतम घनश्याम ही थे। ऐसा लगा कि स्वप्न पलों में गिरने वाली नन्हीं बूंदें मेरी आँखों में आँसू बनकर समा गई हों अर्थात् जागने पर प्रिय वियोग से मेरी आँखें बरसने लगी।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में विरहिणी नायिका के विरह प्रमाद व चिन्ता का मार्मिक चित्रण किया गया है।
2. स्वप्नानुभूति से नायिका ने अपने विरह–प्रमाद को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है।
3. स्वप्नगत संयोग और चेतनगत वियोग का संयोग चमत्कारपूर्ण बन गया।
4. 'नींद के लिए 'निगोड़ी' विशेषण बड़ा ही सार्थक बन पड़ा है।

(8)

जब ते कुंवर–कान्ह रावरी कला–निधान,
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी।
तब ही तै 'देव' देखो देवता सी हंसति सी,
खीजति सी, रिझाति सी रुसति रिसानो सी।।
सोही सी छली सी छिनी लीन्ही सी छकेसी छीन,
जकी सी चकी सी लागी थकी थहरानी सी।
बींधीसी, बंधी सी, विष बूडी सी विमोहित सी,
बैठी वह बकत विलोकत विकानी सी।।

शब्दार्थ – रावरी = आपकी, कलानिधान = सोलह कलाओं से युक्त, रूसनि सी = मान करके रूठ जाती, रिसानी = क्रोध से युक्त, छोही = क्षुमित, चकी–सी = आश्चर्यचकित, बूडी = डूबी हुई, विकानी = बिकी हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कविवर 'देव' एक ऐसी नायिका की मनःस्थिति का चित्रण करते हैं जो श्री कृष्ण के रूप माधुर्य का श्रवण करने पर मंत्रमुग्ध हो जाती हैं और कृष्ण पर आसक्त हो जाती है। कवि कहते हैं कि हे रूप निधान प्रभु कृष्ण! जब से आपकी सम्पूर्ण कलाओं से युक्त सुयश गाथा को उस नायिका ने श्रवण किया है तब से उसकी विचित्र स्थिति बन गई हैं। वह हमेशा देवताओं की भाँति पवित्र हँसी हँसती रहती है। वह नायिका कभी हँसती है और कभी क्रोध करने लगती है, कभी खीजती हैं तो कभी अनुरक्त हो जाती है और कभी नाराज हो कर मानकर बैठती है और कभी आवेश में आकर रूष्ट हो जाती हैं। वह कभी क्षुब्ध सी दिखती है तो कभी छली गई सी और कभी सुध–बुध भूली हुई अर्थात् पागल सी और कभी प्रेमानन्द के रस में निमग्न सी दिखाई देती है। वह कभी तो ठगी सी, कभी आश्चर्यचकित सी और कभी थककर श्रान्त हुई–सी दिखाई देती है। कभी काम बाणों से बिधी हुई–सी, कभी प्रेम बन्धन में बँधी हुई–सी और कभी विरह–व्यथा रूपी जहर में डूबी हुई–सी और कभी विमोहित–सी दिखाई देती है। वह कभी कुछ बोलती है कभी कुछ सुनती है। यों कहें कि अब तो वह आपके हाथों बिकी हुई–सी मंत्रमुग्ध बैठी रहती है अर्थात् वह सदैव आपका ही चिन्तन करती हुई प्रतीत होती है वह पूर्ण रूप से आपके प्रेम रंग में रंगी हुई प्रतीत होती है।

विशेष

1. कविवर देव ने प्रेम मुग्धा नायिका की मनोदशा तथा अनुभावों का स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया है।
2. भावानुभूति की तीव्रता एवं विरह व्यथा की मार्मिकता व्यंजित हुई हैं।
3. अनुप्रास, रूपक और यमक अलंकार का सुन्दर समायोजन चमत्कार उत्पन्न करने वाला है।

(9)

बरुनी बघम्बर में गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते वसन भगोहैं भेष राखियाँ।
बूडी जल ही में दिन जामिनी हूँ जागे भौहें,
घूम सिर छायौ विरहानल विलखियाँ।।
अँसुवा फटिक–माल डोरे सेली पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेली संग रखियाँ।
दीजिये दरस 'देव' कीजिये संयोगिनी ये,
जोगिनी लै बैठी हैं वियोगिनी की अखियाँ।।

शब्दार्थ – बघम्बर = बाघ के चर्म का वस्त्र, बरुनी = बरौनियां, राते = लाल, कोये = नेत्रों के कोने, भगोहे = भगवा रंग, जामिनी = रात, अँसुवा = आँसू, सेली = रेशमी चादर या माला, जोगिनी = योगिनी, चेली संग = शिष्याओं के साथ।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी के 'देव' नामक पाठ से लिया गया है जो देव द्वारा विरचित 'प्रेम–वर्णन' प्रसंग से सम्बन्धित है। कवि ने एक ऐसी नायिका का वर्णन किया है जिसके नेत्र योगिनी की तरह हैं और अपने प्रियतम के मिलन की प्रबल आशा रखती है।

व्याख्या – कविवर 'देव' वियोगिनी नायिका के विरहग्रस्त नेत्रों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उसके रतनारे नेत्र जोगिनी की तरह लगते हैं। उसकी बरौनियाँ बाघम्बर जैसी लगती हैं और दोनों पलकें गुदड़ी जैसे लगते हैं। उसक आंखों के लाल–लाल कोने भगवा वस्त्र के समान हैं ऐसा लगता है मानों उन्होंने भगवा वस्त्र धारण कर लिये हों और जैसे योगिनी जाग–जाग कर साधना करती है ठीक उसी प्रकार वियोगिनी नायिका के नेत्र भी दिन–रात अश्रु जल में निमग्न रहते हैं और साधना में लीन रहते हैं। उसकी भौहें धुँआ से युक्त लगते हैं क्योंकि वे विरहाग्नि में जल रही हैं। उसके नेत्रों से अविरल प्रवाहित होने वाले आँसूं मणियों की माला के समान प्रतीत होते हैं। रतनारी आँखों के लाल–लाल डोरे योगिनी की रेशमी चादर या माला के समान लगते हैं जिस प्रकार योगिनियां अपने आप में एकान्तवासी होती हैं वैसे ही नायिका की आँखें भी अपनी सखियों से दूर रहकर एकान्तवास पसन्द करती हैं। कवि वर देव प्रभु श्री कृष्ण से निवेदन करते हुए कहते हैं कि हे श्री कृष्ण! आप इस वियोगिनी को दर्शन देकर उसकी योगिनी आँखों को संयोगिनी का रूप प्रदान कीजिये, उसे प्रेम दरश देकर नेत्र–तृप्ति से कृतार्थ कीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि देव ने गोपिका की आँखों पर योगिनी के कार्य–कलापों को आरोपित किया है।
2. वियोग श्रृंगार की सशक्त व्यंजना की गई हैं।
3. कवि कल्पना का चमत्कार प्रशसंनीय हैं।
4. माधुर्य एवं प्रसाद–गुण परिलक्षित होता है।
5. अनुप्रास उपमा तथा संग रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(10)

देव सवै सुख दायक सम्पत्ति,
सम्पति कौ सुख दम्पति जोरी।
दम्पति दीपित प्रेम प्रतीति,
प्रतीति की रीति सनेह निचोरी।
प्रीति तहां गुन रीति विचारि,
विचारि की बानी सुधा रस बोरी।
बानी को सार बखान्यो सिंगार,
सिंगार को सार किसोर किसोरी।।

शब्दार्थ – जोरी = जोड़ी, दम्पति = पति–पत्नी, दीपति = आलोकित, प्रतीति = विश्वास, सुधारस = अमृतरस, बोरी = सिंचित या डूबी हुई, सिंगार = श्रृंगार विलास।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'देव' पाठ से लिया गया है जिसमें कवि ने सम्पति, प्रेम, गुण, मधुरवाणी और यौवन आदि जीवन की सभी सुखमय स्थितियों का श्रृंगारिक शैली में वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि देव कहते है कि संसार में सम्पत्ति सभी प्रकार के सुख प्रदान करने वाली होती है और संसार के सम्पूर्ण सुख सम्पत्ति के द्वारा सुलभ हैं किन्तु सम्पत्ति का लाभ्य सुख तभी है जब दाम्पत्य जीवन अच्छा हो। दाम्पत्य सुख तभी अच्छा हो सकता है जब वह प्रेमपूरित हो, प्रेमपूरित विश्वास हो और उस प्रेम का भाव भी विश्वास को निचोड़ कर अपनाया गया हो अर्थात् प्रेम का सार रूप में ग्रहण होने पर ही वह विश्वास सुखदायी होता है वहाँ परस्पर गुणों का विचार होता रहे और उस विचार विनिमय में ऐसी वाणी हो जो अमृत के समान मधुर व प्रिय हो। उस अमृत रस से सिक्त वाणी का सार ही श्रृंगार–विलास माना गया है। श्रृंगार–विलास का सार प्रेमी और प्रेमिका या किशोर दम्पत्ति हैं। अर्थात् नव–यौवन नायक–नायिका का श्रृंगार–विलास अत्यन्त आकर्षक और सुखकारी लगता है जिनके जीवन में उपर्युक्त सभी सार तत्त्व उपलब्ध हों।

विशेष

1. कवि ने नव यौवन युक्त नायक–नायिका के श्रृंगार–विलास को सर्वोत्कृष्ट बताया है।
2. कवि ने सुखदायी और आनन्दानुभूति के क्षणों व तत्त्वों का अभेदात्मक चित्रण किया है।
3. अवतरण में अनुप्रास, यमक, उपमा एवं कारण माला अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।
4. सवैया छन्द है।

5.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

5.2.1 अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 कवि देव किस प्रकार के कवि थे?
उत्तर – देव भाव विलास के कवि माने गये हैं।

प्रश्न 2 'बानी को सार बखान्यो सिंगार, सिंगार को सार किसोर–किसोरी।' प्रस्तुत पंक्तियों में कवि का क्या मन्तव्य हैं?
उत्तर – पति–पत्नी के विचार विनिमय में मधुर वाणी का प्रयोग हो, अमृत–रस से सिक्त वाणी का सार श्रृंगार–विलास माना गया है और श्रृंगार विलास का सार नव यौवन नायक और नायिका हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 3 रीतिकालीन कवियों में रस विलास का कवि किसे माना गया है?
उत्तर – रीतिकालीन कवियों मे 'देव' को रस विलास का कवि माना गया है।

प्रश्न 4 महाकवि देव का पूरा नाम बताइये।
उत्तर – महाकवि देव का पूरा नाम पं. देवदत्त था।

प्रश्न 5 महाकवि पं. देवदत्त का जन्म कब और कहाँ हुआ?
उत्तर – 'देव' का जन्म वि.सं. 1730 उत्तर प्रदेश के इटावा में हुआ था।

प्रश्न 6 कविवर देव के गुरु कौन थे?
उत्तर – 'देव' के गुरु पण्डित हरिवंश थे जो बन्दावन के थे।

प्रश्न 7 देव की कुल कितनी रचनाओं का उल्लेख मिला है?
उत्तर – देव की रचनाओं की संख्या 52 से 72 तक मानी गई हैं।

प्रश्न 8 देव द्वारा विरचित वे कौन से प्रमुख ग्रन्थ हैं जिनके द्वारा उनका आचार्यत्व सिद्ध होता है?
उत्तर – भाव विलास, शब्द रसायन, भवानी–विलास, रस–विलास, सुख सागर, कुशल विलास आदि ग्रन्थों से उनका आचार्यत्व सिद्ध होता है।

प्रश्न 9 आचार्यवर पं. देवदत्त ने रस के कितने भेद माने हैं?
उत्तर – आचार्य रूप में देव ने रस के प्रमुख दो भेद माने हैं – लौकिक रस और अलौकिक रस। उन्होंने काव्य में परम्परागत नौ रस माने हैं।

प्रश्न 10 आचार्य देव ने किन ग्रन्थों में अलंकारों का निरूपण किया है?
उत्तर – भाव विलास और शब्द रसायन नामक रचनाओं में कवि देव ने अलंकारों का निरूपण किया है।

प्रश्न 11 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किस कारण से देव को अप्रतिम कवि माना है?
उत्तर – काव्य सृजन में चित्रकला के रमणीय संयोजन एवं अभिव्यंजना कौशल के कारण आचार्य शुक्ल ने देव को अप्रतिम कवि माना है।

प्रश्न 12 पं. देवदत्त द्वारा विरचित 'देवशतक' की क्या विशेषता है?
उत्तर – देवशतक में कविता तथा दर्शन का सुन्दर समन्वय है।

प्रश्न 13 'कथा मैं न कंथा मैं न ... पाइए प्रकट परमेसुर प्रतीति मै।' पंक्तियों में कवि क्या भाव व्यक्त करना चाहते हैं?
उत्तर – कवि देव कहते हैं कि जिसकी ईश्वर में प्रतीति अथवा निष्ठा हो साथ ही अटूट विश्वास हो उसे संसार में सर्वत्र ईश्वर के साक्षात्कार हो सकते हैं।

प्रश्न 14 विभिन्न मतों एवं वादों के ज्ञाता देव के अनुसार कौन माने गये हैं?
उत्तर – विभिन्न मत–वादों के मर्मज्ञ को कवि देव वेदों के मर्मज्ञ या ज्ञाता बताते हैं।

प्रश्न 15 'तेऊ जोगी जुग–जुग जियौं' देव के अनुसार युगों–युगों तक कौन जीवित रहते हैं?
उत्तर – योग साधना को जानने वाले योगी युगों–युगों तक जीवित रहते हैं।

प्रश्न 16 'जिन जानी जोतत, तेऊ जोति लै जरि मरौं' पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिये।
उत्तर – जो व्यक्ति परमात्मा की परम ज्योति का साक्षात्कार कर लेते हैं, वे उसी ज्योति पुंज का आश्रय लेकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेते हैं।

प्रश्न 17 कविवर देव किस–किस के आश्रयत्व में रहे?
उत्तर – महाकवि देव आजमशाह, राजा सीताराम, कुशलसिंह, राजा भोगीलाल, भवानीदत्त वैश्य, अकबर अली खां के आश्रयत्व में रहे थे।

प्रश्न 18 कवि देव ने मुख्य रूप से किन छन्दों का प्रयोग किया है?
उत्तर – कवि देव ने अपनी रचनाओं में दोहों के साथ सवैया और कवित्त छन्द का अधिक प्रयोग किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 19 कवि देव की रचनाओं में श्रृंगार के साथ–साथ कौन–कौन से रसों का समावेश पर्याप्त रूप से किया गया है?
उत्तर – देव के काव्य में श्रृंगार रस के साथ–साथ भक्ति रस व शान्त रस दृष्टव्य है।

प्रश्न 20 महाकवि देव ने 'जाति विलास' ग्रन्थ में किसका वर्णन किया है?
उत्तर – देव द्वारा विरचित 'जाति विलास' ग्रन्थ में विभिन्न जातियों एवं वर्गों की नायिकाओं का वर्णन किया है।

प्रश्न 21 देव द्वारा रचित 'प्रेमचन्द्रिका' में किसका चित्रण है?
उत्तर – 'प्रेमचन्द्रिका' में कवि देव ने मनुष्य ह्रदय की प्रेम–वृत्ति का शास्त्रीय चित्रण किया है।

प्रश्न 22 महाकवि देव द्वारा रचित संगीतशास्त्र से सम्बन्धित रचना कौन–सी है?
उत्तर – संगीतशास्त्र से सम्बन्धित रचना 'राग रत्नाकर' है।

प्रश्न 23 'महिमा मुनीसन की सम्पत्ति दिगीसन की, ईसन की सिद्धि ब्रज बीथि बिथुरै परी।' प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने किसकी कीर्ति का बखान किया है?
उत्तर – प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने ब्रजराज श्री कृष्ण के जन्म पर मथुरा नगरी में बिखरी छटा का वर्णन किया है।

प्रश्न 24 'ऐसा जो हौ जानती कि जैहैं तू विषै के संग।' कथन में कवि ने गोपी के कौनसे भाव की व्यंजना की है?
उत्तर – प्रस्तुत पंक्तियों में गोपी ने अपने मन को विषय–वासना से मुक्त होकर श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति के लिये प्रेरित किया है।

प्रश्न 25 'आँखि खोलि देखौं तो न धन है न घन स्याम।' प्रस्तुत पंक्तियों में नायिका की किस दशा का चित्रण किया गया है?
उत्तर – नायिका की विप्रलम्भ श्रृंगार के अन्तर्गत स्वप्न दर्शन स्मरण एवं अभिलाषा दशा का सुन्दर चित्रण किया गया है।

5.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 महाकवि देव के आचार्यत्व का परिचय दीजिये।

उत्तर – देव रीतिकालीन रीतिबद्ध काव्यधारा के आचार्य माने गये हैं। ये अपने जीवन में अनेक आश्रयदाताओं के सानिध्य में रहे। इनकी यायावर प्रवृत्ति ने इनको एक या दो स्थानों पर स्थायी रूप से नहीं टिकने दिया। इन्होंने आचार्यत्व का निर्वाह करते हुए भाव विलास, शब्द रसायन, रस विलास, भवानी विलास, सुख सागर–तरंग तथा कुशल विलास आदि प्रमुख ग्रन्थों का सृजन किया। देव ने इन सभी लक्षण–ग्रन्थों में रस, अलंकार, वृत्ति, रीति, काव्यगुण, काव्यदोष, पदार्थ एवं नायक–नायिका भेद निरूपण के साथ–साथ पिंगल का शास्त्रीय विवेचन भी किया है। देव रीतिकाल के रसवादी आचार्य थे, इन्होंने नौ रसों में श्रृंगार रस को प्रधानता दी है। वैसे इन्होंने रस को लौकिक रस और अलौकिक रस दो भेदों में विभक्त किया है। अलौकिक रसों के पुनः तीन भेद किये हैं। उन्होंने मनःसंवेगों को ध्यान में रखते हुए रसों की मूल संख्या चार ही मानी हैं आचार्य देव ने तैंतीस संचारी भावों को दो भागों में विभक्त किया है – 1. शारीरिक अथवा तन संचारी तथा 2. आन्तर या मन संचारी। 'छल' को देव ने चौतीसवॉं संचारी भाव माना है। स्वकीया नायिका के देव ने अवस्था क्रम से पॉंच भेद माने हैं। आचार्य देव ने अपनी कृति भाव विकास और शब्द रसायन में सम्पूर्ण अलंकारों का विवेचन किया है तथा उनके गौण व मुख्य भेदों से अनेक उपभेदों की कल्पनाएँ की हैं। अतः कविवर देव ने विविध रचनाओं के द्वारा अपने आचार्यत्व कापूर्ण निर्वाह किया है।

प्रश्न 2 महाकवि देव की श्रृंगार–चित्रण विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिये।

उत्तर – महाकवि देव ने अपने काव्य में प्रेम निरूपण को प्रधानता दी है तथा वासना को अत्यन्त व्यापक बताया है। इसी क्रम में देव ने नायक–नायिका के प्रेम व्यापारों का चित्रण कर श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक किया है। उन्होंने नायिका के रूप सौन्दर्य को शुद्ध भावपरक दृष्टि से देखते हुए संयोग श्रृंगार के मनोरम चित्र प्रस्तुत किये हैं। नायक–नायिका में परस्पर मधुर वार्तालाप, एक–दूसरे की प्रशंसा करना, एक ही दर्पण में एक साथ अपने प्रतिबिम्ब को देखना और मिलन काल की मधुर चेष्टाएँ करना आदि प्रसंगों का देव ने आकर्षक चित्रण किया है। श्रृंगार के वियोग पक्ष के चित्रण में देव ने नायिका की विरह–व्यथा की भावात्मक अनुभूतियों को मार्मिकता प्रदान की है। यद्यपि आचार्य देव ने कहा और अतिशयोक्ति अलंकार का भी पूरा–पूरा सहारा लिया है किन्तु विरह संताप के चित्रण में स्वाभाविकता का पूरा पूरा ध्यान रखा है। देव की नायिका शीत ऋतु की रात्रि में इतनी सन्तप्त रहती है कि उसके लिये सारे शीतोपचार व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं। उस समय वह 'छोही–सी, छली–सी, छिनि–सी .... विष बूड़ी–सी, विमोहित–सी'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लगती है। देव ने वियोग–शृंगार में नायिका की विरह दशाओं का मार्मिक एवं भावपूर्ण चित्रण किया है अतः देव का शृंगार भावानुभूति से युक्त हैं।

5.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 'देव आचार्य कवि थे, रीतिकालीन कवियों में उनका शृंगार–वर्णन बहुत ही आकर्षक है।' इस कथन की समीक्षा कीजिये।

अथवा

'देव शृंगार के कवि हैं' इस कथन के आलोक में देव काव्य में वर्णित शृंगार रस की विवेचना कीजिये।

उत्तर – हिन्दी साहित्य के गगन में अनेक सितारें अपनी आभा का आलोक बिखेरे हुए हैं। कवि देव रीतिबद्ध धारा के एक प्रख्यात कवि माने गये हैं। संवत 1730 में उत्तर प्रदेश के इटावा में इनका जन्म हुआ और ये वहीं के एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार से सम्बन्ध रखते थे अर्थात् इनका जन्म उसी परिवार में हुआ था। देव प्रतिभा सम्पन्न तथा माँ सरस्वती के आशीर्वाद से मालामाल थे। इन्होंने सोलह वर्ष की अल्पायु में ही काव्य रचना का सफर प्रारम्भ कर दिया था। वे निर्भीक एवं स्पष्टवादी कवि थे। भरतपुर के महाराज जवाहर सिंह के समक्ष इन्होंने अपने निर्भीक व स्पष्टवादी होने का परिचय भी दिया था। शायद यही कारण रहा हो कि देव कभी भी एक या दो स्थानों पर स्थायी रूप से नहीं टिक पाये, अतः उन्हें अनेक आश्रयदाताओं की शरण लेनी पड़ी। इन आश्रयदाताओं में आजमशाह, कुशलसिंह, राजा भोगीलाल, भवानीदत्त वैश्य, अकबर अली खाँ आदि प्रमुख थे।

देव का रचना संसार के पास रहने के कारण कवि देव को उनके लिये कुछ न कुछ लिखते रहना पड़ा और इसी वजह से उनके ग्रन्थों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई। वैसे तो आचार्य शुक्ला ने देव के 25 रचना ग्रन्थों का उल्लेख किया है। कुछ विद्वान इनकी संख्या 42 मानते हैं और अनेक संकलनकर्त्ताओं ने उनकी संख्या 52 से 72 तक के बीच में मानी है। वैसे कुल 13 ग्रन्थ ही प्रमाणित रूप से हमारे सामने उल्लेखित हैं– जिनमें 1. भाव विलास, 2. अष्टयाम, 3. कुशल विलास, 4. जाति विलास, 5. रस–विलास, 6. प्रेम चन्द्रिका, 7. रसानन्द लहरी, 8. देवशतक, 9. शब्द–रसायन, 10. सुख–सागर–तरंग, 11. राम रत्नाकर, 12. भवानी विलास और 13. देवमाया–प्रपंच (नाटक)। इनके अतिरिक्त सुन्दरी–सिन्दूर, प्रेम–तरंग, काव्य रसायन, सुजान विनोद, सन्मित्र विनोद, देवचरित्र आदि ग्रन्थ भी सुप्रसिद्ध हैं। इन सभी रचनाओं में 'देवशतक' में कविता तथा दर्शन का सुन्दर समन्वय किया गया है। प्रेमचन्द्रिका, रामरत्नाकर, भाव विलास, रस विलास आदि सभी रचनाएँ काव्यशास्त्र से सम्बन्ध रखती हैं। इन सभी रचनाओं से आचार्य देव की कार्यक्षमता की विशालता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

कवि देव का आचार्यत्व

यदि देव की रचनाओं का भावात्मक दृष्टि से अवलोकन किया जाये तो वे हमारे समक्ष अच्छे कलाकार के रूप में सामने आते हैं। अपनी कलाप्रियता के बावजूद वे आचार्य रूप में सामने आते हैं। भावविलास, शब्द रसायन, भवानी विलास, रस विलास, सुख सागर तरंग और कुशल विलास ऐसे ग्रन्थ हैं जो आचार्यदेव के आचार्यत्व से रू–ब–रू कराने वाले हैं। इन सभी ग्रन्थों में देव ने रस, अलंकार, वृत्ति, पदार्थ, नायक–नायिका भेद, रीति, गुण–दोष और पिंगल आदि का शास्त्रीय विवेचन किया है। देव ने अपने ग्रन्थों में काव्य के सभी अंगों का सहज आचार्यत्व के रूप में वर्णन किया है।

रसवादी कवियों में देव का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, उन्होंने काव्य में नौ रसों का वर्णन किया है जिनमें से शृंगार को सर्वाधिक प्रधानता दी है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाव विलास' और 'शब्द–रसायन' उनके अलंकार विषयक ज्ञान को आचार्यत्व की सीमा तक ले जाते हैं। देव ने शब्द शक्तियों और नायक–नायिका भेद का विवेचन अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। अतः देव का आचार्यत्व सर्वथा निर्विवाद रहा है।

रसवाद और आचार्य देव

देव ने केवल अलंकारवादी प्रतिष्ठा ही नहीं प्राप्त की है, अपितु रसवादी आचार्य के रूप में ख्याति प्राप्त की है और वैसे भी आचार्य देव रस की रसिकता से मण्डित रहे हैं। आचार्य देव ने रस की परिभाषा देते हुए लिखा है कि –

जौ विभाव अनुभाव अरु,
विभचरितु करि होई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चिति की पूरन वासना,

सुकवि कहत रस सोई।।

रस स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए देव ने स्पष्ट किया है कि रस अपने आनन्दमय स्वरूप में ब्रह्मानन्द सहोदर ही है तथा उनका आस्वाद सदा अलौकिक ही रहता है।

हरि जस रस की रसिकता,
सकल रसाइन सार।
जहाँ न करत कदर्थना,
यह अनर्थ संसार।।

कवि देव ने रस के दो भेद माने हैं–1. लौकिक रस और 2. अलौकिक रस। पुनः इन दोनों को तीन–तीन भागों में विभक्त किया है–1. सर्वाधिक, 2. मनोरधिक, 3. औपनयिक। देव ने श्रृंगार रस के वियोग पक्ष की चार स्थितियों का प्रतिपादन किया है–1. पूर्वराग, 2. मान, 3. प्रवास, 4. करुण। करुण वियोग को पुनः तीन भागों में विभक्त किया गया है – 1. लघु, 2. मध्यम, 3. दीर्घ। कवि देव द्वारा विभाजित रस भेदों को हम इस प्रकार जान सकते हैं –

इसी प्रकार देव ने मनःसंवेगों को ध्यान में रखकर मूल रसों की संख्या चार ही मानी है। 1. श्रृंगार रस 2. रौद्र रस 3. वीर रस 4. वीभत्स रस। 'शब्द रसायन' में उन्होंने स्पष्ट किया है कि श्रृंगार रस से हास्य, रौद्र रस से करुण, वीर रस से अदभुद और वीभत्स रस से भयानक रस की उत्पत्ति हुई है–

'होत हास सिंगार ते, करुण रौद्र ते जानि।
वीर जनित अद्मुत कहौ, वीमत्स से मयानि।।'

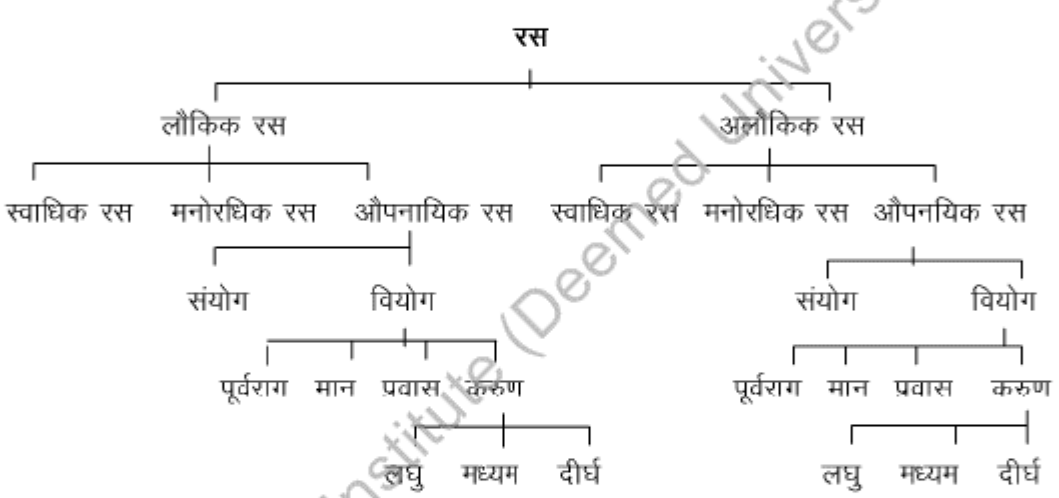

'शब्द रसायन' में देव ने रस सम्बन्धी एक अन्य स्थापना की है कि श्रृंगार में सभी रसों का अन्तर्भाव हो जाता है। श्रृंगार के संयोग और वियोग नामक दो भेदों में से संयोग हास्य, वीर और अद्भुत का अन्तर्भाव कर लिया जाता है और वियोग, रौद्र, करुण तथा भयानक का। वीभत्स और शान्त रस का भी दोनों में अन्तर्भाव हो जाता है।

आचार्य देव ने तैतींस संचारी भावों को दो भागों में विभक्त किया है–1. शारीरिक या तन संचारी 2. अन्तर या मन संचारी। सात्विक भावों को उन्होंने तन संचारी माना है। 'छल' को उन्होंने चौतीसवां संचारी कहा है जबकि छल और 'अवहित्था' संचारी में कोई खास अन्तर नहीं है। 'रस विलास' ग्रन्थ में नायिका भेद स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि नायिका को यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, वैभव और अलंकारों से अलंकृत होना चाहिये –

'पहिले जोवन रूप गुन, सील प्रेम पहिचानि।
कुल वैमव भूषण बहुरि, आठों अंग बखानि।।'

स्वकीया नायिका के उन्होंने क्रम से पाँच भेद किये हैं – 1. वयःसंधि 2. नवलवधु, 3. नवयौवना, 4. नबल अनंगा, 5. सलज्जरति। नायिका भेद का विवेचन आचार्य देव ने भानुदत्त की 'रसमंजरी' के सिद्धान्त पर किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उन्होंने परम्परागत नायिका भेदों के अतिरिक्त काल क्रम के आधार पर रस की दृष्टि से तो उनके 'भाव विलास' और 'भवानी विलास' ग्रन्थ ही मुख्य माने गये है। उन्होने रस वर्णन अति उत्तम और उच्च कोटि का किया है। विवेचन–पद्धति, काव्य सौन्दर्य, शब्दों के उपयुक्त प्रयोग विषय–प्रतिपादन–शैली आदि की दृष्टि से देव के ग्रन्थ अति महत्त्वपूर्ण हैं। उनके वर्गीकरण में मौलिकता हैं। देवे ऐसे बिरले कवियों में से एक हैं जिनमें कवित्व के साथ आचार्यत्व के साक्षात् दर्शन होते हैं। यद्यपि इन दोनों में भी काव्य–तत्त्व उनकी रचनाओं का प्रमुख अंग है। उनकी रचनाओं में अलंकारों की अनुपम छटा और प्रासाद गुण एवं गाम्भीर्य है। उन्होंने काव्य की सरसता के साथ–साथ रीतिशास्त्र के ऐसे अनेक अंगों पर विचार किया जिनपर अन्य कवियों ने कभी सोचा भी नहीं। उनकी रचनाओं में मौलिकता, भाषा की साहित्यता और शब्द लालित्य का संगम है। अक्षर मैत्री पर वे विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करते रहे। देव रीतिकाल के प्रगल्भ और प्रतिभा सम्पन्न कवि थे।

'घर में धाय धँसी निरधार है जाय फँसी उकसी न अकेरी।
रो अँगराई गिरी गहरी गहि फेरे फिरी नहीं धेरी।।'
देव कछु अपनो बसु ना रस लालच लाल चितै भई चेरी।
वेगि ही बेड़ि गई पंखियाँ अँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी।।
'देव' मैं सीस बसायो सनेह सों भाल मृगम्मद बिन्दु के भाख्यो।
कुंचुकि में चुपर्‌यो करि चोबा लगाय लियो उर सों अमिलाख्यो।।
लै मख्तुल गूहे गहने, रस मूरतिवंत सिंगार के चाख्यो।
साँवरे लाल को साँबरों यप में नैननि को कजरा करि राख्यो।।

देव ने तुकबन्दी या अनुप्रास के लिये शब्दों में तोड़–मरोड़ नहीं की है। अभीष्ट भाव को पूरी तरह से प्रकट कर पाने की सामर्थ्य उनमें विद्यमान थी।

देव आचार्य के रूप में भले ही सफल नहीं हुए हों, परन्तु कवि के रूप में उनको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उनकी सभी रचनाएँ काफी सशक्त रही हैं। ब्रज भाषा के प्रौढ़ और प्रांजल रूप का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त कवि रहे हैं। देव रसवादी कवि थे उन्होंने रस, अलंकार, शब्द शक्ति और काव्यांगों का खूब वर्णन किया। उनमें मौलिकता एवं कवित्व शक्ति पर्याप्त थी किन्तु उनका प्रमुख रसात्मक ही रहा। देव के काव्य में कल्पना की सूक्ष्मता और विश्वसनीयता दोनों ही गुण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। देव को हित हरिवेश के बारह शिष्यों में गिना जाता है। ऐसा नहीं था कि उनको आश्रय मिला ही नहीं था, आश्रय कई जगह पर मिला था, किन्तु उनकी यायावर प्रवृत्ति के कारण एक स्थान पर टिक नहीं पाये। उनकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति उनके काव्य को स्वच्छन्दतावादी बनाने में सहायक सिद्ध हुई। इन्हें रससिद्ध कवि का सम्मान प्राप्त हुआ।

'गतागतपतिका' नामक एक नवीन नायिका की कल्पना की है। इस प्रकार एक सफल आचार्य की तरह देव ने रस, रस के अंग एवं नायिका भेद आदि का विस्तार से प्रतिपादन कर अपने रसवादी दृष्टिकोण को परिपुष्ट किया है।

आचार्य देव और अलंकार योजना

कवि देव ने आचार्य के रूप में 'भाव विलास' और 'शब्द रसायन' नामक ग्रन्थों में अलंकारों का विवेचन किया है। 'भाव विलास' में उन्होंने 39 अलंकारों की पुष्टि की है –

'अलंकार मुख्य उनतालीस है देव कहैं,
वेई पुरानि मुनि मतिन में पाइये।
आधुनिक कविन के सम्मत अनेक और,
इनही के भेद और विविध बताइये।।'

कवि देव ने 'शब्द–रसायन' नामक ग्रन्थ में सत्तर अलंकार माने हैं और उनमें से चालीस को प्रधान और तीस को गौण माना है।

'मुख्य गौण विधि भेद करि है अर्थालंकार।
मुख्य कहौ चालीस विधि, गौण सु तीस प्रकार।।
मुख्य गौण के भेद मिलि, मिश्रित होय अनंत।
गुप्त प्रकट सब काव्य में, समुझत है मति मन्द।।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आचार्य देव ने उपमा अलंकार को सर्वोपरि माना है और शब्दालंकारों से बोझिल काव्य को 'मृतक काव्य' की सज्ञा दी है। 'शब्द रसायन' ग्रन्थ मे उन्होंने कहा है कि –

'मृतक काव्य बिनु अर्थ के, कठिन अर्थ के प्रेत।'

ऐसा लगता है कि आचार्य देव पर 'काव्यादर्श' के रचयिता दण्डी का प्रभाव पड़ा है इसीलिये उपमा को अधिकोपमा, उल्लेखोपमा, संदेहोपमा, भ्रमोपमा आदि में विभक्त किया है जो कि हिन्दी काव्यशास्त्र में नवीन योजना है।

आचार्य देव और शृंगार वर्णन

शृंगार के चित्र स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म, भावात्मक और मर्यादित हैं। संयोग शृंगार में उन्होंने सौन्दर्य एवं प्रेम के मनमोहक चित्र प्रस्तुत किये हैं।

'सांबरे लाल को सांबरो रूप में,
नैननि को कजरा करि राख्यो।।'

एक नायिका अपनी आंखों के अंजन में कृष्ण की छवि को खोजने का प्रयास करती हैं।

'देव कछु अपनी बस ना रस,
लालच लाल चितै भई चेरी।
वेगहि बूडि गई पंखियाँ
अखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी।।'

राधा–कृष्ण एक दूसरे के प्रेम में डूबकर दीवाने हो जाते हैं और दोनों ही एक दूसरे का गुणगान करते हैं राधा तो कृष्णमयी हो जाती है और कृष्ण राधामयी।

'दुहुन को रूप–गुण दोउ बरनत फिरैं।
पल न थिरात रीति नेह की नई–नई।।
मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधिकायन।
राधा मन मोहि मोहि मोहनमयी भई।।'

संयोग की तरह देव ने वियोग के भी मार्मिक चित्रण किये हैं और उनका काव्य सृजन विरह वर्णन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऋतु वर्णन में देव ने उद्दीपन विभाव का वर्णन अधिक किया है किन्तु उनके माध्यम से नायिका की मनोदशा का सुन्दर चित्रण किया गया है। देव ने प्रकृति के कुछ स्वतंत्र तथा संश्लिष्ट चित्रण भी प्रस्तुत किये हैं। उनके वियोग वर्णन भावात्मकता से युक्त हैं।

छोही–सी छली–सी छीनी लिन्हीं–सी छकी–सी छीन,
जकी–सी चकी–सी लागी थकी थहरानी सी।
दीनी–सी बधी–सी विष बूडी–सी बिमोहित–सी,
बैठी वह बकत बिलोकत बिकानी–सी।।'

प्रस्तुत अंश में नायिका का अतिशय दीवानापन चित्रित किया है। अपने प्रियतम कृष्ण के वियोग में एक नायिका की आँखें रो–रोकर लाल हो गई और सूज गई तथा वे आँखें जोगन जैसी लगने लगी। कवि देव ने विरहिणी आँखों का सुन्दर वर्णन करते हुए कहा है कि –

'बरुनी बधम्बर में गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भगोहे भेष राखियां।
दीजिये दरस 'देव' कीजिये संयोगनि ये।
जोगिन ह्वै बैठी हैं वियोगनि सी अंखियां।।'

निष्कर्ष

संक्षिप्त में हम यह कह सकते हैं कि रीतिकालीन कवियों में आचार्य देव में उच्च कोटि का कवित्व व उच्च कोटि का आचार्यत्व परिलक्षित होता है। आचार्य देव के सम्बन्ध में डॉ. महेन्द्र कुमार ने कहा है कि 'देव ने यद्यपि तत्त्व चिन्तन सम्बन्धी रचनाएँ की हैं तथापि उनके काव्य का मूल विषय शृंगार है। इसमें जीवन के राग पक्ष का निखार आया है। अपने रीति निरूपण में, सिद्धान्त रूप में अपने रसवादी होने का जिस ढंग से परिचय दिया है उसका निर्वाह उसी मनोयोग से किया है।' अतः देव शृंगार वर्णन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 2 महाकवि देव की काव्यगत विशेषताएँ निरूपित कीजिये।

अथवा

आचार्य देव की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

आचार्य कवि देव के काव्य की प्रमुख विशेषताओं को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

अथवा

देव के काव्य–सौन्दर्य का विषद विवेचन कीजिये।

अथवा

'आचार्य देव के काव्य में भाव पक्ष जितना सशक्त है कला पक्ष उतना ही आकर्षक।' कथन की विवेचना कीजिये।

उत्तर – रीतिकालीन आचार्य कवि के रूप में देव का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देव के काव्य में जहाँ एक ओर रीति–निरूपण से उनके आचार्यत्व की प्रतिष्ठा हुई है, दूसरी ओर शृंगार के रससिद्ध कवि माने जाते हैं आचार्य देव ने जिस ढंग से शृंगार का निरूपण किया है उतना बिहारी, घनानन्द एवं मतिराम को छोड़कर किसी अन्य कवि ने नहीं किया है। आचार्य के रूप में रसों का विस्तृत विवेचन देव ने किया है और अपनी रसवादी प्रवृत्ति का साक्षात्कार कराया है तथा अपने काव्य में रसोन्मेष का पूर्णतः निर्वाह करते हुए सफल कवि प्रतिभा से पाठकों को रू–ब–रू कराया है। आचार्य देव के संदर्भ में पं. रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'इनका जैसा अर्थ सौष्ठव और नवोन्मेष विरले ही कवियों में मिलता है। रीतिकाल के कवियों में बड़े प्रगल्भ और प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे, इसमें संदेह नहीं है। देव की रचनाओं में कल्पनाओं की ऊँची उड़ान, अभिव्यंजना शैली अत्यन्त सराहनीय है।' कवि देव में आचार्यत्व के सभी गुण प्रतिष्ठित हैं तो कवि–कर्म के अनुरूप कलात्मकता एवं भावुकता भी उनमें मिलती है। कवि देव का रचनात्मक कार्य व्यापक और विस्तृत है। उनके काव्य में कला पक्ष एवं भाव पक्ष का सुन्दर समन्वय मिलता है।

भाव काव्य का प्राण–तत्त्व अथवा आत्मा है। कला काव्य का बाह्य प्रसाधित कलेवर माना गया है। रसवादी कवि होने के कारण आचार्य कवि देव में वैराग्य की भावना भी है इसकी वजह से उनके काव्य में शृंगार के साथ–साथ शान्त–रस सम्बन्धी कविताओं की भी प्रमुखता रही है जिन्हें हम राग–विराग की कविता भी कह सकते हैं।

भाव–पक्ष

आचार्य कवि देव के काव्य में भाव पक्ष की प्रबलता व उसका विस्तार प्रशंसनीय रहा है जिसे हम निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं –

1. प्रेम का निरूपण – विभिन्न आचार्यों ने भक्ति एवं प्रेम को एक ही माना है जबकि प्रेम एक अत्यन्त व्यापक एवं गहन विषय है। सही मायने में प्रेम की सांगोपांग व्यंजना बहुत कम कवियों के द्वारा हो पाई है। अध्यात्म के सम्पर्क में आकर प्रेम साधना प्रधान बन जाता है किन्तु लौकिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम से किसी प्रकार का मेल नहीं है। साहित्य शास्त्र के ग्रन्थों में जिस प्रकार प्रेम की अभिव्यंजना की है इसका स्वरूप सामाजिक जैसा है। देव से पहले रसखान ने प्रेम का वर्णन किया, जिसमें महत्त्व–ज्ञापन को ही प्रधानता दी है। प्रेम के दो भेद किये गये हैं – निस्वार्थ एवं स्वार्थपरक प्रेम। किन्तु देव की प्रेम धारणा पवित्र, व्यापक एवं उच्च है। देव ने 'काम' को व्यापक अर्थों में लिया है–

'युक्ति सराही मुक्ति हित, मुक्ति युक्ति को धाम।
युक्ति–युक्ति औ मुक्ति को, मूल सु कहिये काम।।'

देव के काव्य में प्रेम–निरूपण के आकर्षक बिम्ब दिखाई देते हैं। देव के प्रेमी–प्रेमिका एक क्षण के लिये भी एक दूसरे से अलग नहीं होना चाहते हैं।

'पल न थिराति रीति नेह की नई–नई।'

वस्तुतः प्रेम रीति प्रकृति के द्वारा उद्दीप्त होती है और सहृदय मानव उससे आल्हादित हो उठते हैं –

सुनि के धुनि चातक मोरनी की, चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सो।
अनुराग भरे हरि बागन में, सखि राग तराग अचूकनि सों।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. संयोग श्रृंगार का वर्णन – जब नायक नायिका परस्पर आकर्षित होते हैं इसमें दोनों एक दूसरे के रूप, गुण आदि को देखकर आकर्षित होते हैं उस आकर्षण की पराकाष्ठा संयोग है। इस कारण से काव्यशास्त्रीय दृष्टि से संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत रूप–वर्णन और मिलन अथवा उपबन विहार आदि का चित्रण किया जाता है। श्रृंगार रस में नायिका ही मूल रूप से आलम्बन होती है इसलिये उसके रूप सौन्दर्य का ही वर्णन किया जाता है। कवि देव ने रूप–सौन्दर्य को शुद्ध भावपरक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है –

'देखत ही जो मन हरै सुख अखियन को देय।
रूप बखानो ताहि मो, जग चेरी करि लेय।।'

कविवर देव ने अपने काव्य में रूप–सौन्दर्य के अनेक मनमोहक चित्र प्रस्तुत किये हैं –

आपस में रस में रहसै विहसै वन राधिका कुंज बिहारी।
स्यामा सराहति स्याम की पागहि स्याम सराहत स्यामा की सारी।।
एक ही दर्पन देखि कहैं तिय नीकै लगौं पिय प्यौ कहें प्यारी।
'देव' सुबालम बाल के साथ त्रिलोकमयी बलि है बलिहारी।।

संयोग श्रृंगार में नायिका का रूठ जाना और नायक द्वारा उसे मनाया जाना अत्यन्त आनन्ददायक माना जाता है यथा –

पीठि दै पीठि मरोरि के दीठि,
सकोरि कै सौहं सौ भौहं चढइबो।
प्रीतम सो कवि देव रिसाइकै,
पाइ लगाइ हिये सों लगैवों।
तेरो री मोहि महा सुख देत
सुधा रस है ते रसीलौ रिसीलो।।

3. वियोग श्रृंगार का वर्णन – श्रृंगार के वियोग पक्ष का कविवर देव ने अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में प्रेम और विरह सम्बन्धी अनुभूतियाँ अत्यन्त गहन हैं। विरह वर्णन में अतिशयोक्ति का वर्णन उन्होंने भी किया है किन्तु भावात्मकता के प्रति देव सदैव सजग रहे हैं –

बालम विरह जिन जान्यो न जनम–भरि,
बरि बरि उठै ज्यौं बरसै बरफ राति।
बीजन डुलावत सखी–जन त्यों सीत हूँ मैं,
सीति के सरापतन तापन तरफराती।
देव कहैं साँसन ही अँसुंआ सुखाव मुख,
निकलै न बात ऐसी सिसकी सरकराती।
लौटि लौटि परत करौट खाट पाटी लै लै,
सूखे जल सफरि ज्यों सेज पै फरफराती।।

प्रस्तुत छन्द में यद्यपि देव ने प्रेम विरह का तो सुन्दर चित्रण किया है किन्तु अतिशयोक्ति का प्रयोग अधिक नहीं हुआ है किन्तु अतिशयोक्ति और स्वाभाविक बन गया है। नायिका की विरह दशा को जिस ढंग से प्रस्तुति दी है वह काफी सामान्य व प्रभावपूर्ण है। इसी प्रकार नायिका की वियोग दशा का कई स्थलों पर सुन्दर वर्णन किया है –

'छोही–सी छली–सी छीनी लीन्ही सी छकी–सी छीन।
जकी–सी चकी–सी लागी थकी थह रानी–सी।।
बींथी–सी बंधी–सी विषबूडी–सी विमोहित–सी।
बैठी वह बकत बिलोकत बिकानी–सी।।'

इस प्रकार के मार्मिक चित्रणों से यह स्पष्ट होता है कि देव के काव्य में भाव–पक्ष का पूरा ख्याल रखा गया है और उसे सर्वगुण सम्पन्न बनाने का देव ने सफल प्रयास किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कला पक्ष

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल कला का काल माना गया है। उस समय के कवियों ने अपने काव्य के अभिव्यंजना कौशल पर अधिक बल दिया है। उसके लिये उन्होंने शिल्प–विधान का रूप एक प्रकार से निश्चित कर लिया था इसी कारण तत्कालीन साहित्य में कलात्मक काव्य–शिल्प के प्रति विशेष आग्रह उन कवियों में दिखाई दिया है। अभिव्यंजना कौशल अथवा कलात्मक अभिव्यक्ति के इस विशेष आग्रह के कारण तत्कालीन काव्य के आन्तरिक और बाह्य तथा अलंकारिक शब्दावली में कहें तो उपमेय और उपमान सब कुछ निश्चय हो चुके थे। इस प्रकार रूढ परम्परा के रहते हुए भी कवि देव ने अपने काव्य में कलापक्षीय मौलिकता एवं नवीनता का पूरा–पूरा ध्यान रखा है। उसमें अभिव्यंजना कौशल की अनेक विशेषताएँ थीं। इन विशेषताओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं –

1. **चित्रित समायोजन** – यह विशेषता रीतिकालीन काव्य में मुख्य रूप से देखी जा सकती है कि प्रत्येक दशा का कवियों ने चित्रात्मक विश्लेषण किया है। कवि देव ने सम्पूर्ण अमूर्त्त भावों को सजीव रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। देव के कुछ भावात्मक चित्र तो ऐसे हैं प्रायः काव्य रसिकों द्वारा सुनने को मिल ही जाते हैं।

प्रस्तुत उदाहरण में नायिका के रूप सौन्दर्य चित्रण से उद्दीपन विभाव की योजना को अत्यन्त मोहक रूप प्रदान किया है –

'पीत रंग सारी गौरे अंग मिलि गई 'देव',
श्रीफल उरोज आभा आभासै अधिक सी।
छूरि अलकानि छलकनि जल कननि की,
बिना बेनी बदन–सोभा विकसी।
तजि–तजि कुंज जेहि ऊपर मधुप–पुंज,
गुंजरति मंजुख बोले बोल पिक सी।
नैननि हंसाय नेकु नीबी उकसाइ हंसि,
सझि–मुखि सकुचि सरोवर ते निकसी।'

2. **मानवीकरण** – कविवर देव ने अमूर्त्त भावों को और प्राकृतिक उपादानों को मानवीकरण कर मूर्त्त रूप प्रदान करने में महारथ प्राप्त किया है। इनके काव्य ऐसे प्रसंगों की छायावादी कवियों के प्रसंगों से तुलना की जा सकती है यथा –

तेरो कह्यो करि–करि जीव रह्यो जरि–जरि,
हारी पाँव परि–परि, तऊँ ते न की संभारि।
एरे मन मेरे तैं घनरे दुःख दीन्हे पल,
एकै बार देकै मोहि मूँदि मारौ एकै वार।।'

3. **अलंकार योजना** – अलंकार विधानों और उक्ति चमत्कार के प्रति रीतिकालीन कवियों का कुछ अधिक ही रूचिकर व्यवहार रहा है, इसलिये उस काल के सभी कवियों ने अपनी कविताओं में अप्रस्तुत–विधान का प्रयोग किया है। उनके प्रस्तुतीकरण में मौलिकता, सहजता एवं चमत्कार का प्राचुर्य रहा है। उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, प्रतीत आदि सादृष्यमूलक अलंकारों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है –

मंद हंसी अरविन्द ज्यों बिन्द,
अचै गये दीठि में दीठि खुमै कै।
कंज की मंजिम मंजन मानो,
डडै चुनि चंचुनि चंचु चुमैं कै।

प्रस्तुत उदाहरण में अप्रस्तुत–विधान के द्वारा नेत्र–मिलन की सूक्ष्म अनुभूति का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसमें 'अरविन्द' परम्परागत उपमान है किन्तु कवि की योजना नवीन है 'मंजिम मंजन मानो' में सादृष्य का श्लिष्ट चित्रण है। जिससे नवीन चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

आचार्य देव की उपमाएँ अत्यन्त सुन्दर एवं स्वाभाविक हैं – 'माखन सो मन, दूध सो जोवन' में मृदुल तन और दूध के समान स्वच्छ एवं स्निग्धता से युक्त यौवन का सुन्दर एकदेशीय लुप्तोपमा प्रयुक्त की गई है। वस्तुतः देव को अप्रस्तुत–विधान अत्यधिक प्रिय रहा है; इस रूप में उन्होंने अलंकारों का सफल प्रयोग किया है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ये अखियाँ बिन काजर कारी,
अन्यारी चितै चितमें चपटी–सी।
मीठी लगै थतियाँ मुख सीठी,
यों सोतनि के उर में दपटी–सी।।
अंगहुं राग विना–अंग–अंग,
झँकोरे सुगन्धन की झपटी–सी।
प्यारी बिहारी ये ऐडी लसैं,
बिन जावक पावक सी लपटी–सी।।

प्रस्तुत अवतरण में विभावना अलंकार के अतिरिक्त वीप्सा, छेकानुप्रास, चित्रात्मकता आदि विशिष्ट अलंकरण–गुण समाविष्ट हैं।

4. भाषा सौष्ठव – रीतिकालीन कवियों ने अभिव्यंजना को अधिक महत्त्व दिया है। अपने अभिव्यक्ति पक्ष को सबल और समर्थ बनाने के लिये उन कवियों ने अलंकार, गुण, वत्ति को सामने रखकर सजाया है। इस परिप्रेक्ष्य में रीतिकाल में भाषा को सजान–संवारने और रसानुकूल बनाने में जितना महत्त्वपूर्ण योगदान देव और अन्य कवियों ने दिया है, उतना अन्य किसी काल के कवियों ने नहीं। ब्रज भाषा सारे उत्तर भारत के साथ–साथ सुदूरवर्ती प्रदेशों में भी काव्यात्मक भावों की वाहिका बनी और काव्य–सृजन के लिये इसका समुचित प्रयोग किया गया। देव ने अपने काव्य में ब्रज भाषा का मधुर विन्यास किया है और प्रत्येक पद को कलात्मक ढंग से नियोजित किया है –

'मोहि–मोहि मोहन को रूप भयो राधामय।
राधा मन मोहि–मोहि मोहन मयी भई।।'
चक–चकबानि के चकाये चक चोटिन सों,
चौकति चकोर चक–चौंधा–सी चके गई।।'

आचार्य देव ने ऐसे पदों में योजना दी है, जिसमें चित्रमयता ध्वन्यात्मकता एवं नाद–सौन्दर्य का सुन्दर समन्वय हुआ है –

'रीझि–रीझि रहसि–रहसि हँसि–हँसि उठै।
साँसे भरि आँसू भरि कहत दई–दई।।'
झहरि–झहरि झीनी बूँदनि परति मानो।
घहरि–घहरि घटा घेरि है गगन में।।'

आचार्य देव ने संस्कृत तत्सम शब्दावली के साथ अरबी, फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है जिससे भाषा में अर्थवत्ता गुण समाहित हो गया है।

5. छन्द योजना – छन्द योजना में देव का प्रशंसनीय स्थान माना गया है। इनकी छन्द योजना अत्यन्त सुन्दर है। इन्होंने अपने काव्य में सृजन में सवैया और कवित्त छन्द का ही अधिक प्रयोग किया है। लक्षण निर्देशन के रूप में दोहा छन्द का भी प्रयोग किया गया है। इन छन्दों के प्रयोग में कवि, यति, नादात्मकता औ गेयता का पूरा ध्यान रखा गया है। कवित्व निखार के लिये छंद योजना का अपूर्ण योगदान रहा है। देव के काव्य में छन्दों का सरल प्रवाह और उसकी नादात्मकता काफी आकर्षक है।

प्रश्न 3 'आचार्य देव के काव्य की ब्रज भाषा में ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, चित्रमयता तथा स्वाभाविकता का सुन्दर समन्वय हुआ है।' इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिये।

उत्तर – साहित्य का काल चाहे कोई भी रहा हो किन्तु हर काल में कुछ ऐसे कवि हुए हैं, विशेषकर हिन्दी साहित्य में जिन्होंने काव्य रचना के क्षेत्र में नव–नवोन्मेष–शालिनी प्रतिभा का परिचय देकर उत्तम काव्य रचना की प्रस्तुतियां दी हैं। रीतिकाव्य के महाकवि देव इसी प्रकार के प्रतिभा सम्पन्न कवि रहे हैं। देव रसवादी आचार्य कवि थे, जिससे उन्होंने श्रृंगार के रसराजस्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हुए उसे अपनी मौलिक चेतना से अनुप्रमाणित कर काव्य की मूल वृत्ति में परिगृहीत किया। देव के काव्य वैशिष्ट्य को देखकर मिश्र बन्धुओं ने हिन्दी के कवियों तुलसीदास और सूरदास के बाद देव को ही स्थान दिया है। रीतिकालीन परम्परानुसार देव ने आचार्यत्व का भी निर्वाह किया और विशाल काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं। लक्षण ग्रन्थों के लिये स्वयं लक्ष्य ग्रन्थ की रचना करके आचार्य और कवि का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यश प्राप्त किया है। आचार्यत्व, भाषा–सौष्ठव एवं भाव गाम्भीर्य देव काव्य के प्रधान गुण हैं। उनकी काव्यगत उत्कृष्टता के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'इनके जैसा अर्थ–सौष्ठव और नवोन्मेष विरले ही कवियों मे मिलता है। रीतिकाल के कवियों में ये बड़े ही प्रगल्भ और प्रतिभावान कवि थे, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। देव की रचनाओं में कल्पना की ऊँची उडान तथा उनकी अभिव्यंजना शैली भी सराहनीय है। उन्होंने सौन्दर्यपूर्ण दृष्यों के विभिन्न चित्र उतारे हैं।' देव की काव्य प्रतिभा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने 16 वर्ष की आयु से साहित्य सृजन की जीवन यात्रा प्रारम्भ कर दी और सत्तर से भी अधिक काव्य ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं जिनमें अभी तक कुछ ग्रन्थ अप्रकाशित हैं।

कवित्व कौशल और आचार्य देव

रीतिकालीन परम्परानुसार देव ने रस, नायिका भेद, गुण, अलंकार, भाव, स्वर–संयोजन, छन्द–विधान आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला है तथा दोहा छन्दों में लक्षण प्रस्तुत कर के कवित्त और सवैया छन्दों में उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। कवि रूप में देव ने श्रृंगार रस का सांगोपांग चित्रण किया है और उसमें भावात्मक चमत्कार लाने के लिये शब्द–शक्तियों का समुचित आश्रय लिया है जिसमें लक्षणा और व्यंजना शक्ति का प्रयोग विशेष महत्त्वपूर्ण है। अतः देव एक कुशल कलाकार और शब्द–शिल्पि के रूप में हमारे सामने आये हैं इनके काव्य में माधुर्य, चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता और लाक्षणिकता का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

काव्य की ध्वन्यात्मकता

आचार्य कवि देव ने अपने काव्य में उक्ति कौशल को अधिकाधिक आकर्षक बनाने के लिये व्यंजना का आश्रय लिया। रूप सौन्दर्य में सरसता लाने के लिये देव ने ऐसे कई प्रयोग किये हैं जिसमें नायिकाओं की मनोदशाओं को व्यंजित किया गया है।

देह में साँस बसायो सनेह कै,
भाल मृगम्मद बिन्दु कै भाख्यो।
कुंचुकि में चुपर्‌यो करि चोवा,
लगाय लियो उर सो अभिलाख्यों।
कै मखतूल गुने गहने रस,
मूरतिवंत सिंगार को चाख्यो।
सावरो लाल को सावरो रूप,
मैं नैनन को कजरा करि राख्यो।

प्रस्तुत छन्द के अनुसार नायक का रूपसी की अतिशय व्यंजित करने के लिये नायिका को चेतनानुरूप एवं तन्मय बताया है। प्रियतमा के सम्पूर्ण अंग–प्रत्यंगों में प्रेम माधुरी व्याप्त है, इस कारण उसकी सम्पूर्ण चेतना भावात्मक हो गई है। यह रस–ध्वनि के साथ वस्तु अलंकार ध्वनि का अच्छा उदाहरण है।

'यौं सुनि औछे उरोजन पै,
अनुराग के अंकुर से उठि आये।'

इसमें नायिका के उरोजों पर अनुरोग की प्रेमांकुर के रूप में कल्पना करके नायिका के रूप यौवन और प्रेम भावना को एक साथ व्यंग्य भावना के साथ उभारा गया है।

'देव जू दूरि ते दौरि दुराइ,
कै प्रेम सिखाई दिखाई दिये तै।
वारिज के विकसै मुख पै,
निकसै इत व्है निकसे न हिये तै।'

इस उक्ति में चमत्कार अधिक है। नायिका को दुःख इस बात का है पहले नायक ने उसे प्रेम करना सिखाया था और उसे अपनाने के लिये दौड़ा चला आता था किन्तु अब तो वह स्वप्न में भी नहीं आता है। फिर भी नायिका अपने हृदय से एक पल के लिये भी दूर नहीं रखना चाहती है। जितना वह दूर चला जा रहा है, नायिका का प्रेम भी उतना ही बढता चला जा रहा है। इस प्रकार कवि देव ने प्रेम वर्णन में जहाँ भावात्मकता है, वहीं व्यंग्यात्मकता है। इसलिये विरह वर्णन में मर्मस्पर्शिता व्यंजना का स्तर सशक्त है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लाक्षणिकता का प्रयोग

आचार्य कवि देव ने उक्ति को अधिक मार्मिकता और चारुता प्रदान करने के लिये अनेक लाक्षणिक प्रयोग किये हैं। श्रृंगार में प्रेम–भाव और रूप सौन्दर्य का अतिशय चित्रण करने के लिये लक्षणा का प्रयोजनगत प्रयोग देखा जाता है –

एकन नैनन ही ललाचाय,
लचाये एकन सैनन कै कै।
है गुलचाय लचाये–लता,
सु बचाये हैं ओढनि कै रस लैकै।।
एकहि मेहिं दुहूँ भुज 'देव',
हियौ दृग अँजला रंग उन्हैं कै।
चंचल–नैनी दृगंचल मोरि,
हँसै मुख रंचक अंचल दै कै।।

प्रस्तुत प्रसंग में गोपियों की विभिन्न चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। प्रत्येक गोपी प्रियतम कृष्ण को रिझाना चाहती है। उन सभी का विशेष प्रयोजन कृष्ण को अपनी ओर आकृष्ट करना है और अन्य बातों से निवृत्त कर प्रभावित करना है।

धार मैं धाइ धसी निरधार व्है,
जाय फँसी उकसी न अबेरी।
री अँगराई गिरी गहिरि गहि,
फेरे फिरी औ घिरी नहीं घेरी।।
'देव' कछु अपनो बसु न रस,
लालच लाल चितै भई चेरी।
बोगि ही बूडि गई पखियाँ,
अंखियां मधु की मखियाँ भई मेरी।।

प्रस्तुत अवतरण में 'धँसी निराधार' और 'अँखियाँ मधु की मखियाँ' आदि में लाक्षणिक प्रयोग किया गया है। इसमें शब्द कौशल भी परिलक्षित होता है। देव के काव्य में इसके अनेक प्रयोग मिल जाते हैं यथा –

अ. 'सुनि सुनि प्रबणन भूख सौ भगाती है।'
ब. 'बछियान की जीमै न लागती है।'
स. 'बापुरी मंजुल–आम की बाल सुनाल सी व्है उर में अरती क्यों?

चित्रात्मक वर्णन

रीतिकालीन कविता की एक बड़ी विशेषता चित्रमयता है। अन्य कवियों की अपेक्षा देव ने चित्रात्मक वर्णन करने में अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने अमूर्त भावों को मूर्त रूप देकर अप्रस्तुत विधान का अच्छा प्रयोग किया है।

रूप सौन्दर्य का चित्र खींचने में उनकी भावात्मकता एक चतुर–चितेरे की भाँति दिखाई देती है। उन्होंने कई स्थानों पर नायिका की सर्वांग रूपश्री के प्रभावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किये हैं –

'माखन सो तन दूध सों जोवन,
है दधि तें अधिकों उन ईठी।
जा छवि आगे छपा कर छाँछ,
समेत सुधा वसुधा सब दीठी।
नैननि नेह चुवै कहिं 'देव',
बुझावत नैन वियोग अँगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी कहै,
क्यों न लगे मनमोहन मीठी।।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शृंगार वर्णन में उद्दीप्त विभाव और अनुभावों का वर्णन करते हुए देव ने नायिका को प्रमुख आधार बनाया है और रूप सौन्दर्य के रमणीय चित्रों का सयोजन किया है –

'पीत रंग सारी गोरे अंग मिल गई,
श्रीफल उरोज आभा आभासै अधिक सी।
छूटि अलकनि छलकनि जल कननि की,
बिना बेनी बन्धन वदन सोभा विकसी।
तजि तजि कुंज जेहि ऊपर मधुप पुंज,
गुजरत मंजुख बोले बोल पिक–सी।
नैननि हँसाय नेकु नीकी उकसाइ हंसी,
ससि मुख संकुचि सरोवर से निकसी।।'

देव ने प्रकृति के कुछ स्वतंत्र और संश्लिष्ट चित्र भी खींचे हैं –

'सुनि के धुनि चातक मोरनी की,
चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सौं।
अनुराग भरे हरि बागन में,
सखि राग तराग अचूकनि सौं।
कवि 'देव' घटा उनई जुनई,
वन भूमि भई दलि दूकनि सौं।
रंगराती हरी हहराती लता,
झुकि जाती समीर कि झूकनि सौं।।'

स्वाभाविकता का समावेश

शृंगार वर्णन में रीतिकालीन कवियों ने उक्ति वैचित्र्य, पाण्डित्य प्रदर्शन, अतिशयोक्ति चित्रण का सहारा लिया है और स्थूल वासनात्मक चित्र प्रस्तुत किये हैं इस कारण उनके काव्य में कोरी भावुकता रह गई है किन्तु कवि देव इस दोष से मुक्त रहे हैं। उन्होंने अतिशयोक्ति का सहारा न लेकर स्वाभाविकता को प्रधानता दी है। विरह वर्णन में उन्होंने नायिकाओं की विविध दशाओं का सुन्दर चित्रण स्वाभाविक ढंग से किया है।

'बालम–विरह जिन जान्यो न जनम भरि,
बरि–बरि उठै ज्यों बरसै बरफराती।
बीजन डालावत सखि जन त्यौं सोतहु मैं,
सीति केसराय तन तापति तरफराती।
'देव' कहे साँसन ही अँसुवा सुखात मुख,
निकसै न बात ऐसी सिसकी सरफराती।
लौटि–लौटि परत करौट खाट पाटी लै–लै,
सूखे जल सफरी जो सेज पर फरफराती।।'

प्रस्तुत छन्द में कवि ने अतिशयोक्ति का सहारा नहीं लिया है और नायिका की दशा का स्वाभाविक चित्रण किया है। नायिका द्वारा कुछ न बोल पाना, सिसकियां भरना, ऊष्ण उच्छवास छोडना, जाड़े की रात में भी उसका शरीर तप्त रहना और शीतल उपचारों का असफल रहना आदि क्रियाओं द्वारा ही विरह दशा का स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

5.3 अभ्यास प्रश्नावली

अन्त में हम कह सकते हैं कि देव के काव्य में ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, चित्रमयता और स्वाभाविकता का सुन्दर समन्वय हुआ है। देव में भवभूति की तरह भावात्मकता और व्यंजना का उत्कर्ष है साथ ही उसमें अभिधा की सशक्तता और लक्षणा की विशिष्टता का भी अनिर्वचनीय समन्वय हुआ है।

5.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. आचार्य देव की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. देव के काव्यों में लाक्षणिकता के प्रयोग समझाइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–6 : सेनापति

संरचना

6.0 कवि परिचय

6.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

6.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

6.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

6.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

6.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

6.3 सारांश

6.4 अभ्यास प्रश्नावली

6.0 कवि परिचय

'सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताइ है।

सेनापति का जन्म दीक्षित गोत्रीय ब्राह्मण कुल में सं. 1616 वि. में हुआ था इसके पिता का नाम गंगाधर और पितामह का नाम परशुराम दीक्षित था। उनके विद्यागुरु हीरामणि दीक्षित थे। कविवर सेनापति रीतिकाल के उल्लेखनीय और विशिष्ट कवियों की श्रेणी में आते हैं और ये अपने समय के अतीव समर्थ और भाव प्रवण कवि रहे हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि सेनापति उनका उपनाम या उपाधि है किन्तु इनके मूल नाम का आज तक किसी को पता नहीं है। इस बात को भी संदिग्ध रूप से स्वीकार किया जाता है कि काव्यकला और मौलिकता की दृष्टि से युगीन कवियों के वे 'सेनापति' थे।

सेनापति के संदर्भ में बहुत से मत मतान्तर हैं किन्तु कवित्त रत्नाकर के अतिरिक्त कुछ इतिहासकारों ने इनकी अन्य कृति 'काव्यकल्पद्रुम' बताई है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि 'कल्पद्रुम' और 'कवित्त रत्नाकर' दोनों एक ही ग्रन्थ हैं। 'कवित्त रत्नाकर' में 394 छन्द उपलब्ध हैं जिसमें कवि ने श्लेष अलंकार, श्रृंगार, षट्ऋतु, रामायण और राम रसायन का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में छन्दों की मूल चेतना रीतिकालीन है। सेनापति का प्रिय अलंकार श्लेष रहा है। इन्हें सर्वाधिक सफलता ऋतु वर्णन में मिली हैं। भले ही इके ऋतु वर्णन में शब्द व अर्थ का चमत्कार हो किन्तु ऋतु वर्णन पाठक के मन को तरंगित कर देता है। इनका रचनाकाल 1650 ई. के लगभग माना गया है।

यह कहना कठिन है कि सेनापति किन–किन के आश्रय में रहे। आन्तरिक साक्षों से पता चलता है कि वे कुछ समय किसी मुसलमान शासक के दरबार में अनिच्छापूर्वक रहे थे और यह निश्चित है कि जीवन का अंतिम समय उनका वृन्दावन में व्यतीत हुआ था।

सेनापति ने अपने प्रत्येक छन्द में अपनी छाप प्रस्तुत की है। उनकी रचनाओं में पद–पद पर मौलिकता से साक्षात्कार होता है।

सेनापति राम भक्त कवि थे। उन्होंने किसी अन्य कवि का अनुसरण नहीं किया किन्तु वे अलंकार सम्प्रदाय का अनुसरण करने वाले कवि थे। सेनापति ब्रजभाषा के कवि थे और भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। साधारण शब्द भी उनके हाथ में सैनिक की तरह सशक्त बन जाते हैं। वे व्यवस्था प्रिय और परिमार्जित भाषा का प्रयोग करने वाले थे, उनके काव्य में माधुर्य भी है और भाव गाम्भीर्य भी समाहित है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

राम वन्दना

'मंद मुसकान कोटि छन्द तैं अमन्द राजैं,
दीपति दिनेस कोटि हू ते अधिकानियै।
कोटि पंचवान हू तै महा बलवान कोटि,
कामधेनु हू ते महा दानी जग जानियै।
और ठौर झूँठों वर्णन ऐतौ सेनापति,
सोतापति या हूँ तै अधिक गुन खानियै।
ऐसी अति उकति जुगति मो–बतावौ जासौं,
राजाराम तीनि लोक नाइक बखानियै।।'

शब्दार्थ – मंद = धीमी, कोटि = करोड़, अमन्द = अधिक, दीपति = तेज या दीप्ति, पंचवान = कामदेव, कामधेनु = स्वगोधगाय जो मनोकामना पूर्ण करती है, ठौर = जगह, उकति = उक्ति का कथन, जुगति = उपाय।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के सेनापति द्वारा विरचित 'राम वन्दना' प्रसंग में अवतरित है। जिसमें कवि ने अपनी अनन्य भक्ति भावना को व्यक्त करते हुए प्रभु श्री राम की महिमा का सुन्दर वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि सेनापति अपने आराध्य प्रभु श्रीराम के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उनका सौन्दर्य अतीव आकर्षक और अलौकिक है। उनकी मन्द व मधुर मुस्कान तो करोड़ों चन्द्रकलाओं से भी अधिक है तथा श्रीराम के मुख मण्डल का तेज भगवान भास्कर के तेज से हजारों गुना अधिक है जो सर्वत्र आलोक बिखेरता है। उनका सौन्दर्याकर्षण करोड़ों कामदेवों से बढ़कर है। कवि सेनापति प्रभु राम की उदारता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि करोड़ों कामधेनूओं के समान उदारता रखने वाले राम संसार में सभी प्राणियों की सम्पूर्ण मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं अर्थात् तीनों लोकों में प्रभु राम की उदारता व उनका सौन्दर्य अद्वितीय है। कवि सेनापति कहते हैं जो लोग संसार के अन्य शक्तिशाली व सुन्दर लोगों या महापुरुषों की प्रशंसा में जो वर्णन करते आये हैं वह सब या तो मिथ्या है और या कहें कि अतिशयोक्तिपूर्ण है किन्तु सीतापति राम का सम्पूर्ण वर्णन शास्वत है वे सभी गुणों की खान हैं और प्रभु राम के इन गुणों से प्रभावित होकर मैं इस प्रकार का कथन और युक्ति व्यक्त कर रहा हूँ। सेनापति कहते हैं कि प्रभु श्रीराम तो तीनों लोकों के नायक हैं, स्वामी हैं, वे तीनों लोकों में सभी प्रकार से सर्वत्र वन्दनीय हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में स्पष्ट होता है कि सेनापति राम भक्त थे और उन्होंने इस पद में राम भक्ति की सुन्दर व्यंजना की है।
2. व्यतिरेक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है क्योंकि सुप्रसिद्ध उपमान चन्द्रमा, सूर्य, कामदेव को राम की सुन्दरता से करोडों गुना कम बताया है।
3. अनुप्रास अलंकार तथा भाव काव्य भी दृष्टव्य है।
4. ब्रजभाषा का लालित्य प्रस्तुत पद में समाहित है।
5. कवित्त छन्द की गति व यति प्रशंस्य है।

(2)

'धाता जाहि गावै कछु मरम न पावै ताहि,
कैसे कै रिझावै भलौ भौन ठहराइयै।
रसना को पाई–पाई वचन सकति बिन,
राम गुन गान तऊ मन अकुलाइयै।
जैसे बिन अनल सलिल ही कौ दीपक है,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दीपति–निधान भान कौं भलौ मनाइयै।
ऐसे थोरी उकति, जुगति करि सेनापति,
राजा राम तीन लोक तिलक रिझाइयै।।'

शब्दार्थ – धाता = विधाता, ब्रह्माजी, मरम = रहस्य, रसना = जीभ, वचन सकति = बोलने की क्षमता, अनल = आग, सलिल = पानी, दीपति = तेज, भान = सूर्य, रिझाइयै = मोहित किया।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के सेनापति द्वारा विरचित 'राम वन्दना' प्रसंग से लिया गया है जिसमें कवि सेनापति ने प्रभु श्रीराम को अपना आराध्य मानकर उनकी महिमा को अनिर्वचनीय बताया है तथा स्पष्ट किया है कि इनकी महिमा इतनी विशाल है कि यदि स्वयं ब्रह्माजी भी चाहें तो भी वर्णन नहीं कर सकते हैं।

व्याख्या – कवि सेनापति प्रभु श्रीराम की अपरिमित महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीराम का गुणगान करना तो देवताओं के लिये भी असंभव है। उनकी महिमा अपार, अपरिमेय, अनिर्वचनीय है जिनका वर्णन स्वयं ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते हैं। वे भी इस रहस्य को नहीं जान पाते हैं कि राम को कैसे प्रसन्न किया जाये? इसलिये सेनापति कहते हैं कि चुप रहना ही अच्छा है। कवि कहते हैं कि जिह्वा की वचन क्षमता प्रभु राम के गुण गान के अनुरूप नहीं है और मन में निरन्तर इस बात का पश्चाताप बना रहता है। जिस प्रकार दीपक में यदि तेल के स्थान पर पानी भर दिया जाये तथा उस दीपक को बिना अग्नि के जलाये तेजपुंज सूर्यदेव को रिझाने का प्रयास करें तो यह संभव नहीं है। उसी प्रकार से सेनापति तीनों लोकों के स्वामी राम को काव्य सृजन की कुछ उक्तियों और चमत्कारों द्वारा रिझाना चाहते हैं तो यह असंभव है। अर्थात् चन्द सामान्य रचनाओं से राम की महिमा का वर्णन कर उन्हें रिझाना ठीक वैसे ही निराधार है जैसे सूर्य को दीपक से आभासित करना निष्फल है।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में कवि सेनापति ने प्रभु श्रीराम की महिमा को अपरिमेय व अनिर्वचनीय बताकर अपनी भक्ति भावना को व्यक्त किया है।
2. भक्त की विवशता और भगवान की समर्थता को स्पष्ट किया गया है।
3. प्रस्तुत पद में अनुप्रास, यमक, विनोक्ति और उदाहरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।
4. कवित्त छन्द की गति व यति प्रशंसनीय है।

ऋतु वर्णन

(1)

'जेठ नजिकाने सुधरत खस खाने, तल,
ताख तहखाने के सुधारि झरियत है।
होति है मरम्मति विविध जल जंत्रन की,
ऊँचे–ऊँचे अटा ते सुधा सुधारियत है।
सेनापति अतर गुलाब अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लै लै तारियत हैं।
ग्रीषग के बारार बराइबे कौं रीरे राब,
राज भोग काज साज यों संभारियत हैं।।'

शब्दार्थ – सुधरत = सुधरते हैं, अटा = अट्टालिका, खसखाने = खश की टाटियाँ, ताख = टाँड, तहखाने = गुप्त स्थान, अरगजा = चन्दन, वासर = दिन, सीरे = ठंडे, जलजंत्र = पानी से चलने वाले उपकरण (कूलर, ठंडी हवा ओर इंडे पानी के साधन आदि), राजभोग = राजसी सुखों का उपयोग।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के सेनापति द्वारा विरचित 'ऋतु वर्णन' प्रसंग से लिया गया है जिसमें कवि सेनापति ने गीष्म ऋतु और जन गतिविधियों का सुन्दर वर्णन किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कवि सेनापति ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जेठ के महिने में लोग शीतलता प्राप्त करने के लिये विभिन्न युक्तियों से संतुष्ट होना चाहते हैं। ठण्डक पाने के लिये स्वच्छ, खश की टाटियाँ तैयार करते हैं और अपने घरों में लगाते हैं तथा अपने मकान में अन्दर की ओर जहाँ ठण्डक हो वहाँ अथवा तहखानों या अन्य ठंडी जगहों की साफ–सफाई कर उसे उपयोगी बना लिया जाता है।

अनेक प्रकार के उपकरण ऐसे हैं जिनके द्वारा गर्मी से बचा जा सकता है और जो पानी की भी आवश्यकता रखते हैं यथा – कूलर, आदि। इन्हें मरम्मत कर तैयार किया जाता है। ऊँचे–ऊँचे भवनों को चूने से पोतकर सुसज्जित किया जाता है। इत्र, चन्दन व अन्य सुगन्धित द्रव्यों से सजाया जाता है तथा अमीर लोग श्रेष्ठ मोतियों का हार खरीद कर धारण करते हैं। ग्रीष्म काल में तपन अथवा गर्मी से बचने के लिए अनेक प्रकार के प्रयास किये जाते हैं और शाही सुखमय जीवन बिताने के लिये अनेक साज सज्जा के सामानों को संभाला जाता है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में ग्रीष्मकालीन तपन की स्थिति को स्पष्ट किया गया है।
2. अवतरण में वास्तु वर्णन परिगणात्मक ढंग से किया गया है।
3. पद में अनुप्रास, काव्य लिंग और वीप्सा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।

(2)

'दामिनी दमक, सुरचाप की चमक स्याम,
घटा की झमक अति घोर घनघोर हैं।
कोकिला कलापि कल कूंजत है जित–तित,
सीकर ते सीतल समीर की झकोर है।
सेनापति आबन कह्यो है मन भावन सु,
लाग्यो तरसावन बिरह जुर जोर तैं।
आयौ सखि सावन मदन सरसावन,
लग्यो है बरसावन सलिल चहुँ ओर तैं।।'

शब्दार्थ – दामिनी = बिजली, दमक = चमकती है, सुरचाप = इन्द्रधनुष, कोकिला = कोयल, कलापि = मोर, जित–तित = इधर–उधर, कल = मधुर, समीर = हवा, बिरह जुर = वियोग का बुखार, मदन = कामदेव।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के सेनापति द्वारा विरचित 'ऋतु वर्णन' प्रसंग से उद्धृत है जिसमें कवि सेनापति ने वर्षा ऋतु का मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है कवि ने वर्षा ऋतु के लावण्य को अति प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – कवि सेनापति वर्षा ऋतु के लावण्यमय वातावरण का मनमोहक वर्णन करते हुए कहते हैं कि वर्षा ऋतु के सुहाने मौसम को आते हुए देखकर एक विरहिणी नायिका अपनी चहेती सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे सखी! अब तो मनभावन सावन का महीना आ गया है। आकाश में बिजली चमकने लगेगी और आकाश सतरंगी इन्द्रधनुष से सुशोभित होने लगेगा। सावन मास में बादलों की घनघोर काली घटायें बार–बार गर्जना करती हैं कोयले और मोर इधर–उधर, चारों ओर गाने और नाचने लगती हैं। बूंदों का स्पर्श कर हवा के झोंके शीतल हो जाते हैं और शरीर को शीतलता प्रदान कर रोमांचित कर देते हैं। कवि सेनापति कहते हैं कि ऐसे समय में उस नायिका को उसके मन भावन प्रियतम ने आने के लिये कहा था किन्तु वह नहीं आये। विरह विदग्धा नायिका कहती है कि हे सखी! मेरे प्रियतम स्वयं तो नहीं आये और इस वर्षा ऋतु में मुझे तड़पने के लिये मजबूर कर रहे हैं। वह कहती है कि हे सखी! सावन आ गया है जिससे मेरा यौवन युक्त शरीर में कामोत्तेजना बढ़ने लगी है। मुझे इस भीगे मौसम में अपने प्रियतम की याद सताने लगी है।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में कवि ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन किया है।
2. नायिका की रोमांचित उत्सुकता, विवशता, उपालम्भ तथा विरह व्यथा की अभिव्यंजना की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. वियोग शृंगार को प्रकृति के साथ सुन्दर अभिव्यक्ति दी है।
4. अनुप्रास, यमक, परिसंख्या और आक्षेप अलंकार का प्रयोग किया गया है।
5. कवित्त छन्द का नाद सौन्दर्य व पद मैत्री प्रशंस्य है।

श्लेष–वर्णन

(1)

दोष सौं मलीन, गुण हीन कविता है तौ पै,
कौने अरबीन परबीन कोई सुनि है।
बिन ही सिखाये सब सीखिहैं सुमति जौ पै,
सरस अनूप टस रूप यामै धुनि है।।
दूषन कौ करिकै, कवित्त बिन भूषण कौ,
जौ करे प्रसिद्ध ऐसौ कौन सुर–मुनि है।
रामै अरचत सेनापति चरचत दोऊ,
कवित्त रचत यातै पद चुनि चुनि हैं।।

शब्दार्थ – मलीन = गन्दा या कलंकित, अरबीन = क्लिष्ट या जटिल, परबीन = चतुर, यामै = इस में, धुनि = व्यंग्य, भूषन = आभूषण या अलंकार, अरचत = अर्चना या पूजा करता है, चरचत = चर्चा करता है।

प्रसंग – प्रस्तुत प्रसंग हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के श्लेष वर्णन खण्ड से लिया गया है जो सेनापति द्वारा विरचित है। प्रस्तुत अंश में कवि ने अपनी कविता को पूर्णतः निर्दोष और चमत्कारपूर्ण बताया है।

व्याख्या – कवि सेनापति अपनी कविताओं के संदर्भ में कहते हैं कि यद्यपि मेरी कवित्त रचनाएँ अनेक प्रकार के दोषों से मलिन हैं और गुणों से हीन हैं तथापि मैं इन्हें कठिन या क्लिष्ट नहीं बताऊँगा कोई न कोई चतुर पाठक या स्रोता अवश्य पढ़ेगा या सुनेगा। यद्यपि अच्छी बुद्धि वाला व्यक्ति बिना सिखाये ही सीख जाता है फिर भी मैंने अपनी कविताओं में अनुपमता, सरसता, रसपूर्णता और ध्वनि का समावेश करने का प्रयास भी किया है क्योंकि इस संसार में कौन ऐसा देवता या ऋषि है जो दोषपूर्ण या अलंकार रहित कविता की रचना करके ख्याति प्राप्त हुआ है अर्थात् कोई भी नहीं हुआ है। इसलिये कवि सेनापति ने दोनों काम साथ–साथ किये हैं। वे श्रीराम की पूजा भी करते हैं और साथ ही काव्य में उनकी चर्चा भी करते हैं। सेनापति पदों को चुन–चुन कर काव्य का सृजन करते हैं तथा अपनी प्रसिद्धि के लिये वे काव्य को पूर्ण सावधानी के साथ तैयार करने के साथ–साथ श्रीराम की पूजा व अर्चना भी करते हैं। क्योंकि सावधानीपूर्वक किये जाने वाले कार्य में भी भगवान श्रीराम की कृपा आवश्यक है उसके बिना किसी भी प्रकार की सफलता प्राप्त नहीं होती है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में कवि सेनापति की चमत्कारवादिता, अलंकारप्रियता तथा भाषा सौन्दर्य का आग्रह स्पष्ट हुआ है।
2. पद में अनुप्रास, वीप्सा, बिनोक्ति एवं आक्षेप अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।
3. पद में कवित्त छन्द की पद मैत्री प्रशंसनीय है।

(2)

तुकन सहित भले फल कौं धरत सूधे,
दूरि कौं चलत जे हैं धीर जिय ज्यारि के।
लागत विविध पच्छ सोहत हैं गुन संग,
स्त्रवन मिलत मूल कीरति उज्यारि के।।
सोई सीस धुनै जाके उर के चुमत नीके,
वेग–वीथि जात मन मौहें नर नारि के।
सेनापति कवि के कवित्त बिलसरी अति,
मेरे जान बान हैं अचूक चाप धारि के।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – तुकन = तुकान्त, सूधे = सीधे, जिये = हृदय, पच्छ = पक्ष, स्त्रवन = कान, उज्यारी = उज्ज्वलता, सीस = सिर, विलसत = शोभायमान, बान = बाण, चापधारी = धनुर्धर राम।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के कवि सेनापति द्वारा विरचित 'श्लेष वर्णन' प्रसंग से लिया गया है। इसमें कवि ने अपनी कविताओं का श्लेषमय वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि सेनापति कहते हैं कि मेरे कवित्त तुकान्त पद योजना से युक्त हैं तथा इन सभी कवित्तों में उद्देश्य सन्निहित है। अर्थात् सोद्देश्य कवित्त हैं। इनमें भावों की गहराई है तथा वीरों को जोश प्रदान करने की क्षमता रखते हैं। इन कवित्तों के सहज अर्थ हैं और इनमें काव्य गुणों का समावेश है जो कर्णप्रिय हैं और उज्ज्वल यश का प्रसार करने वाले हैं। इन कवित्तों की एक यह भी विशेषता है कि जिनके हृदय पर ये प्रभाव डालते हैं, वह गहन चिन्तन करने लगता है तथा ये बड़े ही प्रभावशाली ढंग से नर–नारियों को मोहित करने की क्षमता से युक्त हैं। अतः मेरे कवित्त सर्वत्र शोभायमान रहते हैं। ये कवित्त मानों धनुर्धर प्रभु श्रीराम के पैने बाण हों, जो सौन्दर्य से युक्त हों।

इसी पद का बाण पक्ष में अलग ढंग से अर्थ निकलता है यथा – कवि सेनापति कहते हैं कि मेरे कवित्त रूपी बाण तरकश में सीधे रखे जाते हैं इन पर पंख और नुकीलापन है और इनकी मारक क्षमता काफी दूर तक है जो वीरों के हृदयों को बेधकर उन्हें संतप्त कर सकते हैं। ये बाण अनेक प्रकार के पंखों से सुसज्जित हैं तथा जब प्रत्यंचा को कानों तक खींचकर लाया जाता है तभी इन्हें छोड़ा जाता है और तब ही मेरी कीर्ति का प्रसार होता है। जिनके हृदय में मेरे बाण चुभ जाते हैं वे तड़पते हुए अपना सिर धुनने लगते हैं। ये अपने लक्ष्य पर इतनी तीव्रता से मार करते हैं कि देखकर सभी के मन मोहित हो जाते हैं कवि सेनापति कहते हैं कि मेरे कवित्तों में तो धनुर्धर प्रभु श्रीराम के बाणों की जैसी मारक क्षमता और सौन्दर्य समाहित है।

(3)

बानी सौ सहित सुबरन मुँह रहै जहाँ
धरति बहुत भाँति अरथ समाज कौं।
संख्या करि लीजै अलंकार हैं अधिक यामैं,
राखौं मति ऊपरि सरस ऐसे साज कौ।
सुन महाजन चोरी होति चारि चरन की,
तातै सेनापति कहैं तजि करि ब्याज कौं।
लीजियौ बचाई ज्यौं चुरावै नाहि कोई सौंपि,
वित्त की सी थाती मैं कवित्तन की राज कौं।।

शब्दार्थ – वानी = सरस्वती, सुबरन मुँह = अच्छे वर्ण मुख में या स्वर्ण मुद्राएँ, संख्या = गणना, चरण = श्लोक या पद चरण, व्याज = बहाना अथवा लालच, थाती = धरोहर।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के सेनापति द्वारा विरचित 'श्लेष वर्णन' प्रसंग से उद्धृत है जिसमें कवि सेनापति ने अपनी कृतियों एवं धरोहर को सुरक्षित रखने की प्रार्थना कर रहे हैं श्लिष्ट वर्णन किया गया है।

व्याख्या – कवित्त पक्ष में – कवि सेनापति कहते हैं कि मैंने सम्पत्ति के समान अपनी धरोहर की भाँति समर्पित कर दिया है। विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती के साथ जहाँ अच्छे, सार्थक व कर्णप्रिय सदैव मुँह में रहते हैं और उनके कई अर्थ वाले हैं। मेरी कविताओं में अलंकारों की संख्या भी काफी अधिक है आप चाहें तो इन्हें गिन सकते हैं। आप ऐसे सुन्दर अलंकारों से सुसज्जित और सरस कवित्तों को सदैव अपनी बुद्धि में सुसज्जित रखिये। कवि सेनापति कहते हैं कि हे महानुभावों! आजकल तो छन्द के चारों ओर चरणों की चोरी हो जाती है। इसलिये मैं बिना लोभ–लालच में पड़े अविलम्ब कवित्तों की यह थाती आपको समर्पित करता हूँ ताकि उनकी चोरी न हो और आप इनकी रक्षा कर सकें।

धरोहर रूप में – आचार्य कवि सेनापति अपनी कवित्तों का धरोहर रूप में वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैं अपनी कवित्तों की थाती राज्य को सौंपता हूँ। जहाँ पर कांतियुक्त स्वर्ण मुद्राएँ पर्याप्त रूप से हैं और जहाँ पर अनेक प्रकार की सम्पत्तियों का भण्डार है, जिसमें आभूषण भी रखे हुए हैं। जिनकी गिनती कर लेनी चाहिये और खुला नहीं रखना चाहिये क्योंकि आजकल चार–चार कोडियों की भी चोरी होते हुए देर नहीं लगती है। अतः अविलम्ब मैं अपनी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यह धरोहर आपको सौंपता हूँ और आपसे अपेक्षा है कि आप इनकी चोरी होने से बचाकर इनकी रक्षा करेंगे। कविता के अलंकार यहाँ स्वर्णालंकार (संपत्ति) बन गए है। यही श्लिष्ट श्लेष अलंकार उर्फ कविता है।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि सेनापति ने कवित्त और धरोहर का श्लिष्ट वर्णन किया है और अपनी कृतियों को श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है।
2. प्रस्तुत श्लेष वर्णन प्रसंग से ली गई रचना अंशों के अलग–अलग पक्षों के अलग–अलग अर्थ निकलते हैं तो श्लेष अलंकार के रोचक उदाहरण हैं।
3. अनुप्रास, अलंकार, उपमा एवं काव्य लिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है और इसमें मनहरण कवित्त छन्द है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

श्रृंगार वर्णन

(1)

केसरि निकाई किसलय की रताई लिये,
झाई नहिं जिनकी धरत अलकत हैं।
दिनकर सारथी तै सेना देखिय राते,
अधिक अनार की कली तैं अरकत हैं।।
लाली की लसनि तहाँ हीरा की हंसनि राजै,
नैना निरखत हरखत आसकत है।
जीते नग लाल हरि लालहिं ठगत तेरे,
लाल–लाल अधर रसाल झलकत हैं।।

शब्दार्थ – निकाई = सौन्दर्य, रताई = लालिमा, अलकत = शोभायमान, दिनकर सारथी = सूर्य का सारथी अरुण या सूर्य की अरुणिमा, अरकत = लाल, लसनि = शोभा, हँसनि = शुभ्र, हरखत = प्रसन्न, आसकत = आसक्त, हरि = हरण कर के, रसाल = आम।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के कवि सेनापति द्वारा विरचित सौन्दर्य–वर्णन प्रसंग से लिया गया है। जिसमें कवि सेनापति ने रीतिकालीन कवियों की भाँति नायिका की मनमोहक रूप माधुरी का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – कवि सेनापति नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस नायिका के होठ इतने सुन्दर हैं कि केशर की सुन्दरता और नूतन किसलय की लालिमा समाहित है और उन होठों की लालिमा की परछाई भी मेहन्दी की लालिमा प्राप्त नहीं कर सकती है, अर्थात् नायिका के होठों की लालिमा की बराबरी तो मेहंदी की लालिमा भी नहीं कर सकती है। सेनापति कहते हैं कि नायिका के होठों की लालिमा से तो मानों सूर्य का सारथी अरुण भी लालिमा प्राप्त करता है। उसके होठ तो अनार की कली से भी अधिक लाल है। ऐसा लगता है कि जिसके होठों की लालिमा में हीरों की चमक जैसा सौन्दर्य समाहित है जिन्हें देखकर मेरे नेत्र प्रसन्नता से आसक्त हो जाते हैं और मैं और मेरा मन उसके प्रेम के रंग में लाल हो जाता है। कवि सेनापति नायिका के अधर सौन्दर्य का वर्णन कर नायिका को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे सुन्दरी! तुम्हारे होठों की लालिमा ने रत्नों और लालों की लालिमा को भी परास्त कर दिया है और बेशकीमती लालों को भी उन्होंने ठग लिया है। अर्थात् लालों और नगों की लालिमा भी तुम्हारे होठों की स्वाभाविक लालिमा को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। हे सुन्दरी! तुम्हारे होठों के रसीलेपन से आम्रफल के समान सुन्दर रस भी झलकने लगता है।

विशेष

1. कवि सेनापति ने नायिका के अधर सौन्दर्य का वर्णन करते समय अतिशयोक्ति का सहारा लिया है।
2. कवि का कल्पना–विलास अत्यन्त मनोरम और भावात्मक है।
3. प्रस्तुत अंश में अनुप्रास, व्यतिरेक और उल्लेख अलंकारों के साथ अतिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है।
4. प्रस्तुत अंश में कवित्त छन्द है।

(2)

तब तै कन्हाई अब देत हौं दिखाई, रीति
कहा है सिखाई तेहि देखे ही सुखारे हैं।
नींद सौं उदास 'सेनापति' देखिवे की आस,
तजि के विलास भये बैरागी विचारे हैं।।
रूप ललचाने भली बुरी कौन पहिचानै,
राबरे वियोग बाबरे से करि डारे हैं।
लाल प्रान प्यारे सिख दै दै सब हारे, नैन
तेरे मत बारे ते न मेरे मत वारे है।।

शब्दार्थ – कन्हाई = कृष्ण, विलास = सुख, राबरे = आपके, बाबरे = पागल, लाल = प्रियतम कृष्ण, मतवारे = मतवाले।

प्रसंग प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के सेनापति द्वारा विरचित 'शृंगार वर्णन' प्रसंग से अवतरित है इसमें कविवर सेनापति ने एक नायिका द्वारा अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को दिये जाने वाले उपालम्भ को स्पष्ट कर उसका भावात्मक चित्रण किया है।

व्याख्या – कविवर सेनापति कहते हैं कि एक नायिका अपने प्रियतम कृष्ण के प्रति प्रेमुपालम्भ देती हुई कहती है कि हे कृष्ण! तुम आज इतना समय व्यतीत हो जाने के बाद दिखाई दे रहे हो, क्या तुमने आज तक प्रेम की यही रीति सीखी है। गोपी कहती है कि प्रेम सम्बन्ध बनाने के बाद इतने दिनों तक नहीं मिलना उचित नहीं है क्योंकि सच्चा प्रेम करने वाले युगल जब प्रतिदिन मिलते हैं तब ही सुखानुभूति होती है। कवि सेनापति कहते हैं कि कृष्ण की प्रेयसी नींद में रहती है तब भी कृष्ण को स्वप्न में देखती है किन्तु जब नींद खुलती है तो वह निराश हो जाती है किन्तु वह निरन्तर अपने प्रिय को देखते रहने की प्रबल इच्छा रखती है उसने प्रियतम कृष्ण के वियोग में सारे सुख–विलास त्याग दिये हैं और उसके नेत्र संसार से विरक्त से हो गये हैं। विरह विदग्धा नायिका कहती है कि मेरे नेत्र तो प्रियतम श्रीकृष्ण के रूप–सौन्दर्य के प्रति सदैव लालायित रहते हैं। इस आसक्ति के कारण अपने अच्छे बुरे की पहचान करने में भी ये समर्थ नहीं है। मैं तो इन वियोग व्यथित नेत्रों को समझाती–समझाती हार गई हूँ फिर भी ये जरा–सा भी नहीं मानते हैं। हे कृष्ण! आपने तो इन आँखों को बावला अर्थात् पागल बना दिया है। ये तो अब केवल तुम्हारे दीवाने बन गये हैं अर्थात् सदैव तुम्हारा अनुसरण करते रहते हैं। न ये मेरी बात मानते हैं और न मेरे मतानुसार कार्य करते हैं। अर्थात् श्रीकृष्ण की रूप माधुरी से आसक्त नायिका के नेत्र अतिशय विरह–व्यथा की पीड़ा भोगने के लिये विवश है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में कवि सेनापति ने विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन किया है।
2. अभिलाषा, प्रमाद, अनिद्रा आदि संचारी भावों के वर्णन के द्वारा वियोग दशाओं का वर्णन किया है।
3. नायिका ने अपने नेत्रों की स्थिति का उपालम्भ देकर अपने हृदय की विरहास्थिति का प्रियतम को एहसास करना चाहा है।
4. अनुप्रास, यमक, मानवीकरण तथा आक्षेप अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
5. प्रस्तुत पद में कवित्त छन्द की पद मैत्री अत्यन्त प्रशंसनीय है।
6. पद में ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग किया गया है जो अत्यन्त सरल, सुबोध और आकर्षक है।

(3)

कालिन्दी की धार निरधार है अघर, गन
अलिके धरत जा निकाई के न लेस हैं।
जीते अहिराज, खंडि डारे है सिखण्डी घन,
इन्द्रनील कीरति कराई जाहिं ए सहैं।।
रगडिन लगत सेना हिय के हरष कर,
देखत हरत रति कंत के कलेस हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चीकने, सघन, अँधियारे तैं अधिक कारे,
लसत लछारे सटकारे तेरे केस हैं।।

शब्दार्थ – कालिन्दी = यमुना, निरधार = बिना आधार के, अधर = आकाश, निकाई = सुन्दरता, अहिराज = शेषनाग, सिखंडि = मयुर, इन्द्रनील = नीलमणि या नीलम, हिय = हृदय, रतिकंत = रतिपाति या कामदेव, लसत = सुशोभित।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के सेनापति द्वारा विरचित 'श्रृंगार वर्णन' प्रसंग से उद्धृत है, जिसमें कवि सेनापति ने एक अत्यन्त रूपसी नायिका के केशों के सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या – कविवर सेनापति एक अत्यन्त रूपवती नायिका के केश–सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते है कि उस नायिका के बाल अत्यन्त सौन्दर्य और आकर्षण हैं। उसके काले व चमकीले, चिकने बाल ऐसे लग रहे हैं आकाश मण्डल में यमुना की अनेक चमकीली लहरों से युक्त धारा निराधार शोभित हो रही हों। कवि कहते हैं कि भंवरे तो उनकी सुन्दरता का थोड़ा–सा भी मुकाबला करने में समर्थ नहीं हैं। नायिका के केश–सौन्दर्य ने तो शेषनाग को भी जीत लिया है तथा मयूर पच्छ को भी मात कर दिया है सौन्दर्य की दृष्टि से। उसके केश तो नीलमणि की नीलिमा से भी अधिक काले हैं। उसके काले केशों ने तो नीलमणि के यश को भी कमजोर बना दिया है। कवि सेनापति कहते हैं कि उसकी एड़ियों को छूते हुए काले लम्बे बालों को देखकर मेरा मन हर्ष से रोमांचित हो जाता है। उन्हें देखकर तो कामदेव का दुःख भी समाप्त हो जाता है। अर्थात् वे भी प्रसन्न हो जाते हैं। एक नायक ने उस नायिका को सम्बोधित करते हुए कहा है कि हे सुन्दरी! तुम्हारे काले, लम्बे, घने केश अत्यन्त सुन्दर हैं जो अंधेरे से भी अधिक काले हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में कवि ने नायिका के रूप सौन्दर्य का नख–शिख वर्णन के क्रम में उसके केश सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन किया है।
2. प्रस्तुत पद में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

6.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

6.2.1 अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 कवि सेनापति का जन्म कब और कहां हुआ?
उत्तर – कवि सेनापति का जन्म वि.सं. 1646 में दीक्षित गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जन्म स्थल के संदर्भ में इनके कोई सत्य प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं।

प्रश्न 2 कवि सेनापति के पिता व पितागह का क्या नाग था?
उत्तर – कवि सेनापति के पिता का नाम गंगाधर और पितामह का नाम परशुराम दीक्षित था।

प्रश्न 3 सेनापति के विद्यागुरु कौन थे?
उत्तर – सेनापति के विद्यागुरु का नाम हीरामणी दीक्षित था।

प्रश्न 4 कवि सेनापति की दो सुप्रसिद्ध रचनाएँ कौन–कौन सी हैं?
उत्तर – सेनापति की दो प्रमुख रचनाएँ काव्यकलादुम तथा कवित्त रत्नाकर प्रसिद्ध है।

प्रश्न 5 कवि सेनापति ने प्रत्येक छन्द के साथ अपने नाम को मोहर किस प्रयोजन से अंकित की है?
उत्तर – कवि सेनापति ने अपनी कृति के प्रत्येक छन्द पर अपना नाम लिखा है जिससे कि कोई अन्य उनकी रचना को चुरा न सके।

प्रश्न 6 सेनापति के काव्य की क्या प्रमुख विशेषता है?
उत्तर – उनके काव्य में पग–पग पर मौलिकता दिखाई देती है।

प्रश्न 7 कवि सेनापति को किस क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त थी?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्तर – ऋतु वर्णन में सेनापति अग्रणी थे। सभी ऋतुओं का वर्णन अत्यन्त प्रशंसनीय है। प्रकृति का आलम्बन के रूप में वर्णन करने वाले कवि के रूप में उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त थी।

प्रश्न 8 कवि सेनापति के कवित्त्व में किनका अनुसरण परिलक्षित होता है?
उत्तर – कवि सेनापति भारवी वत्सभट्टि, माघ एवं श्रीहर्ष का अनुसरण परिलक्षित होता है।

प्रश्न 9 सेनापति की भाषा कौन–सी थी? समीक्षकों द्वारा उनकी भाषा प्रयोग के संदर्भ में क्या धारणा थी?
उत्तर – सेनापति की भाषा ब्रज थी, जिस पर कवि का असाधारण अधिकार था तथा समीक्षाकारों ने माना कि साधारण शब्द भी सेनापति के हाथ में सैनिक की तरह सशक्त बन जाते हैं।

प्रश्न 10 सेनापति द्वारा विरचित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यकल्पद्रुन' किस प्रकार का ग्रन्थ था?
उत्तर – काव्यकल्पद्रुम सेनापति का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ था।

प्रश्न 11 सेनापति ने अपने ग्रन्थों में कौन–कौन से काव्य–गुण समाहित किया है?
उत्तर – सेनापति के काव्य में प्रसाद व ओज गुण की प्रधानता रही है और माधुर्य गुण का भी विपुल प्रयोग किया गया है।

प्रश्न 12 सेनापति द्वारा विरचित 'कवित्त रत्नाकर' का वर्ण्य–विषय क्या रहा है?
उत्तर – नायिका भेद निरुपण, विरह वर्णन, षड्ऋतु–वर्णन व श्लेष चमत्कार 'कवित्त रत्नाकर' के वर्ण्य विषय रहे।

प्रश्न 13 सेनापति को रीतिकाल के किस सम्प्रदाय का कवि माना गया है।
उत्तर – कवि सेनापति अलंकार सम्प्रदाय के समर्थक कवि थे।

प्रश्न 14 कवित्त–रत्नाकर के चौथे तरंग में कवि सेनापति ने किसका वर्णन किया है?
उत्तर – रामचरित के प्रमुख प्रसंगों और घटनाओं का वर्णन सेनापति ने अपनी कृति 'कवित्त रत्नाकर' में किया है।

प्रश्न 15 सेनापति के कवि व्यक्तित्व की क्या विशेषता थी?
उत्तर – सेनापति मूलतः शृंगारी कवि थे, उन्होंने नायिका भेद निरूपण द्वारा अपनी शृंगार चेतना का परिचय दिया, साथ ही रामभक्ति के कवि भी थे। अतः सेनापति शृंगारी कवि व भक्त कवि दोनों ही थे।

प्रश्न 16 'सतगुरु सार की संबारी है बिरंचि पचि।' सेनापति के अनुसार प्रस्तुत पंक्ति में किसी 'सतगुरु सार' से निर्मित बताया है?
उत्तर – सेनापति ने प्रभु श्रीराम की चरण पादुकाओं को सतगुरुसार से निर्मित बताया है।

प्रश्न 17 'रामै अचरत सेनापति चरचत दोऊ कवित्त रचत यातै।' पंक्ति में सेनापति का क्या मन्तव्य हैं।
उत्तर – प्रस्तुत पंक्ति में कविवर सेनापति ने काव्य सृजन के साथ प्रभु राम की भक्ति तथा उनके यश की चर्चा करने को कहा है तथा स्पष्ट किया है कि मनुष्य को सदैव भगवान् की कृपा प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये।

प्रश्न 18 'राखति न दोषै पौषै पिंगल के लच्छन कौ।' प्रस्तुत पंक्ति में निहित 'दोषै' शब्द से क्या अभिप्राय है?
उत्तर – 'दोषै' शब्द का अभिप्राय कविता के पक्ष में काव्य दोष है, किन्तु सूर्य के पक्ष में अर्थ करने पर इसका अर्थ निशा अर्थात् रात्रि है।

प्रश्न 19 'सेनापति कवि के कवित्त विलसत अति, मेरे जान वान है अचूक चापधारी कै।' प्रस्तुत पंक्ति ने राम के अचूक बाणों की उपमा किसे दी है?
उत्तर – प्रस्तुत पंक्तियों में कवि सेनापति ने रसभाव तथा व्यंग्यार्थ से परिपूर्ण अपने कवित्तों को सहृदयों पर प्रहार करने वाले प्रभु राम के बाण बताया है।

प्रश्न 20 'सुन महाजन! चोरी होती चार चरनन की।' पंक्ति में सेनापति के 'महाजन' और 'चरन' शब्द से क्या अभिप्राय है?
उत्तर – प्रस्तुत पंक्तियों में श्लेष चमत्कार के कारण 'महाजन' का अर्थ 'महापुरुष' और 'व्यापारी' है तथा चरण शब्द का अर्थ चरण या पद्य चरण (पंक्ति) तथा चार कोडियाँ हैं।

प्रश्न 21 'वित्त की सी थाती मैं कवित्तन की राज कौं' का आशय स्पष्ट कीजिये।
उत्तर – कवि सेनापति का कवित्त धन के समान है, ये कवित्त कवि की धरोहर है, जिन्हें वह राज्य अर्थात् काव्य रसिकों को समर्पित कर चुका है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रश्न 22 'कालिन्दी की धार निरधार है अधर' प्रस्तुत पंति में सेनापति ने किसकी किससे उपमा दी है?
उत्तर – प्रस्तुत पंक्ति मे कवि सेनापति ने मनमोहिनी नायिका के केश सौन्दर्य की तुलना कालिन्दी अर्थात् यमुना से की है और बताया है कि यमुना का प्रवाह आकाश निराधार शोभित हो रहा है।

प्रश्न 23 'दीपति दिनेस कोटि हूँ ते अधिकानि पैं' प्रस्तुत पंक्ति में किसकी दीप्ति को करोड़ों सूर्यों से भी अधिक बताया है?
उत्तर – कवि सेनापति ने अपने आराध्य प्रभु श्रीराम के यश की दीप्ति को करोड़ों सूर्यों से भी अधिक बताया है।

प्रश्न 24 'होति है मरम्मति विविध जलजन्त्रन की' प्रस्तुत पंक्ति में किस ऋतु का वर्णन किया है?
उत्तर – प्रस्तुत पंक्ति वाले पद में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया गया है।

प्रश्न 25 'सेनापति आवन कह्यो है मन भावन सु, लग्यो तरसावन विरह जुर जोर ते।' कवि ने किस ऋतु के कारण नायिका का विरह ज्वर अधिक बढ़ने लगा था और क्यों?
उत्तर – वर्षा ऋतु के कारण नायिका का विरह–ज्वर बढ़ने लगा था क्योंकि उस मनभावन काल में उसका प्रियतम उसके पास में नहीं आया था।

प्रश्न 26 'केसरि निकाई किसलय की रताई लिये ... झलकत है।' प्रस्तुत पद में कवि सेनापति ने किसका चित्रण किया है?
उत्तर – प्रस्तुत पद में सेनापति ने नायिका के होठों के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

प्रश्न 27 'नैने तेरे मत बारे, ये न मेरे मत वारे हैं' प्रस्तुत कथन का आशय स्पष्ट कीजिये।
उत्तर – एक नायिका अपने प्रियतम कृष्ण को सम्बोधित करती हुई कहती है कि मेरे नेत्र तो तुम्हारे इशारों पर चलने वाले बन गये हैं ये मेरी बात को तो जरा–सा भी नहीं मानते हैं।

प्रश्न 28 'कोकिला कलापी कल कूंजत है जित–तित सलिल चहुँ ओर लै।' इस कवित्त में किस रूप में प्रकृति चित्रण किया है?
उत्तर – इस कवित्त में कवि सेनापति ने प्रकृति चित्रण उद्दीपन रूप में किया है।

प्रश्न 29 'सोई सीस धुनै जाके उर में चुभत नीके।' पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिये।
उत्तर – जिसके हृदय में बाण चुभता है वह दर्द से अपना सिर धुनता है इसी प्रकार सेनापति के कवित्त जिसके हृदय में बिध जाते हैं वह उन्हीं के मनोनुकूल हो जाता है।

प्रश्न 30 कवि सेनापति ने अपनी रचनाओं को और किस प्रकार से चमत्कृत किया है?
उत्तर – कवि सेनापति ने अपनी कृति सृजन में ब्रज भाषा के अतिरिक्त फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी किया है – वे व्यवस्था प्रिय थे और परिमार्जित भाषा का प्रयोग करते थे उनके काव्य में माधुर्य भी रहा है और भावगाम्भीर्य भी।

6.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 सेनापति ऋतु वर्णन की विशेषताओं पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर – कविवर सेनापति की दो प्रमुख रचनाएँ रही हैं जिनमें कवित्त रत्नाकर का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसमें कवि सेनापति ने सभी ऋतुओं का मोहक वर्णन किया है। उन्होंने ऋतु वर्णन के द्वारा प्रकृति के जो संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किये हैं उनके द्वारा तत्कालीन प्रभाव का भी सुन्दर चित्रण किया है। अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति ऋतुगत कष्टों से बचने के लिये सेनापति ने जहाँ विलास–सामग्री की चर्चा की है वहाँ उन्होंने धनवानों और गरीबों के मध्य स्पष्ट विभाजन रेखा खींचकर स्वाभाविकता का पूर्ण निर्वाह किया है जैसे हेमन्त ऋतु के वर्णन में –

'हिम के समीर तेई बरसै विषम नीर,
रही है गरम मौन कोनिन में जाइकै।'

कवि सेनापति की एक विशेष खासियत तो यह रही है कि रीतिकालीन अन्य कवियों की तरह ऋतु वर्णन में नायिका के संयोग व वियोग श्रृंगार के माध्यम से नग्नता को अपनी कलम के समीप नहीं आने दिया। उन्होंने ऋतु वर्णन और प्राकृतिक सौन्दर्य को मात्र आलम्बन के रूप में ही अपनाया है और उन्हीं ने ऋतु वर्णन को स्वतंत्र काव्य

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Lalitpur

विषय के रूप में अपनाया है और अपने सृजन में सामान्य अथवा निर्धन लोगों की जीवनगत चर्या को भी उभारा है जो शायद रीतिकालीन काव्य साहित्य मे प्रथम बार हुआ है। अलंकार प्रिय कवि सेनापति का अलंकृत ऋतु वर्णन की ओर विशेष रुचि नहीं रही है। सामान्य जन के परिचित पशु–पक्षी एवं लता–पल्लवों को ही सेनापति ने ऋतु काव्य में सजा सँवारकर प्रस्तुत किया है जो स्वाभाविक और यथा तथ्य के आग्रह से युक्त है।

प्रश्न 2 सेनापति के काव्य में वर्णित भक्ति–भावना पर संक्षिप्त में अपने विचार व्यक्त कीजिये।

उत्तर – कवि सेनापति राम के परम भक्त थे। उनकी प्रसिद्ध काव्य संरचना 'कवित्त–रत्नाकर' के चौथे तरंग में सेनापति ने 'रामचरित'का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है जिसमें राम की समग्र कथा के स्थान पर कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं को ही सामने रखा है। रामस्तुति, राममहिमा, उनका शील, उदारता, सौन्दर्य एवं भक्ति भाव आदि विविध स्वरूपों का चित्रण कर अपनी भक्ति भावना का परिचय दिया है। तत्सम्बन्धी कवित्तों में पर्याप्त भाव प्रवणता का समावेश करने के साथ–साथ सरसता भी विद्यमान है। उन्होंने बताया कि प्रभु राम के नाम का स्मरण करने से मनुष्य मन व वाणी से निर्मल होता है। इस प्रकार अपने आराध्य राम के प्रति सेनापति की आत्मा ने निवेदन किया है और अत्यन्त मर्यादित, आस्थामय एवं पवित्र भावना पर आधारित भक्ति की है। कवि सेनापति ने अपने आराध्य श्रीराम की भक्ति के साथ–साथ गंगा को पवित्र पावनी मानकरउसके महात्म्य के प्रति अपनी आस्था को व्यक्त किया है। इसी कारण भगवान शिव और नृसिंह भगवान की स्तुति कर के अपनी भावना प्रकट की है अतः इसमें संदेह नहीं है कि सेनापति की भक्ति भावना एक अच्छे कवि तथा भक्त के अनुरूप रही है।

प्रश्न 3 'प्रीति सो बांधे बनाई राखे छवि थिरकाई, काम की–सी पाग विधि कामिनी बनाई है।' प्रस्तुत पंक्तियों के आधार पर सेनापति के श्लेष निरूपण पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिये।

अथवा

सेनापति के श्लेष–वर्णन में सरसता विद्यमान है' कथन को संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – रीतिकाल की विशिष्ट प्रवृत्ति है कि कवियों का चमत्कार प्रदर्शन। बिना उक्ति वैचित्र्य व बिना चमत्कार प्रदर्शन के वे अपनी रचनाओं को वे अपूर्ण मानते थे। कवि सेनापति ने भी उसी परम्परा का अनुसरण करते हुए कवित्त–रत्नाकर के प्रारम्भ में श्लिष्ट पदों की प्रस्तुति की है। यद्यपि उन्होंने शब्दगत श्लेष का ही प्रयोग किया है किन्तु उनमें अनेक अर्थालंकारों का भी समावेश कर दिया गया है। अर्थालंकारों में समतासूचक अलंकारों का प्रयोग किया है और पद के अंतिम चरणों में रखा गया है जिनको हम श्लिष्ट रचनाओं की कुंजी कह सकते हैं। क्योंकि इनके द्वारा व्यक्त किये गये उपमेय औरउपमान उन कवित्तों के दोनों पक्षों को स्पष्ट करते हैं इसमें उपमेय मुख्य रूप से नायिका ही है किन्तु उपमान कवि ने विचित्र ढंग से प्रस्तुत किये हैं एक स्थान पर तो नायिका की तुलना कामदेव की पगड़ी से की है –

'प्रीति सौं बाँधे बनाई राखें छबि थिरकाई,
काम की सी पाग विधि, कामिनी बनाई है।'

कहीं–कहीं पर नायिका को कामदेव की वाटिका के समान मानकर उसका वर्णन किया है कहीं मोहन के समान और कहीं नवग्रहों की माला के समान तो कहीं कान में पहनी जाने वाली लौंग के समान नायिका को प्रस्तुत किया है।

कवि सेनापति के द्वारा इन उपमेयों और उपमानों का बेढंगीपन से प्रयोग किया जाने के कारण साम्य नहीं हो पाया और ऐसे शब्द बहुत कम मिलते हैं जो दोनों पक्षों में अपने गथार्थ को स्पष्ट करते हैं। इस स्थिति में अनेक शब्दों को तोड़–मरोड़कर लगाने का प्रयास किया गया है जिसकी वजह से काव्य में कृत्रिमता दिखाई देती है किन्तु इतना होते हुए भी उनके काव्य में कर्णप्रियता व सरसता विद्यमान है।

प्रश्न 4 'सेनापति का शृंगार वर्णन उपमानों की अधिकता व भावों की तीव्रता से ओतप्रोत है।' कथन का संक्षेप में विवेचन कीजिये।

अथवा

सेनापति के शृंगार वर्णन की विशेषताएँ बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तर – कवि सेनापति द्वारा किया जाने वाला श्रृंगार वर्णन भावात्मकता लिये हुए है। 'कवित्त–रत्नाकर' ग्रन्थ में श्रृंगार के अन्तर्गत कवि ने रीतिकालीन परम्परा का अनुसरण किया है जिसमें नायिका सौन्दर्य वर्णन, नायिका–भेद वर्णन, संयोग एवं वियोग पक्ष का वर्णन किया गया है। सौन्दर्य वर्णन में नायिकाओं के शरीर सौन्दर्य, हाव–भाव तथा अनुभावों की ललित अभिव्यक्ति की है। उन्होंने स्वकीया नायिका के कामल यौवन का व उसके सौन्दर्य का चित्रण करते हुए उसके सभी अंगों एवं नेत्रों की जो छटा बिखेरी है वह अत्यन्त मनोरम है। उन्होंने नायिका के नेत्रों के अनेक उपमान प्रस्तुत किये हैं तथा नायक के मन के खिलौना और वशीकरण के समान बताया है। कवि ने नायिका के अंग सौन्दर्य में नए उपमानों का प्रयोग किया है। उनकी उपमान–योजना भावानुभूतिपूर्ण है। नायिका के नख–शिख वर्णन में यद्यपि परम्परा का अनुसरण किया गया है परन्तु नायिका की अवस्थागत रति–दशाओं का चित्रण करने में उन्होंने सहृदयता का सुन्दर परिचय दिया है। अतः इसमें संदेह नहीं है कि उपमानों की अधिकता एवं भावों की तीव्रता का समावेश लेकर भी सेनापति का श्रृंगार वर्णन अत्यन्त मनमोहक बन पड़ा है।

6.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 सेनापति के काव्य सौन्दर्य पर एक निबन्ध लिखिये।

अथवा

सेनापति के काव्य–सौन्दर्य का विशद् विवेचन प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर – कवि सेनापति रीतिकालीन सभी अन्य कवियों में अत्यन्त समर्थ और प्रतिभावान कवि रहे हैं। ये अलंकार सम्प्रदाय के समर्थक थे। इस तथ्य को असंदिग्ध रूप से सर्वथा स्वीकार किया जाता है कि सेनापति कला और मौलिक दृष्टि से रीतियुगीन कवियों में अग्रगण्य रहे हैं। इनके जन्म के संदर्भ में कोई यथार्थ प्रमाण हमें प्राप्त नहीं हो सके हैं किन्तु उन्होंने अपने वंश परिचय एवं दीक्षा के सम्बन्ध में कहा है कि –

दीक्षित परसराम दादौ है विदित राम,
जिन कीन्हे यज्ञ, जो कि जग में बडाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाकौ,
गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है।
महा जानि मनि विद्यादान हूँ को चिन्तामणि,
हीरामनि दीक्षित तैं पाई पण्डिताई है।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है।।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में सेनापति की गणना साधारण भक्त कवियों के रूप में की है किन्तु कदाचित नाम की भ्रान्ति के कारण सेनापति को भक्तिकालीन माना गया है। इनकी स्थिति तो रीतिकाल में आचार्य कवि के रूप में स्वयं सिद्ध हो जाती है। इनकी दो प्रमुख रचनाएँ ख्याति प्राप्त है – 'काव्यकल्पद्रुम' और 'कवित्त–रत्नाकर'। कवित्त–रत्नाकर में नायिका भेद व विरह–वर्णन के प्रसंग में षड्ऋतु–वर्णन तथा श्लेष–चमत्कार अति प्रशंसनीय है। उन्होंने अपने काव्य को चोरी से बचाये रखने के उद्देश्य से प्रत्येक छन्द में अपने नाम की निशानी छोड़ी है।

काव्य सौन्दर्य

(क) भाव सौंदर्य

वैसे रीतिकाल में काव्य अलंकार प्राधान्य रहा है और सेनापति ने भी इस परम्परा का निर्वाह किया। ये भी अलंकारवादी कवि थे। इनके काव्य में विविध भावों का समावेश हुआ है। इनका ऋतु वर्णन अद्वितीय रहा है। कवि सेनापति भगवान श्रीराम के परम भक्त थे, साथ ही इन्होंने प्रभु कृष्ण और भगवान शंकर की स्तुतिपूर्ण भक्तिभाव से की है। कवि की अभिरूचि तीर्थ सेवा और पतित पावनी गंगा की स्तुति करने में भी कायम रही। अतः सेनापति के काव्य में श्रृंगार और भक्ति की सलिलें प्रवाहित होती हैं इनके काव्य सौन्दर्य को भाव पक्ष की दृष्टि से निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. शृंगार की सरसता – सेनापति द्वारा विरचित 'कवित्त–रत्नाकर' ग्रन्थ में ऋतु और शृंगार का सरस वर्णन किया है। रूप सौन्दर्य का निरूपण, नायिका भेद–वर्णन तथा शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का सुन्दर चित्रण इनका प्रमुख आकर्षण रहा है। कवि ने स्वकीया नायिका का बहुत ही मनोहर वर्णन किया है –

'फूलन सौ लाल की बनाई गुही बेनी माल,
भाल दीन्ही बेंदी मृगमद की असित है।
अंग–अंग भूषण बनाई ब्रज भूषण जू,
बीदो निज कर की खवाई अतिहित है।'

कवि सेनापति ने नायिका के अंग–प्रत्यंगों की शृंगार सुषमा का चित्रण करते हुए उसके नेत्रों का सौन्दर्य कवित्त में प्रस्तुत किया है –

'करत कलोल स्रुति दीरघ, अमोल तोल,
छुवै दृग–छोर छवि पावत तरौना हैं।
नाहिनै समान उपमान और सेनापति,
छाया कहूँ धरत चकित मृग छौना है।
स्याम है वरन ज्ञान धन के हरन मानो,
सूरति को धरै बसीकरन को टोना हैं।
मोहत है करि सैन चैन के परम ऐन,
प्यारी तेरे नैन मेरे मन के खिलौना हैं।।'

सेनापति ने नायिका के अंगों का चित्रण करने में नवीनतम उपमानों का सुन्दर प्रयोग किया है। उन्होंने जहाँ एक ओर नायिका के होठों के लिये तथा दूसरे ओर मुख सौन्दर्य के लिये भावानुभूतिपूर्ण उपमानों की योजना की है। प्रस्तुत पद अंश में नायिका के अधर सौन्दर्य का वर्णन किया है –

'केसरी निकाई किसलय की रताई लिये,
झाई नहीं जिनकी धरत अलकत हैं।
दिनकर–सारथी तैं सेना देखियत राते,
अधिक अनार की कली तैं आरकत हैं।'

इसी प्रकार सेनापति ने नायिका के मुख सौन्दर्य का वर्णन –

'कुन्द से दसन घन, कुन्दन वदन तन,
कुंद सो उतारि धरि क्यों बनै बिछुरि कैं।
लोभा–सुख–कन्द, देख्यो चाहिये बदन चन्द,
प्यारी जब मन्द मुसकनि नैकु मुरि कै।'

कवि ने नायिका के नख–शिख वर्णन के साथ ही ऋतु वर्णन के माध्यम से संयोग का परिपोष दिखाया है। उन्होंने परम्परानुसार नायिका की अवस्थागत–रति–भाव दशाओं का भी चित्रण किया है और विरह की भी प्रायः सभी दशाओं के चित्र भी अपने कवित्तों में उभारे हैं –

'कल्प–सी रात्रि, सो तौ सोये न सिराती क्यों हूँ,
सोई–सोई जागे पै न प्रात पैखियत है।
सेनापति मेरे जान दिन हूँ ते राति भई,
दिन मेरे जान सपने में देखियत है।'

कवि ने विरह वर्णन में सुन्दर भावों को चित्रित किया है –

'कौन बिरमाये, कित धाये, अजहुँ न आये,
कैसे सुधि पाऊँ मदन गोपाल की।'

विरह काल में प्रायः वर्षा व वसंत ऋतु कष्टदायी होती है। कवि ने विरह विदग्धा नायिका को पलाश के फूल की स्थिति, दहकते हुए अंगारे के समान स्पष्ट की है – इस कारण से नायिका उदास और खिन्न रहती है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'जौ तै प्रान प्यारे परदेश को पधारे तौ तै,
विरह तै भई ऐसी वा तिथि की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहि कमल–नैनी,
सेनापति अनमनी बैठीयै रहति है।'

वर्षा ऋतु में नायिका विरह संताप बाढ की तरह से उफान लेने लगता है –

'दूरि जदुराई सेनापति सुखदायी देखौ,
आई ऋतु पावस न आई प्रेम पतिया।
धीर जल धीर की सुनि धुनि धर की,
दर की सुहागनि की छोर भरी छतियाँ।'

अतः कवि सेनापति ने संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का मनोहारी वर्णन किया है।

2. भक्ति भावना का निरूपण – कवि सेनापति राम भक्त थे, उन्होंने अपने ग्रन्थ में रामचरित का सुन्दर वर्णन किया है जिसमें श्रीराम के सौन्दर्य, उनका शील, उदारता, महिमा और भक्ति भाव का चित्रण किया गया है। उन्होंने मन और विवेक की शुद्धि के लिये राम नाम का स्मरण ही महत्त्वपूर्ण उपाय बताया है –

'एती राम–कथा ताहि कैसे कै बखानै नर,
जातै ए विमल बुद्धि बानी के बिहीने हैं।
सेनापति यातै कथा–क्रम को प्रनाम करि,
काहू–काहू ठोर के कवित्त कछु कीन्हे हैं।'

सेनापति ने सम्पूर्ण राम कथा को कुछ ही कवित्तों के माध्यम से संक्षिप्त में अंकित किया है और भगवान राम के चरणों में अपना प्रणाम निवेदन किया है। इसी तरह कवि ने गंगा की अवित्रता व उसके महात्म्य को पूर्ण आस्था के साथ सुस्पष्ट किया है –

'काल ते कराल कालकूट कंठ माँझ लसै,
व्याल उर–भाल आगि भल सब ही समै।
व्याधि के अरंग ऐसे व्यापि रह्यो आधो अंग,
रह्यो आधो अंग सो सिवा की बकसीस मै।'

इसी प्रकार भगवान शिव और भगवान नृसिंह की भी स्तुति कवि ने पूर्ण भक्ति भावना से की है–

'आप तव देखियें, न देखो करतूत मेरी,
अधम उधारनि की तेरे सिर पाग रै।
मो–सो अपराधी न तो–सो सरनहार,
मो–सो अवगुनी है, न तो सो गुन आग रै।'

इस प्रकार कवि सेनापति के काव्य में भक्ति–भावना का सुन्दर चित्रण हुआ है जो आस्थामय और आत्म निवेदनपूर्ण दैत्य भाव को लिए हुए है।

3. प्रकृति का निरूपण – कवि सेनापति ने अपने काव्य में प्रकृति का चित्रण भी काफी प्रभावशाली ढंग से किया है। उन्होंने षड्ऋतुओं का वर्णन करते समय प्रकृति को आलम्बन रूप, उद्दीपन रूप और अलंकारिक रूप में प्रस्तुत किया है। कवि ने वसंतऋतु की छटा का अत्यन्त आकर्षक वर्णन किया है उसमें भौरें, कोयल, मोर आदि को प्रभावित होते हुए दर्शाया है –

बन्दी जिमि बोलत विरद वीर कोकिल हैं,
गुंजत मधुपगन गुन गहियत है।
आवै आस–पास पुहुपन की सुवास सोई,
सौधे के सुगन्ध माँझ सने रहियत है।

इसी प्रकार ग्रीष्मकालीन ऊमस और तपिश का वर्णन किया है –

'वृष को तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल विकराल बरसत है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तपति धरनि जग जरति झरनि सीरी,
छाँव को पकरि पंथी पंछी विरमत है।
सेनापति नेकु दुपहरी ढरत होत,
धमका विषम ज्यों न पात खरकत है।'

उन्होंने एक भावुक कवि की भाँति प्रकृति के प्रत्येक रूप का चित्रण अत्यन्त सफलता से किया है। सेनापति ने एक ओर वर्षा का चित्रण किया है, यही दूसरी ओर निरर्थक गर्जना करने वाले बादलों का निर्मल रूप उतारा है–

'दामिनी दमक सुरचाप की चमक, स्याम,
घटा की झमक अति घोर घन घोर तै।
कोकिला, कलापी, कल कूंजत हैं जित–तित,
सीकर ते सीतल समीर की झंकोर तै।'

इसी प्रकार हेमन्त ऋतु का वर्णन भी दृष्टव्य है –

'हिम के समीर तेई बरसैं विषम तीर,
रही है गरम मौन कोनन में जाइ कै।
धूय नैन बहैं लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिये में लगाई रहै नेकु सुलगाई कै।
मानो भीति जानि महासीत तै पसारि पानि,
छतिया की छाँह राख्यो पाउक छुपाई कै।'

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सेनापति के काव्य का भाव पक्ष सरस, सशक्त, सौन्दर्ययुक्त और भावात्मक है।

(ख) कलात्मक सौन्दर्य

काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से सेनापति का कला पक्ष भी अत्यन्त आकर्षक और प्रभावपूर्ण है। उनके काव्य में भाषा, शैली, अलंकार तथा छन्दादि का उचित संयोजन दिखाई देता है – सेनापति के काव्य के कलापक्ष को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं –

1. भाषा सौष्ठव – सेनापति ब्रज भाषा के कवि हैं और भाषा पर इनका असाधारण अधिकार था। इस संदर्भ में तो समालोचकों ने यहाँ तक कह दिया कि 'साधारण शब्द भी सेनापति के हाथ में आकर सैनिक की तरह से सशक्त बन जाते हैं। फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने सहजता से किया है। उनके काव्य में प्रसाद और ओजगुण की प्रधानता है।

कवि सेनापति ने परिमार्जित भाषा का प्रयोग किय है जिसकी वजह से तत्सम शब्दों का काफी प्रयोग हुआ है–

'सतगुरु सार की सवारी है विरंचि पचि,
कंचन–खचित चिन्तामनि के जराई की।'
कंज के समान सिद्ध मानुस मधुप निधि,
परम निधान सुरसरि मकरंद के।'

सेनापति ने अनेक संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है तथा भावाभिव्यक्ति में कोमलता लाने के लिये अर्द्धतत्सम औ तद्भव शब्दावली का प्रयोग भी किया है। इनके काव्य में ब्रज भाषा के नाद सौन्दर्य का परिपोष हुआ है। इनके काव्य में देशज शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं पर कवि ने शब्दों की तोड़–मरोड़ भी की है जिसका कारण काव्य में श्लेष अलंकार एवं यमक का प्रयोग रहा है –

'अच्छर है विसद करति उषै आप सम,
जाते जगत को जडताऊ बिनसति है।
मानौ छवि ताकी उदवत सविता की सेना,
पति कविता की कविताई विलसति है।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग – कवि सेनापति ने अपने काव्य में भाषागत सौन्दर्य एवं भावगत सशक्तता लाने के लिये मुहावरों व लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। यथा – पार न परत, बात कहत, बिलात दिन आदि।

यद्यपि इनके काव्य में अभिधाशक्ति का अधिक प्रयोग किया गया है किन्तु साथ में व्यंजना शक्ति का पुट उसमें सरसता लाने की दृष्टि से किया है। उन्होंने मानवीकरण के प्रयोग में व्यंजना का अच्छा समावेश किया है। इस प्रसंग में गर्मी की दुपहरी का यह दृश्य जिसमें पवन को भी छांव में विश्राम करते बताया है –

'मोरे जाने पोनो सीरी ठौर को पकरि कोनो,
घरी एक बैठी कहुँ धामैं बितवत है।'

3. शैली विधान – इनका प्रमुख ग्रन्थ 'कवित्त रत्नाकर' मुक्तक शैली में लिखा गया है जिसमें वर्ण्य विषय के अनुसार वर्णनात्मकता एवं भावात्मकता है। रामकथा, शिवभक्ति एवं गंगा स्तवन आदि से सम्बन्धित कवित्त वर्णनात्मक है। शृंगार सुषमा एवं ऋतु वर्णन अत्यन्त भावात्मक है। सेनापति ने कवित्त के अतिरिक्त छप्पय और सवैया भी लिखे हैं –

'खण्ड–खण्ड सब दिग मण्डल जलद सेत,
सेनापति मानौ सृंग फटिक पहार के।
अम्बर अडम्बर सौं उमडि–घुमडि छिन,
छिछकैं छछरिछिति अधिक उछार के।
सलिल सहल मानौ सुधा के महल नभ,
तूल के पहल कीधौं पवन अधार के।
पूरब को भाजत है रजत से राजत है,
गग गग गाजत है गगन घन क्वार के।'

4. अलंकार विधान – कवि सेनापति के काव्य में अनुप्रास, यमक, पुनरूक्तिप्रकाश, उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यतिरेक, काव्यालिंग आदि अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह स्वयं अलंकार सम्प्रदाय का समर्थक होने के कारण अपने काव्य में अलंकार चमत्कार का पूरा–पूरा प्रयास किया है – अनुप्रास अलंकार

'बरन कनक बनी बानक बनक आई,
झनक मनक बेटी जनक नरिद की।'

इसी प्रकार यमक अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग –

'लुवन की लपटैं वे चहुँ ओर लपटैं ये,
ओढे सलिल पटै न चैन उपजत है।'

कवि सेनापति श्लेष के प्रयोग में तो ख्याति प्राप्त थे –

'बानरन राखै तोरि डारत है अरि लंकै,
जाके वीर लच्छनि विराजत निदान है।
अंगन को राखे बाहु दूरि करै दूषन कौ,
हरि सभा राजे राज तेज को निधान है।'

निष्कर्ष

सेनापति का काव्य सौन्दर्य अत्यन्त आकर्षक और मनोरम रहा है जिसमें शृंगार रस की मधुरता, कोमलता और सौन्दर्य है वहीं भक्तिभाव की दीनता और आस्था है, प्रकृति की मनोरम झाँकी है तो श्लेष का चमत्कार छन्द, शैली और भाषागत समन्वय के साथ अभिव्यक्ति अत्यन्त प्रखर है।

प्रश्न 2. सेनापति के प्रकृति वर्णन पर एक निबन्ध लिखिये।

अथवा

'सेनापति ऋतु वर्णन में अग्रणी थे।' उक्ति के आलोक में उनके ऋतु वर्णन की विशेषताओं को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

अथवा

सेनापति के काव्य में प्रकृति चित्रण शीर्षक पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिये।

अथवा

सेनापति के ऋतु वर्णन की विशेषताओं की सोदाहरण समीक्षा कीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तर – हिन्दी साहित्य में प्रकृति का चित्रण एवं ऋतु वर्णन की परम्परा संस्कृत साहित्य से विरासत में मिली है। संस्कृत साहित्य में प्रकृति वर्णन को उद्दीपन विभाव के रूप में अपनाया गया है और हिन्दी साहित्य में प्रकृति का आलम्बन रूप में कम और उद्दीपन रूप में अधिक चित्रण हुआ है। रीतिकाल में नायक–नायिका भेद, उनके श्रृंगार विलास, हाव भाव व मनोदशाओं का चित्रण करने में प्रत्येक कवि ने अपनी प्रतिभा का परिचय देना चाहा और इसी कारण से सभी में ऋतु वर्णन और प्रकृति चित्रण के दृश्यों को उद्दीपन सामग्री के रूप में अपनाया था और नायक नायिकाओं के मनोभावों और श्रृंगार विलासों को उद्दीप्त करने के लिये प्राकृतिक उपादानों का सामग्री रूप में उपयोग किया है। कवि सेनापति इस संदर्भ में एक अपवाद रहे हैं। इन्होंने षड्ऋतुओं का विस्तार से वर्णन कर प्रकृति के अनेक चित्र उभारे हैं किन्तु इनको विशेष ख्याति आलम्बन रूप में वर्णन करने से प्राप्त हुई है। इस दृष्टि से सेनापति को रीतिकाल कवियों में विशिष्ट माना गया है। इनके काव्य के ऋतु वर्णन और प्रकृति चित्रण को हम निम्न बिन्दुओं में स्पष्ट कर सकते हैं –

प्रकृति का आलम्बन

षड्ऋतुओं के वर्णन में कवि सेनापति ने प्रकृति के अनेक वर्णीय चित्र प्रस्तुत किये हैं। एक ओर ऋतु परिवर्तन के कारण प्रकृति में जो नवीनता आई है उससे सभी प्राणी आनन्दित होते हैं किन्तु कुछ कष्टों का सामना भी करना होता है। इस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति के लिये सेनापति ने रीतिकालीन चमत्कार प्रदर्शन को नहीं अपनाया तथा सीधे सरल शब्दों में मार्मिकता व्यक्त की है। यथा –

'वृष को तरनि तेज सहसों किरन करि,
ज्वालन के जाल विकराल बरसत है।
तपति धरनि जग जरत धरनि सीरि,
छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत है।
सेनापति नेक दुपहरी के ढरत होत,
धमका विषम ज्यों न पात खरकत है।
मेरे जान पौनो सीरी ठौर को पकरि कोनो,
धरी एक बैठी कहीं घामे वितवत है।'

प्रस्तुत पद में कवि ने ग्रीष्म ऋतु का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार का वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। गर्मी की भीषणता के वर्णन में तथा तहखानों में पाई जाने वाली ठण्डक के विषय में कवि ने लिखा है कि –

'जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने, तल
ताख तहखाने के सुधारि झारियत है।
होति है मरम्मत विविध जल जंत्रन की,
ऊँचे–ऊँचे अटा ते सुधा सुधारियत है।
सेनापति अतर गुलाब अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं।
ग्रीषम के वासर बराइवै कौ सीरे सब,
राजभोग काज साज यों सम्भारियत हैं।'

प्रकृति का उद्दीपन रूप

रीतिकाल तथा भक्तिकाल में प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित करने की परम्परा चली आई है। सेनापति ने यद्यपि उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण कम से कम किया है किन्तु यह कहना होगा कि उनका दृष्टिकोण यहीं तक सीमित नहीं रहा, उनकी मौलिक विचारधारा और प्रकृति–अनुराग ने उसे अन्य रूपों में देखा है। कवि ने अनेक स्थानों पर प्रकृति के रम्य रूप पर विमोहित होकर उसका आकर्षक चित्रण किया है। उद्दीपन–विभाव तो अज्ञात रूप में साहित्यिक परम्परा के कारण ही यत्र–तत्र अपनी झलक प्रस्तुत कर गया। शरद ऋतु के वर्णन में–

'पावस निकास तावैं पायो अवकास, भयो,
जोन्ह को प्रकास सोना ससि रमनीय को।
विमल अकास होत बारिदि विकास,
सेनापति फूले कास, हित हंसनि के जिय को।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दिति न गरद मानों रंगे हैं हरद सालि,
जोहत जरद को मिलावे हरि पीय को।
मत्त है दुरद मिट्यो खन्जन दरद, रितु,
आई है सरद सुखदायी सब जिय को।'

सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति

प्रकृति में विहार करते हुए कवि सेनापति की दृष्टि सूक्ष्म वस्तुओं की ओर भी गई। क्वार की वर्षा का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि –

खण्ड–खण्ड सब दिग्मण्डल जलद सेत,
सेनापति मानो सृंग फटिक पहार के।
अम्बर अडंबर सों उमडि–घुमडि दिन,
छिछकै छछारे छिति अधिक उछार के।
सलिल सहल मानों सुधा के महल नम,
तूल के पहल कीधौं पवन अधार के।
पूरब को भाजत है, रजत से राजत है,
गगन घन गाजत है गगन घन क्वार के।'

प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने खण्ड–खण्ड जलद सेत और 'छिछकै छछारे छिति' के प्रयोग में स्पष्ट किया है कि क्वार की श्रावन के बादलों को 'गगन अगन घनानन्द ते सघन का रूप नहीं बल्कि शुभ्र रंग के छोटे–छोटे बादल हैं जो यदा कदा थोड़ी–थोड़ी बूंदें बरसाते हैं। इन पदों को पढ़ने के बाद यह ज्ञात होता है कि कवि का प्रकृति से पूर्णतम अनुराग है और कवि की पैनी नजर से कुछ भी नहीं बचा।

तत्कालीन प्रभाव

साहित्य परम्परा के साथ–साथ कवि के प्रकृति वर्णन में तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का प्रभाव भी यत्र–तत्र दिखाई देता है। रीतिकालीन लगभग सभी कविगण राज प्रसादों की कृपा पर आश्रित रहते थे और अपने आश्रयदाता राजा की चाटुकारिता में काव्य रचना करना उनके काव्य का आदर्श था। लगभग सभी कवियों की भांति सेनापति ने भी प्रचलित प्रथा के अनुरूप अपने ऋतु वर्णन में राज प्रसादों की स्थिति का ही अधिक वर्णन किया है –

'जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने तल,
ताब तहखाने के सुधारि झारियत हैं।
होती है मरम्मति विविध जल जंत्रन की,
ऊँचे–ऊँचे अटा, ते सुधा सुधारियत हैं।'

इसी प्रकार शीतकाल में भी कवि की दृष्टि, गरम हमाम और शाल दुशालों पर पड़ी है –

'प्रात उठि आइहौ को तेलहि लगाइवे को,
मलि मलि न्हाइबे को गरम हमाम है।
ओढिवे को साल जो विसाल है अनेक रंग,
बैठिवे को सभा जहां सूरज को धाम है।'

जनसाधारण का चित्रण

जिस प्रकार कवि सेनापति ने परम्परा को तोड़कर प्रकृति का निखरा हुआ हमारे सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, उसी प्रकार सामाजिक विषमताओं की ओर भी उनका ध्यान गया है। उन्होंने परम्परा से मुक्त होने के कारण इस प्रकार के वर्णनों में अत्यन्त प्रभाव समाहित किया है–

'सीत को प्रबल सेनापति कोपि चढ्यो दल,
निबल अनल गई, सूर सियराई कै।
हिय के समीर तेई बरसै विषम तीर,
रही है गरम मौन कोनन में जाई कै।।
घूम नैन बहै लोग आगि पर गिरे रहै,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हिय तो लगाई रहै नेकु सुलगाई कै।
मानौ भीत जानि महासीत तै पसारि पानि,
छतिया की छाँह राख्यो पाउक छिपाइ कै।।'

प्रस्तुत छन्द रचना के अन्त में शीतलता का जन साधारण की अनुमति एवं स्थिति के अनुरूप वर्णन है इसमें ऐसा लगता है कि कवि ने अपनी सम्पूर्ण भावुकता को उडेलकर प्रस्तुत चित्रांकन किया गया है जिसमें मर्मस्पर्शी की प्रबल शक्ति है। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'कवि ने मार्मिक स्थलों के अनुसार चुनाव में पूर्ण भावुकता का परिचय दिया है।' सेनापति में युगकालीन साहित्य परम्परा एवं सामाजिक परिस्थिति की छाया होते हुए भी ऐसे मार्मिक स्थल पर्याप्त मिलते हैं जो कवि को प्रकृति चित्रण की दृष्टि से रीतिकाल का कवि तो घोषित करते ही हैं, साथ ही हिन्दी साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर आचार्यश्री उमाशंकर के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'सेनापति के ऋतु वर्णन में ऋतुओं के उत्कर्ष को वर्णित करने की चेष्ठा विशिष्ट रूप से देखी जा सकती है।'

प्रकृति वर्णन की स्वाभाविकता

कवि सेनापति ने ऋतु वर्णन के द्वारा प्रकृति के जो चित्र प्रस्तुत किये हैं उसमें प्रकृति के तत्कालीन प्रभाव का भी स्वाभाविकता से चित्रण किया है। अन्य कवियों के समान ऋतुगत कष्टों से बचने के लिये सेनापति ने जहाँ विलास–सामग्री की चर्चा की है वहाँ पर उन्होंने गरीब और अमीर के बीच स्पष्ट रेखा खींचकर स्वाभाविकता का पूर्ण निर्वाह किया है –

'हिम के समीर, तेई बरसै विषम तीर,
रही है गरम मौन कोनन में जाइ कै।
धूम नैन बहैं लोग आग पर गिरे रहैं,
हिय सों लगाई रहै नेकु सुलगाई कै।'

कवि सेनापति ने ऋतु वर्णन की आड़ में नायिका के नग्न चित्रों का अंकन करने की परम्परा को नहीं अपनाया है। उन्होंने तो ऋतु वर्णन में प्रकृति को आलम्बन रूप में ही अपनाया है। अतः सेनापति का ऋतु वर्णन एक स्वतंत्र काव्य है।

प्रकृति का रसोन्मेष

कवि सेनापति के काव्य में प्रकृति स्वयं आलम्बन बनकर पाठकों को भावानुभूति से आगे रसानुभूति तक ले जाती है। आधुनिक आलोचक 'प्रकृति रस' की सामग्री सेनापति के काव्य में ही प्राप्त कर सकते हैं। भाव पक्ष में कोमल भावों की प्रधानता है और कठोर रूपों का सर्वथा अभाव रहा है। उनकी सभी काल्पनिक उडानों में काव्य की स्वाभाविकता का ख्याल रखा गया है। भाषा में संस्कृत भाषा की प्रचलित शब्दावली की प्रचुरता के बावजूद भी स्पष्टता, सरलता और सरसता का पूर्ण निर्वाह हुआ है। इनके ऋतु वर्णन में बिम्बात्मक रूप प्रधान है किन्तु उन्हें कहीं भी अलंकार विहीन नहीं रखा। इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि रीतिकालीन ऋतु काव्य पर सेनापति के ऋतु–काव्य का अनेक रूपों में प्रभाव पड़ा है किन्तु सेनापति के ऋतु–वर्णन का प्रभाव का क्षेत्र व्यापक नहीं रहा है। इसका मूल कारण यह था कि रीतिकालीन राजनैतिक दृष्टि से यह पतन का युग था। कविगण विलासिता की संतुष्टि के लिये ऐन्द्रीय सुख भोग की सामग्री प्रस्तुत करने पर अधिक ध्यान देते थे। अतः ऋतुओं का वर्णन करते समय ऋतु अनुकूल कामोद्दीपन के साधन प्रदान करते थे और सेनापति इससे दूर रहे। यही कारण था कि रीतिकालीन कवियों की रचनाओं में सच्चे प्रेम का अभाव रहा है। इस संदर्भ में पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि 'प्रकृति के सम्पर्क में आते ही सभी लोग हृदय में आनन्द की अनुभूति करने लगते हैं किन्तु यह सच है कि उसके लिये हमारी मानसिक स्थिति भी चाहिये .... संगीत को समझने के लिये जैसे विशेष समझ की आवश्यकता है उसी तरह सौन्दर्य की अनुभूति के लिये विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है।' अतः स्पष्ट होता है कि मानव प्रकृति के संसर्ग में रहकर भी उसका सौन्दर्य नहीं देख पाता है। मेघ की घटा आकाश में उदित होकर सभी के चित्तों को अनुरागपूर्ण नहीं कर देती है। वसन्त का मलय समीर सभी को चंचल नहीं करता है। मनुष्य अपने भाव को लेकर ही प्रकृति के आनन्दोत्सव में सम्मिलित होता है। अगर व्यक्ति के हृदय में विषाद है तो वह सुन्दर वातावरण में भी कष्ट का अनुभव अवश्य ही करेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.3 निष्कर्ष

अन्त में हम कह सकते हैं कि रीतिकाल श्रृंगार का युग था। अतः मध्ययुग में कवियों ने रमणी के भावोच्छवास में ऋतुओं की सार्थकता को समझा है। जिन कवियों ने सेनापति की परम्परा का निर्वाह किया वे बहुत कम हैं। सेनापति आलम्बन रूप में ऋतु वर्णन करने के लक्ष्य से बैठे थे किन्तु परम्परा का ध्यान रखकर तथा परिस्थितियों से बाध्य होकर उन्होंने उन सभी प्रवृत्तियों को स्थान दिया जिन्हें आगे चलकर काफी सम्मान मिला। अतः कह सकते हैं कि आलम्बन रूप में उनका प्रकृति वर्णन अद्वितीय रहा है।

6.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. कवि सेनापति के प्रकृति सौष्ठव पर प्रकाश डालिए।
2. सेनापति के काव्य–सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–7 : भूषण

संरचना

7.0 कवि परिचय

7.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

7.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

7.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

7.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

7.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

7.3 सारांश

7.4 अभ्यास प्रश्नावली

7.0 कवि परिचय

महाकवि भूषण का जन्म सं. 1670 वि. में उत्तर प्रदेश के तिकवांपुर (त्रिविक्रमपुर) गाँव में हुआ था। इनके पिताश्री का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। वैसे इनके वास्तविक नाम का आजतक किसी को पता नहीं है। भूषण तो एक उपाधि है जो चित्रकूट के सोलंकी राजा रूद्र ने उन्हें प्रदान की थी। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ शिवराज भूषण में लिखा है कि –

'देसनि देसनि ते गुनी आवत जाँचन ताहि।
तिनमें आयौ एक कवि, भूषण कहिये जाहि।।'

भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल की प्रशस्ति में कविताओं का सृजन किया है और दोनों के द्वारा ही इनको भरपूर सम्मान मिला है। दोनों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कवि ने कहा है –

'शिवा को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।'

हृदयराम सोलंकी, साहूजी, बाजीराव, जयसिंह का आश्रय भी उन्होंने प्राप्त किया था किन्तु भूषण के मनोनुकूल आश्रयदाता केवल दो ही थे महाराज शिवाजी और वीर केसरी छत्रसाल। ऐसा कहा जाता है कि जब ये विदा होने लगे तो महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी में कंधा लगाया था। कवि भूषण ने शिवा–बावनी, छत्रसाल दशक, भूषण–हजारा, भूषण–उल्लास आदि प्रसिद्ध कृतियाँ लिखीं। शिवराज भूषण में इनकी प्रायः सभी रचनाएँ मिल जाती हैं।

यद्यपि रीतिकाल श्रृंगार युग था किन्तु भूषण ने उस युग के प्रभाव से अलग हटकर वीररस की कृतियां तैयार की। परम्परा पर कठोर प्रकार किया। वैसे उन्होंने श्रृंगार रस के पद भी लिखे किन्तु उनका मन वीररस की रचनाओं में ही अधिक रमा।

भूषण का काव्य ओजगुण से समन्वित है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार रहा है। उन्होंने वीर रसानुकूल भाषा को अपनाकर अपनी क्षमता का उपयोग सजीव बिम्बों के निर्माण में किया है। भूषण रीतिबद्ध कवि थे तथा दुर्गा व विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती की एक साथ आराधना करने में निरत रहें। उनकी कविताएँ जन–जन के कण्ठ का सुरीला हार बन गई।

कुछ लोगों का कहना है कि उनकी कविताओं में साम्प्रदायिकता की बू आती है किन्तु यह आरोप पूर्णतः निराधार है, वे तो उदार प्रवृत्ति के थे और मानवीय गुणों का सम्मान करते थे। अपने पिता को कैद करने वाले औरंगजेब को उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया कि उसने उनकी पवित्र मर्यादाओं का उल्लंघन कर ऐसा कार्य किया है मानों मक्का में आग लगा दी हो –

'किबले के ठौर बाप बादशाह शाहजहाँ,
ताको कैद कीन्हों मानो मक्के आग लगाई है।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि भूषण भारत की राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक कवि रहे हैं। उनकी वाणी आज भी देश की सुषुप्त चेतना को जगाने में सक्षम है।

भूषण की रचनाएँ ब्रज भाषा में है किन्तु अनेक विदेशी शब्दों का भी खुलकर उपयोग किया है। इतना ही नहीं, भाषा में शब्दों का तोड़–मरोड़ भी पर्याप्त मात्रा में किया गया है साथ ही व्याकरण के नियमों का उल्लंघन भी पर्याप्त मात्रा में किया है वैसे भाषा में वीर भावना का समावेश है।

7.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(शिवाजी शौर्य से चयनित अंश)

(1)

देखत ऊँचाई उघरत पाग, सूधी राह
द्योंसहुं मैं चढैते जो साहस निकेत हैं।
शिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन सल
हेरी, परनालो ते वै जीते जने खेत हैं।।
सावन भादौ को भारी कुहुँ की अँध्यारी चढ़ि।
दुग्ग पर जात मावलीदल सचेत हैं।
'भूषण' भनत ताकी बात मैं विचारी तेरे
परताप–रवि की उन्यारी गढ लेत हैं।।

शब्दार्थ – उघरत = खुल जाती है, द्योंसहूँ = दिन में ही, निकेत = घर, पैदलन = पैदल सेना, कुहु = रात्रि, दुग्ग = दुर्ग, माबलोदल = संगठित सेना, परताप = प्रताप।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी के 'भूषण' नामक पाठ से अवतरित है। यह अंश कवि भूषण द्वारा विरचित 'शिवा–बावनी' नामक काव्य से संकलित 'शिवा–शौर्य' प्रसंग से लिया गया है। जिसमें कवि ने महाराज शिवाजी की वीरता और यश का वर्णन किया है। शिवाजी ने अल्पकाल में अनेक दुर्ग बनवाये। शिवाजी के नाम से ही सारे शत्रु काँप उठते हैं उनका शौर्य व प्रताप सूर्य की भाँति दैदीप्यमान था।

व्याख्या – कवि भूषण वीर शिवाजी द्वारा निर्मित दुर्गों की विशालता का वर्णन करते हुए कहते हैं। जो कोई भी दुर्ग को देखता है उसकी पगड़ी गिर जाती है क्योंकि दुर्गों की ऊँचाई अधिक है। वे सभी दुर्ग शिवाजी के आवास है। इनमें आम रास्तों द्वारा केवल दिन में ही प्रवेश किया जा सकता है। रात में उन दुर्गों की चढ़ाई संभव नहीं है। शिवाजी की आशा पाकर पैदन सेना शत्रुओं पर आक्रमण कर डालती है तथा सैनिकों की विशषता यह है कि वे बड़े–बड़े नालों और नदियों को खेतों–खलिहानों की तरह सुगमता से पार कर जाते हैं। कवि भूषण कहते हैं कि सावन और भादों की घनघोर रातों में उनकी सेना बड़ी सावधानी से दुर्ग पर चढ़ती है। इसी विशेषता के कारण भूषण कहते हैं कि हे सरजा शिवाजी! मैं तुम्हारे प्रताप रूपी सूर्य के प्रकाश में तुम्हारी कविताओं का सृजन करता हूँ।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में स्पष्ट किया है कि अन्धेरी रातों में भी वीर शिवाजी के वीर सैनिक बड़ी आसानी से दुर्ग पर चढ़कर पूर्ण कुशलता के साथ अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर सकते हैं क्योंकि रात के अँधियारे में शिवाजी के प्रताप का प्रकाश सम्पूर्ण अन्धकार का शमन कर देता है।
2. स्वयं कवि भूषण भी शिवाजी के प्रताप रूपी प्रकाश में कविताओं का सृजन करते हैं।
3. प्रस्तुत अंश में कवि भूषण ने शिवाजी के तेज और ओजस्विता को व्यक्त किया है।
4. अनुप्रास और काव्य लिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(2)

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँह हू के
सब पातसाहीन के गढ कोट हरते।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'भूषण कहै' यों अबरंग सो वजीर जीति
लोबे को पुरतगाल सागर उतरते।।
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज
हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते।
चाकर है उजर कियौ न जाय नैक पै,
कछु दिन उबरते तो घने काज करते।।

शब्दार्थ – प्रबल = बलशाली, पातसाहन = राजाओं, अबरंग = औरंगजेब, जीतलीबे = जीत लिये, पठावत = भेजते हैं, मुहीम काज = बादशाही आदेश, हजरत = सेवक का पूज्य, उजर = विरोध, उबरते = चुपचाप रहते, घने = अधिक।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण पाठ्य पुस्तक रीति–रस तरंगिणी के भूषण द्वारा विरचित 'शिवा शौर्य' प्रसंग से अवतरित है जिसमें कवि ने अपनी आस्थानुसार शिवाजी की वीरता और प्रताप का सुन्दर वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि भूषण वीर शिवाजी के प्रताप व उनकी वीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यदि शिवाजी को अवसर मिलता तो वे भारत के पूरब, उत्तर और पश्चिम के बड़े–बड़े सभी राजाओं के सभी किलों और गढ़ों को जीत लेते। औरंगजेब का वजीर कहता है कि यदि शिवाजी को नहीं रोका गया तो भारत के ही नहीं बल्कि विदेशी राजाओं पर भी आक्रमण कर देंगे। वे पुर्तगाल को जीतने के लिए समुद्र में भी उतर सकते हैं। यदि शिवाजी के विरूद्ध बादशाह के कार्यों को साधने के लिये भेजा जाता है तो हम मरने से नहीं डरते हैं क्योंकि हम आपके सेवक हैं और आपके आदेश का विरोध नहीं कर सकते हैं किन्तु हमारा एक निवेदन है कि यदि हम कुछ दिनों तक शिवाजी का विरोध नहीं करते या कुछ दिन सकुशल निकल जाते तो हमें काफी राहत मिल जाती और हम अपने अन्य कई काम आसानी से कर सकते।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में मुगल बादशाह की विवशता का सुन्दर चित्रण किया है।
2. प्रस्तुत अंश में शिवाजी के प्रताप और शत्रु भय की स्थिति स्पष्ट होती है।
3. कवि ने संवाद शैली में नायक प्रतिनायक के भावों का सुन्दर चित्रण किया है।
4. अवतरण में अनुप्रारा और अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(3)

साजि चतुरंग सेन अंग में उमंग धारि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषण' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी–नद मद गैवरन के रलत है।।
ऐल फैल खैल खलक मैं गैल–गैल,
गजन की हेल–पेल सैल उलसत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा मैं लगत जिमि,
थारा पर फरा पाराबार यों हालत है।।

शब्दार्थ – साजि = सजाकर, चतुरंग = चार प्रकार की सेना, उमंग = जोश या उत्साह, विहद = तीव्र, गैबरन = हाथियों, जंग = युद्ध, सैल = पर्वत, उलसत है = उखड़ते हैं, तरनि = सूर्य, थारा = थाल, पारावार = सागर।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक रीति–रस तरंगिणी के भूषण द्वारा विरचित 'शिवा शौर्य' प्रसंग से उद्धृत है जिसमें कवि ने वीर शिवा की विजय यात्रा और विशाल सेना का चमत्कारी वर्णन प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – भूषण कवि वीर शिवाजी की विजय यात्रा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब शिवाजी अपनी चतुरंगी सेना को सजा संवारकर तथा अपने घोडे पर सवार होकर पूर्ण उत्साह के साथ शत्रुओं से युद्ध जीतने चलते हैं तो उस समय की शोभा अत्यन्त चमत्कारिक प्रतीत होती है। युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय नगाड़ों की तीव्र आवाज चारों ओर गूंजने लगती है और उनके हाथियों की मद धारा के आगे बड़े–बड़े नदी और नाले बह जाते हैं अर्थात् हजारों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हाथियों से युक्त उनकी सेना है जिनके गण्डस्थल से प्रवाहित होने वाली मद–धारा बड़ी–बड़ी नदियों के प्रवाह के समान लगती है। सेना के हाथी–घोड़े और पैदल भीड़ के कारण वे आपस में टकराते हुए चलते है और उनमे खलबली मची रहती है तथा गली–गली में उनकी सेना के शब्द गूँजते रहते हैं। उनकी सेना के हाथियों के झमेले से बड़े–बड़े पहाड भी उखडने लगते हैं। पैदल सैनिकों की धूल के कारण सूर्य भी तारे की भाँति दिखाई देने लगता है अर्थात् सेना के चलते सम्पूर्ण वातावरण धूल–धूसरित हो जाता है। सारी पृथ्वी पर खलबली मच जाती है और सागर थाली में भरे हुए पानी की तरह हिलने लगता है।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने कल्पना के चमत्कार के साथ अतिशयोक्ति का प्रयोग किया है।
2. कवि ने शिवाजी के ओज का वर्णन किया है।
3. अनुप्रास, यमक, पुररूक्ति प्रकाश और वीप्सा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
4. अंतिम दो पंक्तियों में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
5. मनहरण कवित्त की गेयता, पद मैत्री, नाद सौन्दर्य और भावाभिव्यक्ति अत्यन्त प्रशंसनीय हैं।

(4)

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती है।
कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं ते वै तीनि बेर खाती हैं।।
'भूषण' सिथिल अंग, भूषण सिथिल अंग,
विजन डुलाती ते वै विजन डुलाती हैं।
'भूषण' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वैं नगन जड़ाती है।।

शब्दार्थ – मन्दर = भवन, गुफा, घोर = भयंकर, विशाल, कन्दमूल = मेवे–फल, पेड़–पौधों की जड, बेर = बार, बेर फल, तिजग = पंखा, सुनसान, नगन = नगीने, नग्न, जड़ाती है = जड्वाती है, जाड़े में ठिठुरती है।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक रीति–रस तरंगिणी के भूषण द्वारा विरचित 'शिवाजी–शौर्य' प्रसंग से अवतरित है जिसमें शिवाजी की प्रशस्ति करते हुए उनके शौर्य का वर्णन किया गया है तथा शत्रु पक्ष की दुर्दशा का सुन्दर चित्र उभारा है।

व्याख्या – कवि भूषण वीर शिवाजी के शौर्य और शत्रु पक्ष की दयनीयता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि छत्रपति शिवाजी के भय के कारण शत्रु पक्ष की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई है। पहले शत्रुओं की स्त्रियाँ ऊँचे–ऊँचे महलों में निवास करती थी और अब वे भय के कारण ऊँचे पर्वतों की गुफाओं में रहने लगी हैं। जो स्त्रियाँ पहले मीठे पकवान खाया करती हैं अब वे ही स्त्रियाँ जंगलों में भटकती हुई पेड–पौधों की जड़ें खा–पीकर गुजर करती हैं। जो स्त्रियां पहले दिन में तीन बार भोजन किया करती थी वे अब बेर की झाड़ियों से चुन–चुनकर तीन बेर फलों से अपनी क्षुधा पूर्ति करने के लिये विवश हैं। पहले उनके शरीर के अंग आभूषणों से लदे रहने के कारण शिथिल रहते थे किन्तु अब भूख की पीड़ा के कारण उनके अंग शिथिल हो गये हैं। जो शत्रु स्त्रियां पहले राज महलों में रहकर एक दूसरे से पंखे डुलवाती थीं किन्तु अब वे निर्जन जंगलों में अकेली भटकती रहती हैं। जो शत्रु रमणियाँ पहले हीरे–मोतियों से जर्क–वर्क रहती थीं वे अब शिवाजी के भय से अपने राज महलों से पलायन कर जंगलों में अर्द्ध नग्न शरीर से जाड़े में ठिठुरती रहती हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में शिवाजी के पराक्रम का अतिशय वर्णन किया गया है।
2. शत्रु पक्ष के भय का सुन्दर चित्रण किया है।
3. यमक अलंकार का चमत्कार दृष्टव्य है।
4. कवित्त छन्द की पद योजना, गेयता और प्रभावोत्पादकता के साथ चित्रात्मकता प्रशंसनीय है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(5)

सवन के ऊपर ही ठाड़ो रहिवे के जोग,
ताहि खरो कियौ पंज–जारिन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम,न वचन बोले सियरे।।
'भूषण' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उडाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भरे,
स्याह मुख नौरंग, सिपाह–मुख पियरे।।

शब्दार्थ – गैर मिसिल = दूसरों की मिसिल, दूसरों के क्षेत्रों के कागजात, गुसैल = क्रोधी, गुसा = क्रोध, उर = हृदय, सियरे = शीतल, विनम्र, बलकन = जोश में बोलने, जियरे = हृदय, जीवात्मा, स्याह = काला, पियरे = पीले।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक रीति–रस तरंगिणी के भूषण द्वारा विरचित 'शिवा–शौर्य' से लिया गया है। इसमें कवि ने शिवाजी के पराक्रम और शत्रु पक्ष द्वारा उनसे सदैव भयभीत रहने की स्थिति का चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – कवि भूषण छत्रपति शिवाजी के शौर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे सभी भारतीय राजाओं के ऊपर रहने वाले अर्थात् सभी पर अपने शौर्य का प्रभाव रखने वाले और अग्रगण्य हैं। किन्तु मुगल बादशाह औरंगजेब ने जब उन्हें अपने दरबार में बुलाकर अधीनस्थ छोटे राजाओं के साथ खड़ा रहने को कहा गया तो शिवाजी को अत्यन्त क्रोध आया। दूसरे के क्षेत्र के माप आदि के कागजों की तरह स्वयं को दूसरों के अधीन समझकर उनको क्रोध आना स्वाभाविक था। इसी वजह से शिवाजी ने औरंगजेब को न तो सलाम किया और न किसी प्रकार के प्रिय वचन ही कहे। अर्थात् शिवाजी अत्यन्त क्रोध में थे।

कविवर भूषण कहते हैं कि उस समय अवसर मिलते ही पराक्रमी शिवाजी जोश में आकर कहने लगे। उस क्षण उनकी ओजस्विता को देखकर औरंगजेब के सभी दरबारी योद्धा काँपने लगे तथा उनके हृदय अस्थिर हो गये। क्रोध के कारण लाल मुख वाले छत्रपति शिवाजी को देखकर भरे दरबार में ही औरंगजेब का चेहरा काला पड़ गया और वहाँ पर उपस्थित मुगल योद्धाओं के चेहरे काले–पीले पड़ गये। अर्थात् शिवाजी के क्रोध को देखकर मुगलों को उनके शौर्य का स्मरण हो आया और वे भयभीत हो गये।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में भूषण ने छत्रपति शिवाजी के पहुँचने पर औरंगजेब दरबार की घटना का वर्णन किया है।
2. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. कवित्त छन्द की पद योजना प्रशंस्य है।

(6)

बेद राखे विदित पुरान राखे सार युत,
रामनाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं।।
मीडि राखे मुगल मरोरि राखे पातशाह,
बैरी पीसि राखे वरदान राख्यो कर मैं।
राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं।।

शब्दार्थ – विदित = ज्ञात, रसना = जीभ, सुघर = मजबूत, सुन्दर, मीडि राखे = दबाकर रखे, वरदान = श्रेष्ठ दान, हद्द = सीमा या मर्यादा, तेगबल = तलवार के बल पर, देवल = मन्दिर।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रसंग – कविवर भूषण छत्रपति शिवाजी के गुणगान में कहते हैं कि शिवाजी की तलवार ने वेदों को सदैव प्रकट रखा और पुराणों की ख्याति को कायम रखा। अर्थात् अपने शौर्य से धर्म विरोधियों का विरोधकर वेदों और पुराणों की सुरक्षा की तथा हिन्दुओं में उनका प्रसार–प्रचार किया। उन्होंने भगवान राम के नाम को हर व्यक्ति की जिह्वा प बनाये रखा और राम नाम के प्रति आस्था को कायम रखा। उन्होंने हिन्दुओं की चोटी और सैनिकों की जीविका को बचाया और हिन्दुओं के कन्धे पर जनेऊ और गले की माला की सुरक्षा की अर्थात् शिवाजी ने मुगलों के आतंक से हिन्दु धर्म की रक्षा की। उन्होंने मुगलों को दबाकर रखा तथा मुगल सम्राट को और उसके अहंकार को चूर–चूर करके रखा। अपने शत्रुओं को पीसकर रखा तथा अपने हाथों में श्रेष्ठ दान देने की क्षमता को बनाये रखा। शिवाजी ने अपनी तलवार के बल पर हिन्दु राजाओं की सीमा एवं मर्यादा की रक्षा की। मन्दिरों में देव मूर्तियों को हिन्दु धर्म के विरोधियों से सुरक्षित रखा और अपनी मातृभूमि के धर्म की रक्षा की।

विशेष

1. प्रस्तुत पद्यावतरण में ऐतिहासिक सत्य को उभारा है।
2. शिवाजी ने मुगलों की क्षुद्र नीति का विरोध किया और हिन्दु धर्म की रक्षा की।
3. प्रस्तुत अंश में शिवाजी की धर्मवीरता का चित्रण किया गया है।
4. कवित्त छन्द की पद योजना प्रशंसनीय है।

(7)

गरुड को दाबा सदा नाग के समूह पर,
दाबा नाग–जूह पर सिंह सिर ताज को।
दाबा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गील पर दाबा सदा बाज को।।
'भूषण' अखण्ड नव खण्ड महि मण्डल में,
तम पर दाबा रवि–किरन–समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन ते उत्तर लौ,
जहाँ पातसाही तहाँ दाबा सिव राज को।।

शब्दार्थ – दावा = प्रभुत्व, आधिपत्य, सिरताज = पराक्रमी, पुरहूत = इन्द्र, गोल = झुण्ड, अखण्ड = एक, नव खण्ड = द्वीप, तम = अन्धकार, पछाँह = पश्चिम, पातसाही = बादशाही।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी के 'भूषण' नामक पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि ने छत्रपति शिवाजी के प्रभाव का चमत्कारपूर्ण चित्रण किया है और उनके पराक्रम की व्यापकता विभिन्न उपमानों के माध्यम से की है।

व्याख्या – कविवर भूषण वीर शिवाजी के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार पक्षिराज गरुड का प्रभुत्व सदैव सर्पों पर रहता है और सिंह का प्रभाव हाथी समूह पर होता है। इन्द्र का प्रभाव पर्वतों के कुल पर माना जाता है। देवराज इन्द्र ने पर्वतों के पंख काट कर उन्हें निश्चेष्ट कर दिया था और सभी पक्षियों के समूह पर हमेशा बाज का अधिकार रहता है।

कवि भूषण कहते हैं कि अखण्ड नव खण्ड (नौ भागों में द्वीपों में विभक्त) पृथ्वी में व्याप्त अन्धकार पर सूर्य की किरणों का आधिपत्य रहता है तथा पूर्व से पश्चिम तक दक्षिण से उत्तर तक सभी राज्यों में जहाँ–जहाँ पर मुगलों की बादशाही है, वहाँ–वहाँ छत्रपति शिवाजी का आधिपत्य है।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में छत्रपति शिवाजी के विरत्व को स्पष्ट किया है।
2. शिवाजी के प्रभुत्व की विरत्व को कवि ने विभिन्न उपमानों से प्रकट किया है।
3. प्रस्तुत अंश में निदर्शना, यमक और पुररुक्ति प्रकाश अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
4. मनहरण कवित्त छन्द की पद योजना प्रशंसनीय है।
5. 'बादशाही' शब्द से कवि का अभिप्राय मुगलों का साम्राज्य है जिसे शिवाजी हस्तगत करने में समर्थ हैं।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

छत्रसाल प्रताप

(8)

भुज भुजगेस की वै संगिनी–सी,
खोदि–खोदि खाती दीन दारुन दलन के।
पखतर पाखरनि बीच धंसि जाति मौन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।।
रैया राय चम्पति को छत्रसाल महाराज,
'भूषण' सकत को बखानियों बलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परै पर छीने वीर,
तेरी बरछी ने बर छीने है खलन के।।

शब्दार्थ – भुजगेस = नागराज, भुजंगिनी = नागिन, बखतर = कवच, मीन = मछली, पैरि = प्रविष्ट होकर, पारजात = पार जाती है, परवाह = जल प्रवाह, पच्छी = पक्षी, परछीने = पंख काटे, खलन = दुष्टों का।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस' तरंगिणी के कवि भूषण द्वारा विरचित 'छत्रसाल प्रताप' से अवतरित है, जिसमें कवि ने महाराज छत्रसाल के पराक्रम का गुणगान किया है।

व्याख्या – कविवर भूषण कहते हैं कि रैयाराव चंपतिराव के सुपुत्र महाराज छत्रसाल! आपकी बरछी तो भुजा रूपी सर्पराज की संगिनी सर्पिणी के समान रहती है और यह बर्छी रूपी भयानक नागिन शत्रुओं को निरन्तर डँसती रहती है। वह शत्रुओं के कवच और पाखरियों में इस प्रकार धँस जाती है जैसे मछली जल की प्रबल धारा को चीरकर उसमें प्रवेश कर जाती है। अर्थात् आपकी बर्छी सर्पिणी की तरह विषाक्त और मछली की भांति तीव्र है जो शत्रुओं को समूल नष्ट करने में सक्षम है।

कवि भूषण कहते हैं कि हे महाराज छत्रसाल! आपके शौर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता है। आपकी बर्छी ने शत्रुओं के बल को ऐसा नष्ट किया है कि उनके योद्धा परकटे पक्षी की तरह फड़फड़ाते हुए धराशायी हो गये हैं। इस प्रकार आपकी पराक्रमी बर्छी ने शत्रु समूह को परास्त कर दिया है।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में वीरगाथाकालीन चारण कवियों की अभिव्यक्ति का स्वर मुखरित हुआ है।
2. कवि की वीर भावना अभिव्यक्त हुई है।
3. अंश में अनुप्रास और यमक अलंकार है।
4. कवित्त छन्दानुकूल पद योजना और नाद सौन्दर्य है।

(9)

चाक चक चमू के अचाकचक चहुँ ओर,
चाक सी फिरती धाक चम्पति के लाल की।
'भूषण' मनत पातसाही मारि जेर कीन्ही,
काहु उमराव न करेरी करवाल की।।
सुनि सुनि रीति बिरदैत के बडप्पन की,
थप्पन उथापन की बानि छत्रसाल की।
जंग जीति लेवा ते वै व्है के दाम देवा भूप,
सेवा लागे करन महेबा महिपाल की।।

शब्दार्थ – चमू = सेना, चाक = कुम्हार का चाक, अचाक = अचानक, जेर कीन्ही = ज्यादतियाँ की, करबाल = तलवार, बिरदैत = यशोगान, थप्पन = ओजस्वी, उथप्पन = उद्घोषणा, जंग = युद्ध, महेबा महिपाल = महेबा के राजा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के भूषण द्वारा विरचित 'छत्रसाल प्रताप' नामक शीर्षक से अवतरित है, जिसमें कवि ने महाराज छत्रसाल की वीरता और पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया है।

व्याख्या – कविवर भूषण महाराज छत्रसाल की वीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि महाराज की धाक चारों ओर कुम्हार के चाक की भाँति निरन्तर घूमती रहती है। उनकी सेना के द्वारा शत्रुओं पर अचानक आक्रमण किया जाता है। जिसकी वजह से शत्रु पक्ष की सेना अचम्भे में पड़ जाती है। कवि भूषण कहते हैं कि जब बादशाह औरंगजेब ने अन्य छोटे–छोटे राजाओं के साथ ज्यादतियाँ की तब किसी भी वीर राजा ने उसके विरूद्ध तलवार नहीं उठाई, केवल छत्रसाल ने ही मुगल सम्राट का विरोध किया था। जब अन्य राजाओं ने महाराज छत्रसाल की वीरता का यशोगान सुना तो वे भी उनके आज्ञाकारी बन गये। वे सभी बादशाह मुगल सेना के विरूद्ध होकर महाराज छत्रसाल के समर्थक बन गये। महोबा के राजा अर्थात् चम्पतिराव के पुत्र छत्रसाल की सेवा करने लगे। मुगल साम्राज्य के आक्रमणों से भयभीत छोटे–छोटे तथा उमराव महाराज छत्रसाल की शरण में आ गये।

विशेष

1. प्ररतुत अवतरण में महाराज छत्ररााल की वीरता और युद्ध कौशल का चमत्कारी वर्णन किया गया है।
2. अनुप्रास, यमक, वीप्सा, पुनरुक्तिप्रकाश आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
3. कवि की राजनिष्ठ भक्ति स्पष्ट हुई है।
4. मनहरण कवित्त छन्द की पद मैत्री व गेयता तथा नाद–सौन्दर्य प्रशंसनीय है।

(10)

राजत अखण्ड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गायत गयंद दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को।।
साजि सजि गज तुरी, पैदर कतार दीन्हें,
भूषण भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को।
और राव राजा एक मन में न ल्याऊं अब,
साहू को सराहौं के सराहौं छत्रसाल को।।

शब्दार्थ – राजत = शोभायमान, छाजत = छा जाता है, गाजत = गर्जना करते हैं, आफताब = सूर्य, ताप = गर्मी, अहंकार, तुरि = घोडे, पैदर = पैदल सेना, प्रतिपाल = रक्षक, गयन्द = हाथी, हिय = हृदय, साल = सालना, व्यथित करना।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के भूषण द्वारा विरचित 'छत्रसाल प्रताप' शीर्षक से लिया गया है, जिसमें कवि भूषण ने महाराज छत्रसाल के पराक्रम, यश और उनकी दानवीरता का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि भूषण महाराज छत्रसाल की वीरता का यशोगान करते हुए कहते हैं कि हे महाराज! आपका तेज अखण्डित होता हुआ शोभायमान लग रहा है और आप दिग्गजों के हृदय को व्यथित करने हेतु गर्जते रहते हैं। आपके तेज और पराक्रम के सामने सूर्य भी मलिन हो जाता है आपका शौर्य देखकर दुष्ट शत्रु अपने अहंकार को त्यागकर ब्राह्मणों का पूरा–पूरा ख्याल रखते हैं। आपने पैदल सैनिकों, हाथियों और घोड़ों की सेना सजाकर दुष्टों का दलन किया है और गरीबों को दानादि से उनकी सहायता की है।

कवि भूषण कहते हैं कि गरीबों का ऐसा मसीहा और आश्रयदाता आपके सिवाय और कौन हो सकता है? अथवा महाराज छत्रसाल की प्रशंसा करता हूँ आप दोनों ही मेरे लिये एक आदर्श हैं।

विशेष

1. कवि ने छत्रपति शिवाजी और महाराज छत्रसाल के शौर्य को अद्वितीय बताया है।
2. प्रस्तुत अंश में अनुप्रास, काव्यलिंग और अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

7.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 कवि भूषण का जन्म कब और कहाँ हुआ?
उत्तर – कवि भूषण का जन्म वि.सं. 1670 में उत्तर प्रदेश के तिकवांपुर (त्रिविक्रमपुर) में हुआ था।

प्रश्न 2 कवि भूषण किन–किन राजाओं के आश्रय में रहे?
उत्तर – कवि भूषण छत्रपति शिवाजी, महाराज छत्रसाल, हृदयराम सोलंकी, साहूजी, बाजीराव तथा जयसिंह आदि के आश्रय में रहे थे।

प्रश्न 3 कवि भूषण का अलंकार ग्रन्थ किसे माना गया है?
उत्तर – कवि भूषण का अलंकार ग्रन्थ 'शिवराज भूषण' को माना गया है।

प्रश्न 4 रीतिकाल में राष्ट्रीय चेतना और जातीय स्वतन्त्रता का गायक कवि किसे माना गया है?
उत्तर – कविवर भूषण को माना गया है।

प्रश्न 5 कवि भूषण के बड़े भाई का क्या नाम था?
उत्तर – कवि भूषण के बड़े भाई का नाम चिन्तामणि था।

प्रश्न 6 भूषण की कविताओं में कौन से रस की प्रधानता है?
उत्तर – भूषण की कविताओं में वीररस की प्रधानता है।

प्रश्न 7 भूषण ने अपनी कृति 'शिवा बावनी' में किसका चित्रण किया है?
उत्तर – शिवा बावनी में महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी के शौर्य का चित्रण किया गया है।

प्रश्न 8 'छत्रसाल दशक' में क्या वर्णित है?
उत्तर – 'छत्रसाल दशक' में कवि भूषण ने बुंदेला राजा छत्रसाल के शौर्य का वर्णन किया है।

प्रश्न 9 कवि भूषण को 'भूषण' की उपाधि किसने दी?
उत्तर – चित्रकूट के सोलंकी राजा रूद ने कवि को 'भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया।

प्रश्न 10 'देखत ऊँचाई उधरत पाग, सूधी राह, दीसहु मैं बढै ते जो साहस निकेत है।' कवि ने साहस निकेत किसे माना है।
उत्तर – शिवाजी द्वारा शत्रुओं से छीने गये दुर्गों को उनके साहस के निकेत कहा गया है।

प्रश्न 11 'चाकर है उजर कियो न जा नैक पै, कछु दिन उबरते तो घने काज करते।' प्रस्तुत कथन किसने किससे कहा है।
उत्तर – प्रस्तुत कथन बादशाह औरंगजेब के प्रति उनके वजीर के द्वारा कहा गया है।

प्रश्न 12 'नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती है' शत्रु पक्ष की स्त्रियों की इस दशा का क्या कारण है?
उत्तर – शिवाजी के भय के कारण शत्रु पक्ष की स्त्रियाँ नगरों से भागकर जंगलों में चली गई जिसके कारण उनकी यह दशा हो गई है।

प्रश्न 13 'स्याह मुख नौरंग, सिपाह मुख पियरे' इस कथन से कवि का क्या अभिप्राय है?
उत्तर – कवि के अनुसार शिवाजी के क्रोधावेग के कारण बादशाह औरंगजेब और उसके समस्त दरबारियों के चेहरे भय के कारण काले पड़ गये।

प्रश्न 14 'वेद राखे विदित ... स्वधर्म राख्यो घर में' कवित्त में कवि का क्या भाव व्यंजित हुआ है?
उत्तर – प्रस्तुत कवित्त में कवि भूषण ने शिवाजी द्वारा हिन्दु संस्कृति और हिन्दु धर्म की सुरक्षा का भाव व्यक्त किया है।

प्रश्न 15 'भुज भुजगेस की वै ..... वर छीने हैं खलन कै' प्रस्तुत कवित्त में किसका चित्रण किया गया है?
उत्तर – प्रस्तुत कवित्त में कवि ने बुन्देला नरेश छत्रसाल के शौर्य और उनकी बरछी की शत्रु संहार क्षमता का चित्रण किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 16 'अंग जोति लेवा ते बै है के दाम देवा भूप, सेवा लागे करन महेबा महेबा महिपाल की।' कवि के अनुसार राज महेबा नरेश छत्रसाल की सेवा क्यों करने लगे?

उत्तर – बादशाह औरंगजेब से भयभीत होकर अपनी रक्षा के निमित्त राव राजा महेबा नरेश छत्रसाल की सेवा करने लग गये।

प्रश्न 17 'वेद राखे विदित, पुरान राखे सार युत' कवित्त में छत्रपति शिवाजी की क्या विशेषता बताई है?

उत्तर – प्रस्तुत कवित्त में शिवाजी की धर्मवीरता और जातीय स्वाभिमानी प्रवृत्ति को स्पष्ट किया गया है।

प्रश्न 18 'जाहि के प्रताप ते मलिन आफताब होत।' कवि भूषण ने किसका प्रताप बताया है?

उत्तर – छत्रपति शिवाजी और महेबा नरेश छत्रसाल का ऐसा प्रताप वर्णित किया है।

प्रश्न 19 'ऊँचे घोर मन्दर के रहन बारी, ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती है।' 'मन्दर' शब्द का श्लेषार्थ क्या है?

उत्तर – 'भव्य महल' और 'पर्वत गुफाएँ' हैं।

प्रश्न 20 कवि भूषण की कौन–कौन सी रचनाएँ आज अनुपलब्ध हैं?

उत्तर – 'भूषण उल्लास', 'भूषण हजारा' और 'भूषण उल्लास' रचनाएँ अनुपलब्ध हैं।

7.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 'और राव राजा एक मन मैं न लाऊँ अब' इस कथन के अनुसार कवि भूषण अन्य राजा व राव से अप्रसन्न क्यों थे?

उत्तर – कवि भूषण भारतीय संस्कृति के प्रति पूर्णतः आस्था से युक्त थे तथा जातीयता तथा हिन्दुत्व की भावना के साथ राष्ट्रीय चेतना का भाव प्रबल रूप में था। उस समय मुगल बादशाह और उसके अधीनस्थ नवाब धार्मिक उन्माद से ग्रस्त थे तथा औरंगजेब के मन में हिन्दुओं के प्रति घृणा थी। वह हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार किया करता था सभी हिन्दु उसके क्रूर व्यवहार से आक्रान्त थे। उनसे मनमाना कर वसूल किया जाता था। इन सबके बाद भी छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल को छोड़कर सभी राजा–राव औरंगजेब के अनुयायी थे और वे हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचारों को मूकदर्शक की भाँति देखते रहते थे। यद्यपि वे संगठित होकर मुगल सम्राट की नीतियों का विरोध कर सकते थे किन्तु अपने सुख विलास के कारण उन्होंने किसी प्रकार से मुगलों का विरोध नहीं किया। कवि भूषण ने उन सभी राव–राजाओं की उस डरपोक व स्वार्थी नीतियों पर आरोप करते हुए अपने क्षोभ को व्यक्त किया है।

कवि भूषण ऐसे राजाओं के आश्रय में रहना चाहते थे जो भारतीय संस्कृति का संरक्षण और हिन्दुत्व का पूर्ण समर्थन कर सके। उस समय छत्रपति शिवाजी और बुन्देला के राजा छत्रसाल ऐसे ही वीर राजा थे जो उस समय औरंगजेब का विरोध कर रहे थे। शिवाजी ने अनेक बार उस औरंगजेब की सेना का मुकाबला किया था और उन्हें अनेक प्रकार की चुनौतियाँ दे चुके थे। शिवाजी भारतीयता के कट्टर समर्थक थे। यदि अन्य राजा शिवाजी का साथ देते तो हिन्दुओं पर किसी प्रकार के अत्याचार नहीं होते। कवि भूषण इसी तथ्य को सामने रखते हुए अन्य राजाओं को अपने तरीके से धिक्कारा है और वे कहते हैं कि छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल नरेश की वीरता, हिन्दुत्व–गरिमा तथा राष्ट्रीय चेतना की ओजस्वी शब्दों में प्रशंसा की है – उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा– 'साहू को सराहौ कै सराहो छत्रसाल को।'

प्रश्न 2 भूषण की काव्यगत प्रवृत्तियों को संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में जब एक ओर श्रृंगार–चित्रण एवं आचार्यत्व के निर्वाह की परम्परा चल रही थी वहीं दूसरी ओर भूषण एक अकेले ऐसे कवि थे जो सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्रीय चेतना और जातीय ओजस्व स्वर में अपना उद्घोष कर रहे थे। यद्यपि रीतिकालीन प्रभाव के कारण भूषण ने भी स्वयं आचार्यत्व का अनुसरण करना चाहा और रीतिबद्धता का आग्रह रखा फिर भी उनका झुकाव शौर्य–चेतना के चित्रण की ओर अधिक रहा। भूषण के काव्य का भाव पक्ष ओजस्वी भावों से ओत–प्रोत रहा। इस कारण उनके काव्य का प्रमुख रस वीररस रहा है। युद्ध, दया, दान और धर्म ये चारों भेद उनके वीर रस में विद्यमान थे। उन्होंने शिवाजी के शौर्य और संत्रस्त शत्रु नारियों के चित्रण में भयानक रस का अच्छा प्रयोग किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भूषण के काव्य में भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था का स्वर प्रखरता से व्यक्त हुआ है। औरंगजेब भारतीय सस्कृति एवं हिन्दु धर्म का विरोधी था। कवि भूषण ने वीर शिवाजी और छत्रसाल के द्वारा औरगजेब का विरोध किये जाने की प्रशंसा की और उनका समर्थन किया। साथ ही कवि भूषण ने शाहजहाँ की नीतियों का समर्थन किया क्योंकि उसकी नीतियों में न्याय था तथा हिन्दुओं व भारतीय संस्कृति के प्रति किसी प्रकार की कट्टरता नहीं थी। कुछ आलोचक कवि भूषण को सम्प्रदायवादी मानते थे किन्तु उस समय मुगल शासकों के क्रूर आचरण को लेकर भूषण ने विरोध व्यक्त किया। जो पूर्णतया राष्ट्रीयता से मण्डित था। भूषण के काव्य का भाव पक्ष जितना ओजस्व है उतना ही उनका कला पक्ष भी प्रखर रहा है। भूषण ने ब्रज भाषा में काव्य का सृजन किया और पद योजना को भावों के अनुरूप रखा। वीर रस के ही अनुकूल कवित्त छन्द को अपनी कृति का सहारा बनाया। उपमानों और प्रतीकों का सुन्दर विन्यास तथा अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग उनके काव्य की अन्यतम विशेषता है।

7.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 भूषण के काव्य में कला पक्ष एवं भाव पक्ष की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

उत्तर – हिन्दी साहित्य का रीतिकाल जहाँ एक ओर श्रृंगार, वासना, नग्नता तथा रूपासक्ति का स्पर्श पाकर प्रेम के रूप में परवान चढ़ा हुआ था वहीं दूसरी ओर उस युग के कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी सौन्दर्य की ही अभिव्यक्ति की प्रतिस्पर्धा में लगे हुए थे। उस समय में भारतीय जनता और समाज की जो दयनीय स्थिति थी, उसके लिये किसी भी कवि के कण्ठ से सहानुभूति के स्वर नहीं निकले थे बल्कि प्रत्येक कवि राजाश्रय प्राप्त कर आश्रयदाताओं के श्रृंगार–विलास के मनोरंजनार्थ रचनाओं का सृजन करने में व्यस्त थे। उस समय काव्य का उद्देश्य राजा, महाराजाओं, सामन्तों, जमींदारों के मानस को श्रृंगार विलास के लिये उद्दीप्त करना था। अधिकतर कवि अपने आचार्यत्व की प्रतिष्ठा के लिये अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन कर रहे थे। अतः सभी कवि राष्ट्रप्रेम और संस्कृति का गौरव भुलाकर विलासिता में डूबे हुए थे।

रीतिकालीन कवि होते हुए भी कवि भूषण पर अपने समकालीन कवियों का पूर्णतः प्रभाव नहीं पड़ा था। यद्यपि ये श्रृंगार विलासिता की अपेक्षा शौर्य–चेतना को अधिक महत्व देते थे किन्तु उन्होंने रीतिकालीन शास्त्रीय मान्यताओं का सर्वथा विरोध नहीं किया था। अन्य कवियों की तरह उन्होंने भी राज्याश्रय प्राप्त किया और राज दरबारों की चकाचौंध से भी उन्होंने साक्षात्कार किया किन्तु वे उन राजा महाराजाओं के आश्रय में नहीं रहे जो हिन्दू संस्कृति से घृणा करते हों। विशेष बात तो यह रही कि कवि भूषण कुछ समय तक राजा औरंगजेब के आश्रय में भी रहे किन्तु उसकी राष्ट्र विरोधी नीतियों से खिन्न होकर छत्रसाल तथा शिवाजी के आश्रय में आ गये।

कवि भूषण के नाम के संदर्भ में कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ। 'भूषण' तो एक विशिष्ट उपाधि है जिसे चित्रकूट के सोलंकी राजा रूद्र ने उनके सम्मान में प्रदान की, स्वयं भूषण ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है–

'कुल सुलंकी चित्रकूटपति साहस शील समुद्र।
कवि 'भूषण' पदवी दई हृदयराम सुत रूद्र।।'

कवि भूषण को पौरुष और ओज का कवि माना जाता है। 'शिवराज भूषण' 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल दशक' उनकी उपलब्ध रचनाएँ हैं। 'शिवराज भूषण' उनकी अलंकार ग्रन्थ हैं। जिसमें रीतिशास्त्रीय मान्यतानुसार प्रथम लक्षण और वाद में अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। वस्तुतः भूषण आचार्यत्व के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते थे किन्तु कोरी अलंकारवादिता की अपेक्षा उनका कवित्व अधिक प्रबल रहा। उन्होंने विविध अलंकारों के उदाहरण रूप में शिवजी के व्यक्तित्व का चित्रांकन किया। इस रचना में इसी प्रकार अलंकार विवेचन गौण हो गया तथा वीरदर्पपूर्ण चरित्र प्रधान हो गया। अतः यह रचना अलंकार–काव्य न होकर वीर–काव्य बन गई। इनकी अन्य रचनाओं में भी वीरता एवं ओजस्विता के दर्शन होते हैं। इसी कारण भूषण को वीररस का सिद्ध कवि माना जाता है।

काव्यगत विशेषताएँ

रीतिकालीन अन्य कवियों की तरह भूषण में मौलिकता एवं नवीन चेतना का स्वर दिखाई देता है। इस कारण इनके काव्य का भाव पक्ष जितना ओजस्वी रहा है उतना ही प्रशंस्य और अलंकृत है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भाव पक्ष

1. रस योजना – कवि भूषण के काव्य में वीर रस का ओजस्वी उन्मेष समाहित है। काव्यशास्त्र में वीर रस के मुख्य चार भेद – युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर। भूषण ने इन चारों प्रकार के वीरों का चित्रण अपने काव्य में किया है किन्तु उनका विशेष रूझान युद्धवीर वर्णन की ओर अधिक रहा जो कि अत्यन्त ही ओजस्वी और चमत्कारपूर्ण रहा है। इसके अन्तर्गत चतुरंगी सेना के वीरतापूर्ण कार्यों और वीरों की दर्पोक्ति, उनके शस्त्रास्त्र संचालन एवं युद्ध कौशल का सजीव चित्रण करने में भूषण पूर्णतः सफल रहे हैं–

'भूषण भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौ कहौ,
किम्मति यहाँ लगी है जाकी भट झोट मैं।
ताव दै दै मूछन कंगुरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परै कोट मैं।।'
'कोप करि चढ्यो महाराज सिवराज वीर,
धौंसा की धुकार ते पहार दरकत है।
गिरे कुम्भि मतवारे स्त्रोनित कुहारे छूटे,
कडाकड छवि नाल लाखों थरकत है।।'

युद्धवीर के अतिरिक्त भूषण ने दयावीर, दानवीर तथा धर्मवीर रस का वर्णन भी बड़ी चारुता एवं उत्कृष्टता से किया गया है। भूषण ने वीभत्स, रौद्र और भयानक रस का सुन्दर उन्मेष किया गया है–

'उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
तेउ सगबग निस–दिन चली जाती है।
अति अकुलाती मुरझाती न छुपाती गात,
बात न सुहाती बोल अति अनखाती है।।'

2. सांस्कृतिक आस्था – भूषण के काव्य में भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था का स्वर प्रखरता से व्यक्त किया गया है। उस समय में जिन–जिन राजाओं ने अपनी संस्कृति का अनुसरण नहीं किया अथवा औरंगजेब ने जिस तरह भारतीय संस्कृति को अत्याचारपूर्वक नष्ट करने का प्रयास किया, उसका विरोध करते हुए भूषण ने अपनी निष्ठा व्यक्त की और हिन्दुत्व के संरक्षण के लिये शिवाजी के कार्यों का पूर्णतया समर्थन किया था। भूषण ने अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए –

'आपस की फूट ही ते सारे हिन्दुवान टूटे,
टूट्यो कुल राबन अनीति अति करते।'
'वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यौ आनि रसना सुघर मैं।
हिन्दुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे मैं जनेउ राख्यो माला राखी गर मैं।'

3. राष्ट्रीय चेतना – आधुनिक समालोचक भूषण को सम्प्रदायवादी तथा संकुचित जातीय विचारधारा वाला कवि कहते हैं। उनके अनुसार भूषण ने एक राज्य विशेष की प्रतिष्ठा के लिये और हिन्दुत्व की भावना से अन्य राजाओं की आलोचना की और औरंगजेब तथा मुसलमानों के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न किये। मुगल सम्राट औरंगजेब हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार करता था। उन पर मनमाने ढंग से अनेक प्रकार के कर लेता था। जबरन धर्म परिवर्तन के लिये लोगों को मजबूर करता था। कवि भूषण ने हिन्दु समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए भारतीयता का जो प्रबल समर्थन किया वह अपने आप में एक स्थान रखता है। भारतीय संस्कृति के उन्नायक रूप में छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल की जो प्रशंसा की वह उनकी राष्ट्रीय चेतना की परिचायक कही जा सकती है। कवि भूषण सभी राजाओं में एकता स्थापित करना चाहते थे, इसी भाव को प्रकट करते हुए उन्होंने उद्घोष किया कि –

'आपस की फूट ही ते सारे हिन्दुवान टूटे।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भूषण ने शिवाजी के हिन्दुत्व का संरक्षण प्राप्त किया और उसे स्वीकार किया। वैसे उन्होंने अकबर, शाहजहाँ, जहाँगीर आदि के न्यायप्रिय शासन की प्रशसा भी की है। कवि भूषण ने अश्लील श्रृगार का चित्रण न करके जनता को अन्याय, आतंक और कुशासन का सामना करने की प्रेरणा प्रदान की। इस प्रकार कवि भूषण के काव्य का भाव पक्ष अत्यन्त आकर्षक और प्रभावपूर्ण रहा है।

कलापक्ष

1. भाषा सौष्ठव – कवि भूषण का काव्य ओजस्वी भावों से युक्त है। यद्यपि उन्होंने अपना सृजन कार्य ब्रज भाषा में किया है, तथापि उसमें अरबी, उर्दू, फारसी भाषा के अति प्रचलित शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है। वीर रस के अनुसार ही शब्दों का चयन किया है। इस वजह से कहीं पर वचन वक्रता से युक्त भाषा का प्रयोग हुआ है। ओजस्वी भावों की अभिव्यक्ति के लिये उचित शब्दों का प्रयोग हुआ है तो नाद सौन्दर्य का पूरा–पूरा ख्याल रखा गया है –

'कलजुग जलधि अपार उद्द अधरम उम्मिमय,
लच्छ निलच्छ मलिच्छकच्छ अरु मच्छ मगरचय।
नृपति नदी–नद–वृन्द होत जाको मिली नीरस,
मनि भूषण सब भुग्गि धोरि किन्निय सुअप्प बस।।'

2. अलंकार योजना – कवि भूषण ने 'शिवराज भूषण' में शब्दगत तथा अर्थगत अलंकारों का निरूपण किया है, जिनकी संख्या 105 है। इस प्रकार उन्होंने शिवाजी के चित्रांकन में प्रायः सभी अलंकारों का प्रयोग किया है जिनमें प्रमुख रूप से उत्प्रेक्षा, रूपक, दीपक, व्यतिरेक, आक्षेप, अतिशयोक्ति, उपमा, यमक, श्लेष, विषम, निदर्शना आदि को अपनाया है –

'ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहन बारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती है।
कन्द मूल भोग करै, कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खाती थी ते तीन बेर खाती हैं।।'

इसी प्रकार रूपक अलंकार का रोचक प्रयोग किया गया है –

'तजत मिलिन्दि जैसे–तैसे दूर भाज्यो,
अलि अवरंगजेब चम्पा सिव राज है।'

3. छन्द योजना – कवि भूषण की ओज गुण की ओजस्वी अभिव्यक्ति के लिये छन्दों की विशेषतया गेयता, नादात्मकता एवं पद योजना अत्यन्त प्रशंसनीय है। उसमें ओजगुण का पूर्ण समावेश किया गया है। भूषण ने सवैया तथा दोहा छन्द का प्रयोग किया। यथा

'शिव सरजा के बर को यह फल आलमशीर।
छूटे तेरे गढ सबै, कूटे गये मजीर।।'

4. उपमान–प्रतीक विधान – कवि भूषण ने वीर शिवाजी व बुन्देला राजा छत्रसाल के पराक्रम के वर्णन के लिये पौराणिक उपाख्यानों से उपमान और प्रतीक चुने हैं। वस्तुतः भूषण अपने इन दोनों आश्रयदाताओं को हिन्दुत्व की रक्षा करने हेतु वीरत्व का अवतार मानते हैं। इसलिये उन्होंने पौराणिक प्रसंगों को उपमान के रूप में प्रयुक्त कर ओजस्वी भावों तथा दृश्य–बिम्बों की सर्जना की। यथा–

'दारुन दुगुन दुरजोधन ते अबरंग,
भूषण भनत जग राख्यो छल मढि कै।
धरम–धरम, बल भीम पैज अरजुन,
नकुल अकिल सहदेव पैज चढि कै।।
साही के शिवाजी गाजी करयो दिल्ली माहि चण्ड,
पाण्डवन हूँ ते पुरुषारथ सुबदि कै।
सूने लाख मौन ते कढै वै पाँच राति मैं जू,
धौंस लाख चौकी ते अकेले आयो कढि कै।'

इस प्रकार भूषण ने प्रतीकों, बिम्बों तथा उपमानों की सुन्दर योजना करके सशक्त भाव सम्प्रेषण किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निष्कर्ष

भूषण रीतिकालीन विलासिता एवं श्रृंगार के वातावरण में रहते हुए भी वीर भावों के कवि थे। उनके काव्य में वीर रस के साथ ही रौद्र, वीभत्व और भयानक रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। राष्ट्रप्रेम, हिन्दुत्व की चेतना, भारतीय संस्कृति का गौरव तथा राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में व्यक्त इनके विचार अत्यन्त ओजस्व रहा है। भूषण का कला पक्ष पर्याप्त समृद्ध और सशक्त भावाभिव्यक्ति से मण्डित है।

प्रश्न 2 'रीतिकालीन अति श्रृंगारिकता के मध्य भूषण की कविता जीवन का जयघोष है।' स्पष्ट कीजिये।

अथवा

'रीतिकालीन कवियों में भूषण सबसे अलग और उच्च स्थान पर स्थित है।' इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – कविवर भूषण का आविर्भाव रीतिकाल में हुआ था जिसमें लक्षण ग्रन्थों के निर्माण और श्रृंगार वर्णन की प्रवृत्तियां परिलक्षित होती थी किन्तु कवि भूषण ने इस प्रवृत्ति को आंशिक रूप में ही अपनाया था। उन्होंने श्रृंगार के वासनामय चित्रों की अपेक्षा वीर रस की ओजस्वी वाणी मुखरित हुई। कवि भूषण ने रीतिकालीन परिस्थितियों को बदलने का प्रयास किया। उन्होंने लक्षण ग्रन्थों की रचना को अपने काव्य में स्थान दिया, जिसकी वजह से उन्हें रीतिकाल में उत्पन्न वीर कवि माना जाता है। उस समय के कवि प्रायः कवि और आचार्य रूप में प्रतिष्ठित रहे। यद्यपि कवि घनानन्द और बिहारी जैसे कवि अपवादस्वरूप भी इस काल की महान हस्तियाँ हैं जिन्होंने केवल अपने कवि कर्म को ही अपनाया और आचार्यत्व प्रकट नहीं किया। केशव, भिखारीदास और चिन्तामणि जैसे कवियों ने कवित्व और आचार्यत्व दोनों का ही निर्वाह किया। कवि भूषण की गणना भी ऐसे ही आचार्य कार्य के रूप में की जाती है। जहाँ उन्होंने एक ओर 'शिवाबावरी' और 'छत्रसाल शतक' जैसी वीररस पूर्ण ओजस्वी काव्य कृतियों की रचना की और दूसरी ओर 'शिवराज भूषण' जैसे अलंकार ग्रन्थ की रचना की और आचार्यत्व की परम्परा का निर्वाह किया।

कवि भूषण और उनका आचार्यत्व

यद्यपि कविवर भूषण को आचार्यत्व में अधिक सफलता नहीं मिली क्योंकि उनमें आचार्यत्व का गाम्भीर्य एवं सूक्ष्म विवेचना का उतना आग्रह दिखाई नहीं देता है। उन्होंने 'शिवराज भूषण' में रस शब्द शक्ति, नायिका भेद आदि की पूर्ण उपेक्षा की है। रीतिकालीन प्रमुख प्रवृत्ति के दो–चार छन्द अवश्य उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। इस प्रकार उन्होंने रीति ग्रन्थों की रचना को अलंकारों की ही विवेचना की है तथा काव्य प्रणयन की दृष्टि से उनको पर्याप्त सफलता प्रापत हुई। इन सबकी वजह से कवि भूषण रीतिकालीन कवियों में सबसे अलग माने जाते हैं।

आचार्य भूषण तथा कवित्व की ओजस्विता

'शिवा बावनी' तथा 'छत्रसालदशक' में भूषण की प्रतिभा का ओजस्वी स्वर मुखरित हुआ है। 'शिवा बावनी' में भूषण ने महाराज शिवाजी के शौर्य से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का मनोहारी वर्णन किया है। इस काव्य में उन्होंने मुक्तक काव्य की संक्षिप्त प्रणाली को अपनाते हुए जिस विस्तीर्ण भाव परम्परा को प्रत्येक पद में समाहित किया है, वह निश्चय ही हिन्दी के वीर काव्य में अत्यन्त कम ही प्राप्त होती है। छत्रसाल–दशक में उन्होंने बुन्देला नरेश छत्रसाल की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

यह तथ्य भी सत्य है कि रीतिकालीन काव्य की मूल ध्वनि श्रृंगारपरक थी और कालक्रम की दृष्टि से भूषण उसी युग के कवि थे। किन्तु उनका वर्ण्य विषय उनके युगीन साहित्य से सर्वथा पृथक रहा है। उनकी आत्म वृत्तियाँ श्रृंगार रस की आकर्षक सारणियों में प्रवाहित होने की अपेक्षा वीर रस के ओजस्वी स्रोत से एक रूप होने के लिये अधिक उन्मुख रहती हैं। कवि भूषण एक चेतन और सजीव वातावरण की अनुभूति पाते थे और यह उसी का परिणम था कि उनके काव्य में वीररस की आत्मा इतनी सजीव रुप में साकार हो सकी। वीररस विषयक भावों की आयोजना करते–करते उन्होंने विशेष तन्मयता का आश्रय लिया और अपने लक्ष्य में सम्पूर्ण सफलता प्राप्त की। वीररस का 'उत्साह' स्थायी भाव उनके काव्य में प्रवाह से अन्त तक व्याप्त रहा। भावना के इस विशेष प्रवाह की सिद्धि के लिये उन्होंने काव्य तत्त्वों से भी पर्याप्त सहयोग प्राप्त किया है। इस प्रकार कवि भूषण ने तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए काव्य का सृजन किया। उस काल में भक्ति और शौर्य के प्रति आस्था अत्यन्त कम रह गई थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भूषण ने हिन्दु जाति में जागरण का मंत्र फूंक कर सुषुप्त समाज को जागृत कर उसे राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख किया। इस दृष्टि से वे एक नवीन धारा के प्रवर्तक थे। यद्यपि उन्होंने अपने काल की शृंगारिक परम्परा की तरह अपने आश्रयदाता का ऊहात्मक वर्णन भी किया है, वे इस अति रंजना से बच नहीं सके फिर भी उन्होंने अपने काव्य कौशल पर बल देकर प्राचीन वीर काव्य परम्परा को पुनर्जन्म देने का प्रयास किया।

भूषण राष्ट्रीयता के गायक के रूप में

आचार्य कवि भूषण का व्यक्तित्व जातीय स्वतंत्रता और राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत रहा, जिसकी वजह से उन्हें सर्वप्रथम राष्ट्रकवि माना जाता है। कुछ लोग भूषण को संकुचित दृष्टिकोण वाला जातीय कवि मानते हैं। उनका मत है कि भूषण ने सारे भारत देश का ध्यान न रखकर केवल अपने आश्रयदाताओं के शौर्य एवं स्वातन्त्र्य भाव का चित्रण किया है। इस कारण आलोचक भूषण को विद्वेषपूर्ण एवं राष्ट्रीय भावना से रहित मानते हैं तथा उनके दृष्टिकोण को हिन्दु–मुसलमानों में घृणा फैलाने वाला मानते हैं। कवि भूषण के काल में एक राज्य विशेष ही राष्ट्र या तथा भारत की हिन्दु जनता मुगलों को ही आक्रान्त मानती थी। वे जबरदस्ती लोगों को धर्म परिवर्तन के लिये बाध्य करते थे। मन्दिरों की तोड़–फोड़ करते थे तथा राजपूत राजाओं में उनके प्रति आक्रोष था। कवि भूषण ने अपने युग के हिन्दुओं की उस भावना का प्रतिनिधित्व न करके स्वातन्त्र्य–भावना का स्वर मुखरित किया, इसलिये भूषण को प्रथम राष्ट्रीय कवि मान लेना उचित होगा। रीतिकाल के अन्य कवि अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग करके वासना का चित्रण करते थे, अपने आश्रयदाताओं की रतिक्रीड़ा का चित्रण करने में अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करते थे और आवाम के कष्टों की ओर उनका जरा–सा भी ध्यान नहीं गया। इस विशेषता के कारण भी कविवर भूषण रीतिकाल के कवियों से अलग और उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित दिखाई देते हैं। कविवर भूषण ने अपने काव्य में ऐसे योद्धाओं की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया है जो वस्तुतः जातीय एवं राष्ट्रीय चेतना के ज्वलन्त प्रतीक थे। स्वतंत्रता एवं धर्मप्रियता के लिये किया गया उनका त्याग उस काल के लिये राष्ट्रीय प्रेरणा का कार्य था। भूषण ने उस चेतना और प्रेरणा को ओजस्विता प्रदान की तथ अन्याय के विरूद्ध लड़ने वाले अपने काव्य–नायक के शौर्य का बखानकर हिन्दु जनता की दमित भावनाओं एवं स्वाभिमान को व्यक्त करने का प्रयास किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भूषण की इन विशेषताओं के लिये लिखा है – 'भूषण ने जिन दो नायकों की कीर्ति को अपने काव्य का विषय बनाया, वे अन्याय–दमन में तत्पर हिन्दु धर्म के संरक्षक दो इतिहास प्रसिद्ध वीर थे। उनके प्रति भक्ति और सम्मान की प्रतिष्ठा हिन्दु जनता के हृदय में उस समय भी थी और आगे भी बनी रही या बढती चली गई। इसी से भूषण के वीर रस के उदगार सारी जनता के हृदय की सम्पत्ति हुए। भूषण की कविता कवि–कीर्ति–सम्बन्धी एक अविचल सत्य का दृष्टान्त है। जिस कवि की रचना को जनता के हृदय स्वीकार करेंगे, उस कवि की कीर्ति तब तक बराबर बनी रहेगी, जब तक सृष्टि बनी रहेगी।'

मौलिक चेतना के उन्नायक कवि भूषण

रीतिकाल के अन्य कवियों की अपेक्षा भूषण में मौलिक चेतना के दर्शन होते हैं। भूषण ने एक ओर अपने युग से प्रायः विभिन्न उपादनों को स्वीकार किया है तो दूसरी ओर काव्य के कलापक्ष में भी उनके नवीन प्रयोग किये हैं। यद्यपि अन्य रीतिवादी कवियों की तरह उन्होंने भी काव्य की प्रबन्ध–विधा को न अपनाकर उसकी मुक्तक शैली को ही विकास की ओर अग्रसर किया है तथापि इस क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी मौलिक चेतना का सफल परिचय दिया है। साहित्यशास्त्रियों ने काव्य–सौष्ठव की वृद्धि के लिये अलंकारों को आवश्यक माना किन्तु अतिशयता से काव्य में सहज–सौन्दर्य नहीं हो पाता है। यदि कवि उचित समावेश कर सके तो अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाने में अहम् भूमिका अदा करते हैं। रीतिवादी कवियों ने अपने काव्यों को अलंकार–चमत्कार से आवृत्त करने की भरसक चेष्टा की। इस कारण उनके काव्य में पाण्डित्य–प्रदर्शन एवं उक्ति–वैचित्र्य की प्रवृत्ति दिखाई देती थी। वे अलंकारों को साध्य मानने लगे थे, किन्तु भूषण में पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर अलंकारों को साधन और काव्य को साध्य माना। यही कारण है कि अधिकांश रीतिकालीन उन्मीलन की ओर उन्मुख न होकर परिवर्धन की ओर अग्रसर रहा। इस प्रकार एक ओर वे चमत्कार उत्पन्न करने में सफल रहे हैं तो दूसरी ओर उन्होंने भाव–चारुत्व को भी पर्याप्त गति प्रदान की है। इस प्रकार उनके छन्दों का भी आवश्यकतानुसार और रसानुकूल प्रयोग हुआ है तथा भाव सम्प्रेषण की तीव्रता को अपने काव्य में तीव्रता प्रदान की है। इस प्रकार से रीतिकालीन कवियों में भूषण को एक अलग स्थान प्राप्त हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.3 सारांश

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि कवि भूषण ने अपनी काव्य साधना के द्वारा रीतिकाल की रूढिबद्ध कविता में एक नवीन चेतना का संचार किया है। उनके काव्य की ओजस्वी वाणी से कायर के हृदय में भी शौर्य की उद्‌भावना एवं नवीन उत्साह का संचार हो जाता है। उन्होंने अपने काव्य में भावपक्ष एवं कलापक्ष को समृद्ध करने के समय वीरगाथा काल की चारणी शैली को ग्रहण करते हुए भी जिस स्वतंत्रता, मौलिकता, राष्ट्रीयता, त्याग तथा चारित्रिक दृढता का परिचय दिया है, यह निश्चय ही अति प्रशंसनीय है। भूषण ने तत्कालीन काव्य–परम्पराओं को बदलने का सफलतम प्रयास किया है जिसका प्रभाव आधुनिक काल के कवियों पर भी पड़ा। अतः कवि भूषण का स्थान रीतिकालीन अन्य कवियों में अन्यतम रहा है।

7.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. भूषण के काव्यों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. रीतिकाल में भूषण एक अलग कवि थे, सिद्ध कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–8
मतिराम

संरचना

8.0 कवि परिचय

8.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

8.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

8.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

8.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

8.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

8.3 सारांश

8.4 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.0 कवि परिचय

रीतिसिद्ध कवियों के अग्रणी कवि मतिराम रीतिकाव्य धारा के प्रवर्तक चिन्तामणि के छोटे भाई थे तथा महाकवि भूषण के बड़े भाई थे। इनका जन्म त्रिविक्रमपुर (तिकवांपुर) में संवत् 1664 में हुआ था तथा वे सुदीर्घकाल तक जीवित रहे। ये बूंदी के महाराज भावसिंह के यहाँ लम्बे समय तक रहे और उन्हीं के आश्रय में उन्होंने अपना 'ललित ललाम' नामक अलंकार ग्रन्थ 1716 और संवत् 1745 के बीच तैयार किया। इनका 'छन्द सागर' नामक पिंगल ग्रन्थ महाराज शम्भुनाथ सोलंकी को अर्पित किया गया। इनका परम मनोहर ग्रन्थ 'रसराज' है। इनके अतिरिक्त इनके दो प्रमुख ग्रन्थ और हैं – साहित्यसार और लक्षण शृंगार। बिहारी सतसई के ढंग पर उन्होंने एक 'मतिराम सतसई' का सृजन भी किया जिसे हिन्दी पुस्तकों की खोज में प्राप्त किया गया है। 'वृत्त कौमुदी' उनका छन्द विषयक ग्रन्थ है। 'अलंकार पंचाशिका' में उनके द्वारा विभिन्न अलंकारों का परिचय दिया गया है।

कविवर मतिराम को रीतिसिद्ध कवियों में अग्रणी माना जाता है। मिश्र बन्धुओं ने मतिराम को हिन्दी के नवरत्नों में स्थान देकर उनके महत्त्व को स्वीकार किया। उनके आचार्य कर्म की महत्ता गायी। उनकी भाषा रसमयी है तथा उनके रचना–माधुर्य का अनुसरण परवर्ती कवियों ने किया है।

मतिराम के काव्य में मुख्य रूप से दो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है – शृंगारिक तथा आश्रयदाताओं की प्रशस्ति विषयक। शृंगार वर्णन में न बिहारी सी नागरता है और न देव जैसी मस्ती। नायक–नायिकाओं का सरल शैली में वर्णन अवश्य मिलता है। दाम्पत्य–प्रेम, शील और लज्जा जैसी प्रवृत्तियाँ भी इनकी कृतियों में देखी जा सकती है।

मतिराम की रचनाओं में सहज और स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। उनके भावों में न तो कृत्रिमता है और न भाषा अर्थ में किसी प्रकार का दिखावटीपन है। उनका काव्य रस स्निग्ध और प्रसादपूर्ण भाषा का अनुपम उदाहरण है।

मतिराम की भाव व्यंजक व्यापारों की शृंखला भी सीधी और सरल है। कवि मतिराम को वचन वक्रता से भी परहेज था क्योंकि उनको सच्चा कवि हृदय मिला था। उन्होंने अलंकारों के उदाहरण अत्यन्त स्पष्ट रूप में दिये। जनजीवन के चुने हुए चित्र काव्य में समाहित करके पाठकों को सोचने की नई दिशा प्रदान की।

मतिराम का अध्ययन भले ही व्यापक नहीं रहा हो किन्तु उन्होंने गहरा चिन्तन करके विषय की तह तक जाने का सफल प्रयास किया। वे सरल और गंभीर व्यक्ति थे। आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में उन्होंने अतिशयोक्ति का सहारा नहीं लिया। जहाँ भी गुण दिखाई देते थे वे सहज ही उन्हें ग्रहण करने में सफल रहते थे। उन्होंने किसी की निन्दा नहीं की। वे विचारों और व्यवहार से सर्वथा स्वच्छ थे।

8.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(दानवीर महिमा से चयनित अंश)

(1)

सुरजन वंस राव भावसिंह सूरज तू,
तोते आज जगै जग जप–तप–जाग है।
झलकै ललाई मुख अमल कमल तेरे,
हिये हरिचरन कमल अनुराग है।।
सत्ता के सपूत तैं जगाई 'मतिराम' कहै,
लहलही कीरति कलप बेलि बाग है।
ऊँचे मन ऊँचे कर ऊँचे–ऊँचे करि दै कै,
ऊँचे करे भूमि के भिखारिन के भाग है।।

शब्दार्थ – जगे = जाग गये, अमल = निर्मल, अनुराग = प्रेम, कलप बेल = कल्पलता या कल्पवृक्ष, करी = हाथी।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के कवि भूषण द्वारा विरचित 'ललित ललाम' ग्रन्थ से संकलित कवितांश से उद्धृत है जिसमें कवि ने अपने आश्रयदाता बूंदी नरेश भावसिंह की दानवीरता का वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि मतिराम भावसिंह महाराज की दानवीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे सुरजन वंशोत्पन्न राव भावसिंह! तुम तो वास्तव में सूर्य हो। क्योंकि आज तुम्हारे कारण ही संसार में जाग्रति आई है तथा जप–तप का प्रसार होने लगा है। निर्मल कमल के समान तुम्हारे सुन्दर मुख पर ललिमा झलक रही है। तुम्हारे हृदय में भगवान के चरण–कमलों के प्रति पूर्ण अनुराग है। हे राव सत्ता के सपूत! मैं कवि मतिराम तेरे यश का बखान करता हूँ। तेरी कीर्ति रूपी कल्पलता संसार रूपी बाग में निरन्तर फैलती हुई हरी भरी रहे। तुमने उदार मन से ऊँचे हाथों से हाथियों का दान करके इस धरती के भिखारियों के भाग्यों का उदय किया है अर्थात् तुम्हारी दानवीरता के कारण सभी भिखारी सम्पन्न हो गये हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में रावराजा भावसिंह की दानवीरता व प्रशस्ति का वर्णन किया है।
2. कवि की राज भक्ति मुखरित हुई है।
3. प्रस्तुत अवतरण में यमक, अनुप्रास, रूपक और उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
4. मनहरण कवित्त छन्द की गेयता और नाद–सौन्दर्य भावानुरूप है।

(2)

दिन–दिन दीने दूनी सम्पत्ति बढत जात,
ऐसो याको कछु कमला को बर–बर है।
हेम हय हाथी हीर बकसि अनूप जिमि,
भूपति को करत भिखारिन को घर है।।
कहै मतिराम और जाचक जहान सब,
एक दानि सत्रुसालनंद जु को कर है।
राव भावसिंह जु के दान की बढाई देखि,
कहा कामधेनु है कछु न सुरतरु है।।

शब्दार्थ – ऐसो = ऐसा, याको = इसका, कमला = लक्ष्मी, बर–बर = श्रेष्ठ वरदान, हेम = सोना, हय = घोड़ा, हीर = हीरे, अनूप = कीमती, अनुपम, जाचक = याचक, जहान = संसार, सुरतरु = कल्पवृक्ष।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' का महाकवि मतिराम द्वारा रचित दानवीर महिमा शीर्षक पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि ने अपने आश्रयदाता राव भावसिंह की दानशीलता का सुन्दर वर्णन किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कवि मतिराम अपने आश्रयदाता बूंदी के राव राजा भावसिंह की दानवीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राव राजा भावसिंह प्रतिदिन पर्याप्त दान करते हैं किन्तु उनकी सम्पत्ति कम नहीं होती है, अपितु निरन्तर दुगनी ही रहती है। इसे देखकर लोगों का कहना है कि राव राजा को लक्ष्मी का ऐसा श्रेष्ठ वरदान मिला हुआ है जिससे उसकी सम्पत्ति दान करते रहने पर भी बढती ही चली जाती है। राजा के द्वारा याचकों को सोना, घोडे, हाथी, हीरे आदि बहुमूल्य वस्तुएँ दान स्वरूप दी जाती हैं उनकी दान देने से तो ऐसा प्रतीत होता है, मानों वह राजा का दरबार नहीं, बल्कि भिखारियों का घर जैसा लगने लगता है। राजा अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का मुक्त हाथों से दान करता है। कवि कहते हैं इस संसार में अन्य सब लोग याचक हैं, केवल शत्रुसाल के पुत्र राजा भावसिंह के दोनों हाथ ही सभी याचकों को दान देने में समर्थ रहते हैं। इस प्रकार राजा के द्वारा किये जाने वाले दान की प्रशंसा के आगे कामधेनु तथा कल्पवृक्ष दोनों ही मनोकामना पूर्ण करने वाले हैं, किन्तु राजा भी सभी याचकों को मनवांछित दान देता है।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में राव राजा भावसिंह की दानवीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है।
2. कवि ने राज प्रशस्ति गाई है।
3. प्रस्तुत अंश में अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
4. मनहरण कवित्त छन्द की गेयता, पद मैत्री और नाद सौन्दर्य प्रशंस्य है।

(3)

मौज दरियाब राव सत्रुसाल तने जाको,
जगत मैं सुजस सहज सति मान है।
बिबुध समाज सदा सेवत रहत जाहि,
जाचकानि देत जो मनोरथ को दान है।।
जाके गुन–सुमन–सुवास तें भुदित मन,
सांच 'मतिराम' कवि करत बखान है।
जाकी छांह वसत बिराजे ब्रज राज यह,
भावसिंह सोई कल्पद्रुम दिवान है।।

शब्दार्थ – दरियाब = सागर, सतिमान = आलोकित, व्याप्त, बिबुध = विद्वजन, सुमन सुवास = पुष्पों की सुगन्ध, छाब = छाया, आश्रय, दिवान = दानकर्त्ता, उपकारी।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के मतिराम द्वारा विरचित 'दानवीर महिमा' शीर्षक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने अपने आश्रयदाता राव राजा भावसिंह की विपुल उदारता का मनोरम चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि मतिराम अपने आश्रयदाता की दानवीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राजा भावसिंह का जीवन अत्यन्त सुखमय और विलासिता से परिपूर्ण है। इस संसार में राजा का सुयश स्वाभाविक रूप से सर्वत्र व्याप्त है। वे सदैव देवों की आराधना करते हैं और विद्वज्जनों का सदैव सम्मान करते हैं एवं याचकों को उनकी वांछानुसार दान प्रदानकर उन्हें प्रसन्न करते हैं। कवि मतिराम कहते हैं कि जिनके गुण रूपी पुष्प की महक से प्रसन्न होकर के कविजन उनका यशोगान करते हैं, ऐसे महाराज भावसिंह कल्पवृक्ष के समान मनोकामनापूर्ण करने वाले और सभी के परम हितैषी है।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में कवि ने अपने आश्रयदाता की दानवीरता का मुक्त कण्ठ से वर्णन किया है।
2. अवतरण में अनुप्रास, श्लेष, रूपक और उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. मनहरण छन्द की सम्पूर्ण योजना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(युद्धवीर से चयनित अंश)

(4)

सत्ता को सपूत राव संगर को सिंह सोहैं,
जैतवार जगत करेरी किरवान कौ।
कहै 'मतिराम' अबलम्ब राजे धरम को,
महोदधि मरजाद मेरु परिमान कौ।।
कीरति की कौमुदी सुछाई छिति छोरनि लौं,
कमल कलानिधि है कुल चहु बान को।
दानि कलपद्रुम सुजानमनि भाव सिंह,
भानु भूमि तल को दिवान हिन्दुवान को।'

शब्दार्थ – सत्ता = राज्य, संगर = युद्ध क्षेत्र, जैतवार = विजयी, करेरी = पैनी, किरवान = तलवार,, महोदधि = सागर,, छिति = धरती, कलानिधि = चन्द्रमा, सुजानमनि = उदार।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के महाकवि मतिराम द्वारा विरचित 'दानवीर व युद्धवीर' कविता शीर्षक से उद्धृत है, जिसमें कवि ने अपने आश्रयदाता राव राजा भावसिंह के पराक्रम का वर्णन किया है।

व्याख्या – कविवर मतिराम राव राजा भावसिंह के शौर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि शत्रुसाल के सुपुत्र राव भावसिंह युद्ध भूमि पर सिंह के समान शोभायमान होते हैं। वे अपनी पैनी तलवार से सम्पूर्ण संसार को जीतने की क्षमता रखते हैं। जिस प्रकार पर्वत सूमेरु समुद्र की मर्यादा का परिमाण है, उसी प्रकार राव राजा भावसिंह भी धर्म का आश्रय होकर उसी परिमाण में शोभायमान लगते हैं। उनकी कीर्ति की चन्द्रिका सम्पूर्ण पृथ्वी पर चहुँओर आलोकित है। उनके प्रताप के कारण बूंदी के चौहानों का कुल निर्मल चन्द्रमा के समान है। राव राजा भावसिंह कल्पवृक्ष के समान मनचाहा वर देने वाले हैं। वे इस पृथ्वी पर अपने तेज के कारण सूर्य के समान हैं और हिन्दुओं के सच्चे हितैषी हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में कवि ने अपने राजा के पराक्रम व दानवीरता का ऊहात्मक वर्णन किया है।
2. प्रस्तुत अंश में अनुप्रास, रूपक, काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. कवित्त छन्द की पद योजना व नाद सौन्दर्य प्रशंसनीय है।

(5)

सुरजन कै सी सुरजन ही में साहिबी है,
भोज कै सी भोज में अंकड बड भाल मैं।
इतनेस कै सी रतनेस में कहत मति
राम करतूति जीति जाके करवाल मैं।
गोपीनाथ कै सी गोपीनाथ में सपूती भई,
सत्रुसाल कै सी रजपूती सत्रुसाल मैं।
भूमि सब देखी और काहू में न पैरवी,
भाव सिंह कै सी भाव सिंह यहि पाल मैं।।'

शब्दार्थ – सुरजन = सुर्जन वंशोत्पन्न देवता, भोज = राजा भोज, रत्नेश = समुद्र, गोपीनाथ = श्रीकृष्ण, शत्रुसाल = शत्रुओं को पीडित करने वाला राजा शत्रुसाल, भाव सिंह = सिंह जैसा तेज राजा भाव सिंह।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के महाकवि मतिराम द्वारा विरचित 'युद्धवीर' शीर्षक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने अपने आश्रयदाता राव राजा भाव सिंह के शौर्य का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कविवर मतिराम राजा भाव सिंह के प्रताप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राजा राव सुर्जन वंशोत्पन्न भावसिंह का वैभव विलास देवताओं के समान है। इतिहास में प्रसिद्ध धारा नगरी के राजा भोज की भांति राजा भाव सिंह सभी प्रकार के वैभव और स्वाभिमान की सुरक्षा के कारण भाग्यशाली हैं। सागर के तुल्य कीमती रत्नों से युक्त हैं अर्थात् उनके पास अनेक कीमती रत्नों का आगार सा भरा हुआ है। वे अपने शौर्य और तलवार के बल पर सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर चुके हैं। श्रीकृष्ण की तरह वे सभी रानियों के नाथ तथा अपनी माँ के सपूत हैं। राजा राव शत्रुसाल की तरह अपने शत्रुओं को दमित करने में अपनी राजपूती शाही आन–बान को धारण किये हुए हैं।

कवि मतिराम कहते हैं कि मैंने कई राज्य देखें, किन्तु कहीं पर इतना सुन्दर शासन और पराक्रम नहीं देखा। इस कारण राजा भावसिंह और उनका शासन अद्वितीय है।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने भाव सिंह की तुलना राव सुर्जन एवं देवताओं से की है।
2. अपने आश्रयदाता के प्रशस्ति का भाव व्यंजित हुआ है।
3. अनुप्रास, श्लेष, उपमा, पुनरूक्ति प्रकाश एवं काव्यलिंग अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है।
4. कवित्त छन्द की गति–यति भावानुकूल है।

(6)

तेरो कह्यो मैं सिगरो मैं कियो निसि धौंस तप्यो तिहुं तापन पाई।
मेरो कह्यो अब तू करि जो सब दाह मिटै परिहै सियराई।।
संकर पायति में परि रे मन थोरे ही बातनि सिद्ध सुहाई।
ऑक धतूरे के फूल चढाये ते रीझत है तिहुँ लोक के साईं।।

शब्दार्थ – सिगरो = सभी, निसि–धौंस = दिन रात, तापन = कष्ट, दाह = संताप, सियराई = शीतलता, संकर = शिव जी, सांई = स्वामी।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के महाकवि मतिराम द्वारा विरचित 'भक्तिभाव' से सम्बन्धित है जिसमें कवि ने अपने मन को सम्बोधित करते हुए उसे भक्ति भाव के लिये प्रेरित किया है।

व्याख्या – कवि मतिराम अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मन! मैंने दिन–रात तुम्हारे कहे गये सभी आदेशों की अनुपालना की है, तुम्हारा सभी कहा माना है। दैविक, दैहिक और भौतिक तीनों संतापों को सहन करते हुए भी मैं रात–दिन संतप्त रहा किन्तु उसका कोई लाभ नहीं रहा। अब तुम मेरा कहा मानों अर्थात् मेरे कथनानुसार आचरण करो जिससे सम्पूर्ण कष्टों का शमन हो जायेगा। कवि मतिराम कहते हैं कि हे मन! मेरे कथनानुसार तुम अब देवादिदेव महादेव नाथ के श्रीचरणों में चले जाओ, उनकी भक्ति करो क्योंकि भगवान शिव की थोड़ी भक्ति से ही सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। भगवान शिव भोलेनाथ हैं, सरल और संतोषी हैं। वे सामान्य पुष्प अर्थात् आक–धतूरे द्वारा ही प्रसन्न हो जाते हैं। तीनों लोगों के स्वामी भगवान शिव सामान्य भक्ति आस्था रखने मात्र से अपने भक्तों पर अनुग्रह रखते हैं तथा प्रसन्न होकर मनोकामना पूर्ण करते हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने मन को एकाग्र भक्ति भावना की प्रेरणा दी है।
2. भगवान शिव को सरल व संतोषी देव बताया है।
3. अनुप्रास एवं काव्यलिंग अलंकार एवं भाव काव्य का प्रयोग किया गया है।
4. सवैया छन्द तथा ब्रजभाषा का माधुर्य प्रशंस्य है।

(7)

गुच्छनि के अवतंस लसै सिर पच्छन अच्छ किरोट बनायौ,
पल्लव लाल समेत छटी कर–पल्लव सौ 'मतिराम' सुहायो।
गुंजन के उर मंजुल हार सुकंजनि तै कढि बाहर आयो,
आजु को रूप लखैं नन्द लाल कों आजुहि नैनहि को फल पायो।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – गुच्छनि = समूह, अबतंस = कंधे, लसै = शोभायमान, पच्छन = मोर पंख, अच्छ = सुन्दर, करपल्लव = कोमल हाथ, गुंजन = गुंजाओं का, उर = वक्षस्थल, सुकंजनि = सुन्दर कमलों से।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के मतिराम द्वारा विरचित 'भक्ति भावना' प्रसंग से अवतरित है, जिसमें कवि ने श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए अपनी भक्ति भावना को व्यक्त किया है।

व्याख्या – कविवर मतिराम भगवान श्रीकृष्ण को रूप–माधुरी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण के सुन्दर कन्धों पर उनके काले घुंघराले बालों के गुच्छे बहुत अधिक शोभायमान हो रहे हैं तथा उनके सिर पर मोर पंखों का मुकुट शोभायमान है। उनके करकमलों में लाल पल्लवों की छडी ऐसी लग रही है, मानों वह साक्षात् हाथ रूपी पल्लव ही हो। उनके वक्षस्थल पर सुन्दर कमलों से बाहर निकले हुए गुंजाओं से निर्मित सुन्दर हार शोभायमान लग रहा हो। कवि कहते हैं कि प्रभु कृष्ण की मनमोहक रूप माधुरी के दर्शन कर आज मैंने अपने नेत्रों का सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लिया है।

विशेष

1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है।
2. अवतरण में अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक एवं काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया है।
3. सवैया छन्द की यति–गति एवं पद मैत्री प्रशंसनीय हैं।

(8)

कुंदन को रंग फीको लगै, झलकै अति अंगनि चारु गोराई।
आखिन में अलसानि, चित्तोन में मंजु विलासन की सरसाई।।
को बिन मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों–ज्यों निहारिये नेरे व्है नैननि त्यों–त्यों खरी निकरै–सी निकाई।।

शब्दार्थ – कुन्दन = सोना, चित्तौन = चितवन, मंजु = सुन्दर, सरसाई = सरसता, लहै = प्राप्त करै, नेरे = नजदीक, निकाई – सुन्दरता।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के महाकवि मतिराम द्वारा विरचित 'श्रृंगार सुषमा' प्रसंग से अवतरित है, जिसमें कवि ने नायिका के रूप सौन्दर्य का मनोहर चित्रण किया है।

व्याख्या – कविवर मतिराम नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नायिका के शरीर की आभा इतनी अनुपम है कि उसके सम्मुख सोने की आभा भी फीकी पड़ने लगती है उसके अंगों व प्रत्यंगों से अत्यधिक गोरापन झलक रहा है। यौवनोन्माद के कारण उसकी सुन्दर ऑखों में उन्माद छाया हुआ है और उसके चितवन में सुन्दर श्रृंगार–विलास की सरसता दिखाई दे रही है। कवि कहते हैं कि उसकी मनमोहक मुस्कान को देखकर ऐसा कौन होगा जो बिना मूल्य के उसके सामने बिक नहीं जायेगा। जैसे–जैसे उस नायिका की ऑखों को नजदीक से देखा जाता है, त्यों–त्यों उसकी सुन्दरता और अधिक निखरी हुई प्रतीत होती है।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में नायिका के रूप सौन्दर्य का सहज व स्वाभाविक वर्णन किया है।
2. रीतिकालीन अन्य श्रृंगारिक कवियों की भाँति नायिका का ऊहात्मक सौन्दर्य वर्णित नहीं है।
3. अनुप्रास, व्यतिरेक, विनोक्ति और वीप्सा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
4. प्रस्तुत अवतरण सवैया छन्द की रचना है।

(9)

सारी जरतारी की झलक झलकति तेसी,
केसरी की अंग राग कीन्हो सब तन में।
तीखन तरनि के किरन ते दुगन जोति,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जगत जवाहर जटित आमरन में।।
कवि 'मतिराम' आभा अंगनि अंगारन की,
धूमकी सी धार छवि छाजति कचन में।
ग्रीष्म दुपहरी में हरि को मिलन जात,
जानी जात नारि न दवारि जुत वन में।।

शब्दार्थ – जरतारी = जबका सितारों से जर्क–वर्क, तरनि = सूर्य, जवाहर जटित = हीरे–मोतियों से जड़ी हुई, अंगारनि = अंगारों की, कचन = बालों में, दवरिजुत = प्रदीप्त दावाग्नि।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण में हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के महाकवि मतिराम द्वारा विरचित 'शृंगार सुषमा' शीर्षक प्रसंग से अवतरित है, जिसमें कवि ने एक सुन्दर नायिका की शृंगार सुषमा का मनोरम वर्णन किया है।

व्याख्या – कविवर मतिराम नायिका के शृंगार सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस नायिका ने जो साड़ी अपने सुन्दर शरीर पर धारण कर रखी है वह सलमा–सितारों से युक्त बहुत सुन्दर लग रही है, जिससे उसका सौन्दर्य और अधिक बढ़ गया है। उसने अपने सारे शरीर पर केशर का अंग राग (पाउडर) लगा रखा है तथा शरीर पर हीरे–मोतियों से जर्क–वर्क आभूषण धारण कर रखे हैं। उसके आभूषणों का तेज सूर्य की किरणों से दुगनी चमक या आभा युक्त है। कवि कहते हैं कि उस समय उसकी शारीरिक आभा प्रदीप्त अंगारों की तरह लग रही है। उसके सिर पर काले–घुंघराले बाल उन अंगारों से निकलने वाले धुएँ की घटा के समान प्रतीत होते हैं। वह नायिका ग्रीष्म–ऋतु की दुपहरी में प्रियतम कृष्ण से जब मिलने जाती है तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह कोई नारी नहीं बल्कि जंगल में प्रदीप्त होने वाली दावाग्नि हो।

विशेष

1. प्रस्तुत अंश में कवि ने नायिका के शृंगार सौन्दर्य को नवीनतम उपमानों से उपमित किया है। ये उपमान कवि की कोमल कल्पना के विपरीत है।
2. प्रस्तुत अंश में अनुप्रास, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।
3. मनहरण कवित्त छन्द की पद योजना प्रशंसनीय है।

(प्रकृति वर्णन से चयनित अंश)

(1)

ग्रीष्म हूँ रवि तपत हूँ, रहे जलद जनु झूमि।
तपी दृगनि सीतल करै, गाँव निकट की भूमि।।

शब्दार्थ – जलद = बादल, दृगनि = आँखों को, तपी = संतप्त।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहे में कविवर मतिराम ने 'ऋतु वर्णन' के माध्यम से प्रकृति का सरल व मनोरम चित्रांकन किया है।

व्याख्या – कवि मतिराम प्रकृति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ग्रीष्म ऋतु में सूर्य में प्रचण्डता आ जाती है, वर्षा ऋतु में सम्पूर्ण गगन मण्डल बादलों से झूमने लगता है तथा गाँव के आस–पास की संतप्त भूमि को वर्षा काल शीतलता प्रदान कर देता है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने ग्रीष्म के अवसान और वर्षा ऋतु के आगमन का चित्रण किया है।
2. प्रस्तुत दोहे में अनुप्रास और परिसंख्या अलंकार है।

(2)

मौर भाँवरै भरत हैं, कोकिल कुल मण्डरात।
या रसाल की मंजरी, सौरम सुम सरसात।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – भाँवरे = चक्कर, मण्डरात = मण्डराना, रसाल = आम।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहे में कवि मतिराम ने वसन्त ऋतु की प्राकृतिक छटा का वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि मतिराम वसंत ऋतु के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि चारों ओर भँवरों के समूह पुष्प गुच्छों एवं डालियों पर चक्कर काट रहे हैं और बागों में कोयलों के समूह भी इधर–उधर उड़ रहे हैं। इस ऋतु में आम की बौर पर मनभावन सौरभ बिखरा हुआ है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने वसंत ऋतु के प्राकृतिक सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया है।
2. दोहे में अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(3)

वर्षा ऋतु बीतन लगी, प्रतिदिन सरद उदेति।
लह–लह जोति जुवार की, अरु गंवारि की होति।।

शब्दार्थ – उदोति = प्रारम्भ होना, जुवार = ज्वार, गंवार = ग्वार।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहे में कवि मतिराम ने प्रकृति वर्णन के माध्यम से शरद ऋतु का वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि मतिराम शरद ऋतु की प्राकृतिक छटा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अब वर्षा ऋतु बीतने लगी है और शरद ऋतु आरम्भ होने लगी है। शरद ऋतु में खेतों में ज्वार के पौधे सफेद बालों से लहलहाने लग जाते हैं और ग्वार की खेती भी आकर्षक लगने लगती है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने शरद ऋतु में खेतों के स्वाभाविक सौन्दर्य का वर्णन किया है।
2. प्रस्तुत दोहे में अनुप्रास अलंकार है।
3. कवि का कृषि क्षेत्र में ज्ञान द्रष्टव्य है।
4. लल लह में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार।

(4)

सूखी सुता पटेल की, सूखी ऊखनि पेखि।
अब फूली–फूली फिरैं, फूली अरहर देखि।।

शब्दार्थ – सुता = पुत्री या खेती, फूली = प्रसन्न या पकी हुई, सूखी = चिन्तित या सूख गई।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा प्रकृति वर्णन से सम्बन्धित है जिसमें कवि मतिराम ने पकी हुई फसल का वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि मतिराम कहते हैं कि हेमन्त ऋतु में फसल पककर पीली पड़ जाती है। पहले जो किसान की पुत्री चिन्ता के कारण सूख रही थी अर्थात् चिन्ताग्रस्त थी, वह अब अरहर की पकी हुई फसल को देखकर प्रसन्न हो गई है। अर्थात् फसल पक जाने पर किसान का परिवार अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है।

विशेष

1. फसल पक जाने पर खेतों का सौन्दर्य और अधिक बढ़ जाता है।
2. प्रस्तुत दोहे में पुनरुक्ति प्रकाश और यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।
3. फसल कृषि सूख जाने किसान कापरिवार दुखी होता है तथा कृषि फसल अच्छी होने पर उनमें उत्सव का संचार होता है क्योंकि कृषि ही उनकी आजीविका है।

(5)

ग्रीष्म ऋतु की दुपहरी, चली बाल वन कुंज।
अंग लपहिं तीछन लुएँ, मलय पवन के पुंज।।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – ग्रीष्म = गमी, बाल = बाला (नायिका), तीछन = तीक्ष्ण।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहे में कवि मतिराम ने ऋतु वर्णन के माध्यम से ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि मतिराम ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ग्रीष्म की दुपहरी में एक नायिका उपवन में जाने लगी, उस समय मलयानल का पुंज भी ग्रीष्म के कारण इतना तप रहा था कि उससे नायिका के शरीर पर तीक्ष्ण लू की लपटे आने लगी और वह नायिका गर्मी में झुलसने लगी।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के अंगों की सुकुमारता और ग्रीष्म की तपन का वर्णन किया है।
2. प्रस्तुत दोहे में अनुप्रास और विरोध अलंकार का प्रयोग किया गया है।

8.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

8.2.1 अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 कविवर मतिराम की गणना किस प्रकार के कवियों में की जाती है?
उत्तर – रीतिकाल के रससिद्ध कवियों में कवि मतिराम की गणना की जाती है।

प्रश्न 2 कवि मतिराम का जन्म कब और कहाँ हुआ था?
उत्तर – कवि मतिराम का जन्म सं. 1674 में उत्तर प्रदेश के तिकवांपुर (त्रिविक्रमपुर) में हुआ था।

प्रश्न 3 मतिराम के पिता का क्या नाम था तथा ये किसके अनुज और अग्रज थे?
उत्तर – मतिराम के पिता का नाम विश्वनाथ त्रिपाठी था तथा रीतिकाव्य धारा के प्रवर्तक चिन्तामणि के अनुज तथा महाकवि भूषण के बड़े भाई थे।

प्रश्न 4 रीतिकालीन आचार्य के रूप में मतिराम ने किन ग्रन्थों की रचना की?
उत्तर – मतिराम ने रसराज, ललित ललाम व वृत्त कौमुदी नामक ग्रन्थों का सृजन किया।

प्रश्न 5 आचार्य मतिराम ने अलंकारों का विवेचन किस रचना में किया?
उत्तर – आचार्य कवि मतिराम ने अपने ग्रन्थ 'ललित ललाम' में अलंकारों का विवेचन किया।

प्रश्न 6 'अलंकार पंचाशिका' में मतिराम ने किसका परिचय दिया है?
उत्तर – अलंकार पंचाशिका में कवि मतिराम ने पचास प्रमुख अलंकारों का परिचय दिया है।

प्रश्न 7 मतिराम कृत 'वृत्त कौमुदी' किससे सम्बन्धित ग्रन्थ है?
उत्तर – 'वृत्त कौमुदी' छन्द शास्त्र से सम्बन्धित है।

प्रश्न 8 कविवर मतिराम किन-किन राजाओं के आश्रय में रहे?
उत्तर – कविवर मतिराम को बूंदी नरेश भावसिंह, राजा ज्ञान्चन्द व शाहजहां के आश्रय में रहने का अवसर प्राप्त हुआ।

प्रश्न 9 कवि मतिराम की मुख्य मुक्तक रचना का क्या नाम है?
उत्तर – कवि मतिराम ने 'मतिराम सतसई' नामक मुक्तक रचना का सृजन किया।

प्रश्न 10 कवि मतिराम ने किस रस को प्रमुख रूप से अपने काव्य में अपनाया?
उत्तर – मतिराम ने श्रृंगार रस को प्रमुखता प्रदान की।

प्रश्न 11 मतिराम के काव्य की प्रमुख दो प्रवृत्तियों को बताइये।
उत्तर – श्रृंगारिकता तथा आश्रयदाताओं की प्रशस्ति को कवि मतिराम की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ है।

प्रश्न 12 'सत्ता के सपूत ते जगाई मतिराम कहैं, लहलही कीरति कलप बेलि बाग है।।' कवि ने किस विशेषता से राजा भावसिंह को कल्पलता कहा है।
उत्तर – याचकों को मनचाहा दान देने के कारण कवि ने राजा भावसिंह को कल्पलता माना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 13 कहै मतिराम और याचक जहान सब, एक दान सत्रुसाल नन्द जु को कर है।' प्रस्तुत पंक्तियों में सत्रुसाल नन्द किसे कहा है?

उत्तर – प्रस्तुत पंक्तियों में सत्रुसाल नन्द बूंदी नरेश भावसिंह के लिये कहा गया है।

प्रश्न 14 'सत्ता को सपूत राव संगर को सिंह सोहै।' में कवि ने राजा भावसिंह की किस विशेषता का चित्रण किया है?

उत्तर – प्रस्तुत पंक्तियों में राजा भावसिंह की युद्धवीरता एवं शौर्य का वर्णन किया है।

प्रश्न 15 'सुरजन कैसी सुरजन ही में साहिबी है।' कथन क क्या आशय है?

उत्तर – अर्थात् सुर्जन वंशी राजा भावसिंह देवताओं के समान प्रतापी एवं प्रभावशाली हैं।

प्रश्न 16 'ऑक धतूरे के फूल चढाई ते रीझत हैं तिहुँ लोक के सॉई' पंक्ति में कवि ने क्या स्पष्ट किया है?

उत्तर – प्रस्तुत पंक्ति में कवि की भगवान शिव के प्रति भक्ति भावना की पुष्टि होती है।

प्रश्न 17 'गुंजन के उर मंजुल हार सुकंजनि ते कढि बाहर आयौ' किसकी रूप माधुरी या लीला विलास का वर्णन किया है?

उत्तर – प्रस्तुत पंक्तियों गें श्री कृष्ण की लीला का वर्णन है।

प्रश्न 18 'ग्रीष्म दुपहरी में हरि कौं मिलन जात, जानी जात नारि न दबारि जुत बन में।' प्रस्तुत पंक्ति में कवि ने क्या कल्पना व्यंजित की है।

उत्तर – लम्बे काले केशों वाली तथा नग जडित आभूषणो वाली नायिका मानों धूम–शिखा से युक्त दावाग्नि वन में चली जा रही है।

प्रश्न 19 'भौर भौंवरे भरत हैं कोकिल कुल मण्डरात।' – कवि ने किस ऋतु का वर्णन किया है?

उत्तर – प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने वसन्त ऋतु की शोभा का वर्णन किया है।

प्रश्न 20 'ज्यौं–ज्यौं निहारियै नेरे है नैननि त्यों–त्यों खरी निकरै सी निकाई।' पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – नायिका के रूप को जितनी बार नजदीक से देखें वह उतना ही रम्य लगने लगता है।

8.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 'मतिराम सतसई' की विशेषता पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिये।

उत्तर – आचार्य कवि मतिराम ने 'मतिराम सतसई' नामक मुक्तक काव्य का सृजन किया, जिसका रचनाकाल कुछ समालोचक संवत् 1690 मानते हैं, किन्तु नवीनतम शोधानुसार कवि का जन्म 1674 में हुआ था। इसके बाद ये बूंदी नरेश भावसिंह के आश्रय में रहे और वहीं पर अन्य ग्रन्थों के साथ 'सतसई' की रचना की। अतः इस मुक्तक काव्य का सृजन सं. 1720 के आस–पास मानना उचित होगा। यह रचना सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'रस–राज–ललित– ललाम' से संग्रहित हैं। इसमें कुल सवा सौ छन्द हैं जो भक्ति, नीति और ज्ञान से सम्बन्धित हैं। इसमें कवि ने लोकानुभव की सूझ–बूझ का अच्छा समावेश किया है। श्रृंगार की दृष्टि से यह विशेष उल्लेखनीय माना जाता है। इसके प्रत्येक छन्द में मानों श्रृंगार–रस की निर्मल धारा प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है।

कुछ समालोचकों का मानना है कि सतसई काव्य–परम्परा में यद्यपि 'मतिराम सतसई' में मौलिकता भाव–प्रवणता एवं विदग्धता आदि पर्याप्त मात्रा में है तथापि इसका प्रभाव स्पष्टतया बिहारी सतसई का दिखाई देता है। फिर भी इसमें बिहार का कोरा अनुकरण नहीं है। इसमें कवे ने अपनी प्रतिभा–कल्पनाशीलता का अच्छा परिचय दिया हैं। मतिराम के इस काव्य में संयोग और वियोग के अनेक मनोरम चित्र देखने को मिलते हैं–

'बाल अलप जीवन भई ग्रीषम सरित सरुप।
अब रस परिपूरन करौ, तुम धन स्याम अनूप।।

इसी प्रकार भक्ति भावना से सम्बन्धित अभिव्यक्ति –

मो मन तम तोमहि हरौ, राधा को मुख चन्द।
बढे जाहि लखि सिंधु लौ, नन्द नन्दन आनन्दं।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मतिराम ने नीति, लोकानुभव और प्रकृति का भी इस रचना में वर्णन किया है। इनकी रचना सतसई के अल्प दोहो में भी पर्याप्त विषय–वैचित्र्य है–

'भोर भाँवरे भरत हैं कोकिल कुल मण्डरात।
या रसाल की मंजरी, सौरम सुभ सरसात।।
ग्रीष्म ऋतु की दुपहरी, चली बाल वन कुंज।
अंग तपहि तीछन लुएं, मलय पवन के पुंज।।

अतः हम कह सकते हैं कि 'बिहारी सतसई' के बाद मतिराम सतसई श्रेष्ठ रचना मानी गई है, जिसमें भक्ति, नीति, लोकानुभूति तथा शृंगार–वर्णन की सुन्दर भंगिमा समाहित है। इसमें प्रकृति–प्रत्यवेक्षण और उक्ति चमत्कार पर्याप्त मात्रा में है।

8.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 आचार्य कवि मतिराम के काव्यगत भावपक्ष एवं कला पक्ष की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

आचार्य महाकवि मतिराम के काव्य सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – रीतिकालीन कवियों में आचार्य कवि मतिराम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये रीति काव्य धारा के मुख्य प्रवर्तक आचार्य चिन्तामणि के छोटे भाई थे। इनका जन्म सं. 1674 में उत्तर प्रदेश के फतहपुर जिले के त्रिविक्रमपुर (तिकवांपुर) में हुआ था। ये विश्वनाथ त्रिपाठी के सुपुत्र थे। इनका जीवन काल अनेक राजाओं के आश्रय में व्यतीत हुआ जिनमें दिल्ली सम्राट जहाँगीर, बूँदी सम्राट भावसिंह और कुमायुँ के राजा ज्ञानचन्द तथा बुंदेलखण्ड के राजा स्वरूप सिंह प्रमुख हैं। मतिराम ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें फूल मंजरी, रसराज, ललित ललाम, सतसई, अलंकार पंचाशिका तथा वृत्त कौमुदी प्रमुख हैं।

रीतिकालीन आचार्य के रूप में मतिराम ने रसराज, ललित ललाम और वृत्त कौमुदी ग्रन्थों की रचना की। 'रसराज' ग्रन्थ में शृंगार रस एवं नायक–नायिका भेद का विवेचन दोहा, कवित्त और सवैया छन्दों में प्रस्तुत किया। कवि ने संस्कृत काव्य ग्रन्थों का आश्रय ग्रहण कर के छायावाद की प्रवृत्ति को भी दर्शाया है। उन्होंने 'ललित ललाम' में अलंकारों का लक्षण–उदाहरण सहित विवेचन किया है। 'अलंकार पंचाशिका' के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इसमें प्रमुख अलंकारों का वर्णन किया है। 'वृत्त कौमुदी' ग्रन्थ छन्दशास्त्र से सम्बन्धित है। इनके 'साहित्य सार' और 'लक्षण शृंगार' नामक ग्रन्थों का उल्लेख भी मिलता है जो इस समय अप्राप्य है।

काव्य सौन्दर्य

आचार्य कवि मतिराम को रीति काव्य धारा के रससिद्ध कवियों में अग्रणी माना जाता है। उनके काव्य में प्रमुख रूप से दो प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती है – शृंगारिकता और आश्रयदाताओं की प्रशस्ति। इन्होंने शृंगार वर्णन के साथ नायक नायिकाओं का सरलतम शब्दों में चित्रण किया है। भाषा प्रसादपूर्ण होने से मतिराम का कलापक्ष जितना सहज है उतना ही भाव पक्ष सहजगम्य है।

भाव सौन्दर्य

1. रस योजना – आचार्य के राथ–राथ कवि के रूप में मतिराम को पर्याप्त राफलता प्राप्त हुई है उनके काव्य में शृंगार, भक्ति और नीति की त्रिवेणी प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। कवि ने अपने आश्रयदाताओं की वीरता, युद्ध कौशल और उदारता का चमत्कारी वर्णन किया है और दानवीर व युद्ध वीरों के भेद को सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है। इस कारण भूषण की तरह वीर रस की योजना में मतिराम के काव्य में किसी प्रकार की योजना में मतिराम के काव्य में किसी प्रकार की न्यूनता दिखाई नहीं देती है फिर भी उनका प्रिय विषय शृंगार रहा है और उसके मनोरम चित्र इनके 'रसराज' और 'ललित ललाम' ग्रन्थ में देखने को मिल जाता है। इनके शृंगार वर्णन में अत्यन्त सहज उपलब्ध है। नायिका की विदग्धा स्थिति को प्रकट करने के लिये कवि ने शृंगार के अत्यन्त मर्यादित और रमणीय रूप प्रस्तुत किये हैं–

'केलि के राति अघाने नहिं दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोउ पानी दे जइयो, भीतर बैठि के बात सुनाई।।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि हरै मतिराम बुलाई।
कान्ह के बोलपै कान न दीन्हों, सुगेह की देहरी पै धरि आई।।

मतिराम के श्रृंगार वर्णन में जहाँ पर सहजता और सरलता है वहीं पर उसमें कवि कल्पना के सुन्दर बिम्बों की भी आकर्षक योजना है। जिस प्रकार बिहारी ने मुग्धा नायिका की आसक्ति को माधुर्य से परिपूरित दर्शाया है। उसी प्रकार मतिराम ने भी नायिका के श्रृंगार का सौन्दर्य अत्यन्त मनभावन ढंग से किया है –

कुन्दन को रंग फीको लगे झलकै अति अंगनि चारु गोराई।
आँखिन में अलसाई चितौन में मंजु विलासन की ससाई।।
को बिनु मोल बिकत नहीं, मतिराम लहैं मुसकानि मिठाई।
ज्यों–ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों–त्यों खरी निकरै सी निकाई।।

2. वीर रस का चित्रण – कविवर मतिराम ने 'ललित ललाम' की रचना राजा भावसिंह के आश्रय में की। इस ग्रन्थ में उन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में तथा उनके गुणों पर प्रकाश डालने के लिये राजा की युद्धवीरता एवं दानवीरता का ओजस्वितापूर्ण वर्णन किया है।

दिन–दिन दीने दूनी सम्पति बढत जाति,
ऐसो याको कछु कमला को बर–बर है।
हेम, हय, हाथी, हीर बकसि अनूप जिमि,
भूपति को करत भिखारिन को घर है।।
कहै मतिराम और जाचक जहान सब,
एक दानि सत्रुसाल नन्द जू को कर है।
राव भाव सिंह जू के दान की बड़ाई देखि,
कहा काम धेनु है कछु न सुरतरु है।

इसी प्रकार मतिराम ने अपने आश्रयदाता की युद्धवीरता एवं रणकौशल का सुन्दर वर्णन किया है–

कोप करि संगरि में खग्ग को पकरि कै,
बहागो बैरि–नारिन को नैन नीर स्रोत है।
कहै मतिराम कीन्हों रीझ कै निहाल यही,
पाबनि के रूप सब गुननि की शोत है।।

3. भक्ति भावना – कविवर मतिराम ने सतसई तथा अन्य ग्रन्थों में भक्ति–विषयक छन्दों की रचना की है जिनमें अपने आराध्य प्रभु राम और श्रीकृष्ण के प्रति अटूट श्रद्धा व्यक्त की गई है –

हिये बसत मुख हँसत हौ हमको करत निहाल।
घट–घट–वासी ब्रह्म तुम, प्रकट भये नन्द लाल।।

इस प्रकार मतिराम ने अपने राम को भी अपना आराध्य देव माना और वे अपने आपको राममय बनाना चाहते थे। इसके एक सच्चे भक्त की तन्मयता एवं सारुप्य प्राप्त करने की आस्था भी व्यक्त की –

मेरी मति में राम हैं, कवि मेरे मति राम।
चित्त मेरो आराम में चित्त मेरे आ राम।।

कवि मतिराम ने सहज भाव से अपनी निष्ठा, विश्वास एवं अनन्यता की व्यंजना की है और अपने आराध्य की कृपाकांक्षा हेतु सांसारिक जीवन से मुक्ति की कामना की –

तेरो कह्यो कियो सिगरो मैं कियो निसि द्यौस तप्यो तिहु तापन पाई।
मेरो कह्यो अब तू करि जो सब दाह मिटै परिहै सियराइ।।
संकर पायन में परिरे मन थोरे ही बातनि सिद्धि सुहाई।
ऑक धतूरे के फूल चढाएं ते रीझत हैं तिहुँ लोक के साईं।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. प्रेम भाव की अभिव्यंजना – रीतिकालीन कवियों में प्रेम की विभिन्न मानसिक अवस्थाओं का चित्रणकर विप्रलम्भ शृंगार का परिपोष किया है। कवि मतिराम ने भी प्रेम भाव की ऊहात्मक व्यंजना की है। यथा – विरह विह्वल नायिका की प्रलय नामक विरह दशा का चित्रण 'दीपशिखा' के उपमान से किया है। इसमें नायिका के प्रेम–भाव की तीव्रता का प्रतिपादन किया है। यथा –

जा दिन ते छवि सौं मुसक्यान कहूँ निरबे नन्दलाल बिलासी।
ता दिन ते मन ही मन में 'मतिराम' पियें मुसकान सुधा सी।।
नेकु निमेष न लागत नैन चकी चितबै तिय देव तिया सी।
चन्द्रमुखी न हलै न चलै निरबात निवास में दीप सिखा सी।।

जब नायिका के हृदय ने प्रेम–भाव का उत्कर्ष बढ़ने लगता है और प्रियतम के प्रत्येक बिलास को मनोरम मानकर उस पर एकदम आसक्त हो जाती है तो उस प्रेम दशा का भी मतिराम ने सुन्दर चित्रण किया है–

'मोर पखा 'मतिराम' किरीट मैं कण्ठ बनी बन माल सुहाई।
मोहन की मुसकानि मनोहर कुण्डल डोलनि में छवि छाई।।
लोचन बोल विसाल विलोकन को न विलोकि भई बस माई।
बा मुख की मधुराई कहा कहौ मीठी लगै अखियान लुनाई।।

5. प्रकृति वर्णन – रीतिकालीन कवियों ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति–वर्णन कम ही किया है। उन्होंने वियोग शृंगार के अन्तर्गत जो प्रकृति–चित्रण किया है उसका उद्देश्य केवल नायक या नायिका का चित्रण आलम्बन और उद्दीपन करना रहा है। मतिराम ने प्रकृति का चित्रण आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में किया है, इस कारण इनका प्रकृति–वर्णन अति स्वाभाविक एवं भावपूर्ण रहा है यथा–

भौंरे भांवरे भरत हैं कोकिल कुल मँड़रात।
या रसाल की मंजरी, सौरभ सुभ सरसात।।

इसी प्रकार आलम्बन रूप में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन –

ग्रीष्म हूँ रवि तपत हूँ रहे जलद जनु झूमि।
तपी दृगनि सीतल करै गाँव निकट की भूमि।।
ग्रीषम ऋतु की दुपहरी चली वाल वन कुंज।
अंग लपहि तीछन लुए, मलय पवन के पुंज।।

अतः हम कह सकते हैं कि मतिराम के काव्य का भाव पक्ष अत्यन्त सबल है। इनके काव्य में भाव–वक्रता तथा अतिशयोक्ति का हमेशा अभाव रहा है इससे स्पष्ट होता है कि उन्हें सच्चा कवि हृदय मिला है।

कलापक्ष – रीतिकालीन कवियों में चमत्कारवादी प्रवृत्ति तथा शृंगारिक–विलास अधिक दिखाई देता है। मतिराम में भी दोनों प्रवृत्तियाँ रही हैं परन्तु उन्होंने केवल उक्ति चमत्कार या वचन–वक्रता का आश्रय नहीं लिया है इसकी वजह से उनकी भाषा अत्यन्त सरल, छन्द योजना स्वाभाविक एवं शब्दाडम्बर का अभाव रहा है। मतिराम के काव्य सौन्दर्य का कलापक्ष निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जाता है –

1. भाषा सौष्ठव – मतिराम के काव्य की भाषा यद्यपि ब्रज भाषा है किन्तु उसमें हिन्दी का स्वच्छ एवं गतिशील रूप व्यक्त हुआ है जिसकी वजह से मतिराम की भाषा कृत्रिमता से रहित और शब्दाडम्बरों से मुक्त है। ऐसी स्वच्छ और स्वाभाविक भाषा रीति ग्रन्थ लेखकों में कम ही मिलती है, इस सन्दर्भ में प्रस्तुत उदाहरण दृष्टव्य है–

'गुच्छनि के अवतंस लसै सिर,
पच्छन अच्छ किरीट बनायौ।
पल्लव लाल समेत छरी कर,
पल्लव सौं मति राम सुहायौ।।'

इसमें भाषा की सरलता, ब्रज भाषा का पुट तथा भाषागत प्रसाद गुण स्पष्ट झलकता है। मतिराम में आडम्बरप्रियता एवं चमत्कारी प्रवृत्ति नहीं रही। वैचारिक एवं व्यावहारिक स्वच्छता की तरह उनके काव्य में भाषा सौष्ठव अत्यन्त सहज व सरल दिखाई देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. अलंकार विधान – मतिराम अलंकार की दृष्टि से अन्य रीतिकालीन कवियों में अद्वितीय माने जाते हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'ललित ललाम' में अलंकारों से सम्बन्धित अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इस ग्रन्थ में अलंकारों के लक्षण के साथ ही उदाहरण देकर मतिराम ने अपना आचार्यत्व सिद्ध किया है। उन्होंने दीपक, विभावना, उपमा, अतिशयोक्ति, प्रत्यनीक और समासोक्ति आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में भी यमक और अनुप्रास प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में भी यमक और अनुप्रास के अनेक नये प्रयोग किये गये हैं। अनुप्रास, प्रतीप, काकुवक्रोक्ति तथा स्वाभावोक्ति अलंकार के साथ प्रयोग किया गया है जिसका सुन्दर उदाहरण–

'कुंदन को रंग फीको लगे झलके अति अंगन चारु गोरोई।
आँखिन में अलसानि चित्तौन में मंजु विलासन की सरसाई।।
को बिनु मोल विकात नहीं मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों–ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई।।'

प्रस्तुत उदाहरण में नायिका की श्रृंगार सुषमा का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसी प्रकार यमक अलंकार का प्रयोग –

'मेरी मति में राम हैं कवि मेरे मति राम।
चित्त मेरो आराम में चित्त मेरे आ राम।।'

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग बहुत अच्छे ढंग से किया गया है –

कवि मतिराम आभा अंगनि अंगारनि की,
धूम की–सी हार छबि छाजनि कंचन गें।
ग्रीषम दुपहरी में हरि कौ मिलन जात,
जानी जात नारि न दवारी जुत वन में।।

3. छन्द योजना – रीतिकालीन आचार्यों में कवि मतिराम का महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। उन्होंने छन्दशास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थ 'वृत्त कौमुदी' की रचनाकर उसमें अनेक छन्दों का लक्षणोदाहरण सहित विवेचन किया है। इनके काव्य में युद्धवीर, दानवीर, भक्ति एवं श्रृंगार–वर्णन के लिये जो छन्द मुक्तक काव्य की अभिव्यंजना के लिये उपयुक्त हो सकते हैं उन्हीं का प्रयोग किया गया है। वीर रस के आवेगमय चित्रण में उन्होंने मनहरण कवित्त और दोहा छन्दों का प्रयोग किया है। दोहा जैसे छोटे छन्द में विस्तृत भावों की व्यंजना की है। इनके छन्दों में यति, गति, तुक, लय, वर्णनात्मकता तथा नाद सौन्दर्य आदि का पूर्ण ध्यान रखा है और तुक के निर्वाह के लिये शब्दों की तोड़–मरोड़ नहीं की है। इस कारण कवि मतिराम के छन्दों सहजता एवं स्वाभाविक का साक्षात्कार होता है।

8.3 सारांश

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि रीतिकालीन कवियों में आचार्य मतिराम का काव्य–सौष्ठव अत्यन्त मौलिक, भावानुकूल व कवि प्रतिभा से परिपूर्ण है जिसमें कोरा शब्दगत चमत्कार न होकर सहज भावानुभूति है। इनका भावपक्ष जितना आकर्षक और चिन्तन प्रधान है तो कलापक्ष भी उतना ही उदात्त, अकृत्रिम और सहज है।

8.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. महाकवि मतिराम के काव्य–सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।
2. मतिराम सतसई की विशेषता बतलाइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–9 : वृन्द

संरचना

9.0 कवि परिचय

9.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

9.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

9.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

9.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

9.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

9.3 सारांश

9.4 अभ्यास प्रश्नावली

9.0 कवि परिचय

रीतिकालीन नीति काव्य के रचयिता कवि वृन्द का जन्म शाकद्विपीय ब्राह्मण कवि रूपजी और कौशल्या के घर में राजस्थान के मेड़ता में सं. 1700 वि. में हुआ था। कुछ कारणों से इनके पूर्वजों ने बीकानेर छोड़ दिया था। वृन्द का पूरा नाम वृन्दावन था। काशी में ताराजी नामक विद्वान से विद्याध्ययन करने के उपरान्त जब ये मेड़ता लौटे तो जोधपुर नरेश महाराज जसवन्त सिंह ने उन्हें भूमि समर्पित कर सम्मानित किया। महाराज के मित्र नवाब मुहम्मद खाँ के द्वारा ये औरंगजेब की सभा में जा पहुँचे और अपनी विशिष्ट योग्यता के बल पर दरबारी कवि तथा सम्राट ज्येष्ठ पुत्र मुहज्जम (बहादुरशाह) और पौत्र अजीमुश्शान के लिये शिक्षक नियुक्त किये गये। किशनगढ नरेश महाराज राज सिंह ने सं. 1764 में इन्हें बहादुरशाह से माँग लिया और उन्होंने कवि वृन्द को जागीरी प्रदान की तथा इन्हें किशनगढ में रहने के लिये विवश कर दिया। इनका समय ई. 1643 से 1723 ई. तक माना जाता है। इनकी लगभग 16 रचनाएँ अत्यधिक प्रसिद्ध मानी जाती हैं जो नीति, भक्ति, वार्ता और शृंगारिक हैं। इनमें छः कृतियाँ बारहमासा, भावपंचाशिका, नयन पचीसी, पवन पचीसी, श्रृंगार शिक्षा और वृन्द सतसई है। 'भाव पंचाशिका' की रचना सन् 1686 में मानी गई है तथा इनकी 'नयन पचीसी' को भी लगभग इसी काल की रचना मानी जाती है इसमें नयनों के महत्त्व तथा उनके द्वारा होने वाले भावों की अभिव्यक्ति का सुन्दर चित्रण किया गया है जो चित्रात्मक शैली में है। 'वृन्द सतसई' की रचना सन् 1704 में की गई, इसके दोहों को सुनकर औरंगजेब के पौत्र अजीमुश्शान ने इनका विपुल सम्मान किया। 'सतसई' में सात सौ पन्द्रह दोहों को स्थान प्राप्त हुआ जिनमें अधिकतर दोहे नीति विषयक हैं। इनके दोहों की सफलता का सबसे बड़ा कारण यह है कि कवि वृन्द ने अपने दोहों में जो दृष्टान्त दिये हैं वे नगरों और गाँवों से सम्बन्धित हैं। नीति–काव्य के सफल रचयिताओं में इनका नाम पूर्ण सम्मान के साथ लिया जाता है।

कवि वृन्द की कीर्ति मुख्यतः 'वृन्द बिनोद–सतसई' पर ही अवलम्बित है। इसका प्रारम्भ वृन्द ने ढाका नगर में सं. 1761 में अजीमुश्शान के मनोविनोद तथा शिक्षा के लिये किया गया। इसके अध्ययन से कवि की पैनी दृष्टि को सत्यता के साथ देखा जा सकता है। इतर–प्राणी–विषयक नीति के सिवा शेष सभी नीतियों पर वृन्द ने प्रचुर मात्रा में लिखा है। चूँकि इनके जीवन का अधिकांश समय राज दरबारों में व्यतीत हुआ। इसलिये पशु–पक्षियों के प्रति व्यवहार वर्णन की उपेक्षा स्वाभाविक थी। सतसई की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उसमें प्रायः उन्हीं विषयों का उल्लेख नहीं है जिन पर प्रायः नीतिकार लिखा करते हैं बल्कि ऐसी अनेक बातों की भी चर्चा है जिनका वर्णन लगभग उपेक्षित रहता है। सं. 1780 में वृन्द पंचतत्त्व में विलीन हो गये, आज भी सच्चाई इनके वंशज किशनगढ में विद्यमान हैं।

9.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

नीकी पै फीकी लगै, बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में रस सिंगार न सुहात।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – नीकी = अच्छी, फीकी = रस विहीन, न सुहात = अच्छी नहीं लगती।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के रीतिकालीन कवि 'वृन्द' द्वारा विरचित 'सतसई' से अवतरित है, जिसमें कवि ने अवसर देखकर व्यवहार वार्ता करने के महत्त्व को स्पष्ट किया है।

व्याख्या – कविवर वृन्द अवसर के अनुकूल वार्ता व व्यवहार करने के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि बिना सुअवसर या बिना अनुकूल समय में की गई अच्छी बात भी अच्छी नहीं लगती है वह नीरस या फीकी लगती है जैसे युद्ध के समय में अथवा युद्ध वर्णन के समय में शृंगार विलास की बात अच्छी नहीं लगती है। शौर्य प्रदर्शन या शोक समय में शृंगार विलास की बात को वक्ता की कामुकता मानी जाती है। अतः प्रत्येक बात अनुकूल समय में ही अच्छी लगने वाली व महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

विशेष

1. स्पष्ट किया है कि अवसर के बिना अच्छी बात भी नीरस या फीकी लगती है।
2. प्रस्तुत दोहे में अनुप्रास व विनोक्ति अलंकार का प्रयोग किया है।

(2)

फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचारि।
सबको मन हर्षित करै, ज्यों विवाह में गारि।।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहे में कविवर वृन्द ने स्पष्ट किया है कि उचित या अनुकूल समय में कहे जाने वाले अपशब्द भी अच्छे लगते हैं या उनका भी एक अपना महत्त्व होता है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि जो अपशब्द या गाली प्रायः नीरस या भद्दी लगती है और जिसके बोलने से कलह तक हो जाता है किन्तु समय विशेष का ध्यान रखकर यदि अपशब्द या गाली भी दी जाये तो वह सरस और मन को सरस लगती है जैसे विवाहोत्सव पर कन्या या वर पक्ष की ओर से गाये जाने वाले गीतों के माध्यम से दी जाने वाली गाली प्रभावपूर्ण होती है, तथा मन में हर्षोत्पन्न करने वाली होती है। अनुकूल समय की गाली भी वातावरण को सरस बना देती है।

विशेष

1. अवसर के औचित्य को ध्यान में रखकर ही हमें वार्तालाप या व्यवहार करना चाहिये।
2. अवसर विशेष पर कहे जाने वाले अपशब्द भी प्रिय लगने लगते हैं।
3. अनुप्रास व काव्य लिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।
4. कवि की लोकजीवन में गहरी पैठ है।

(3)

अति परिचय ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय।।

शब्दार्थ – अति = अधिक, परचै = परिचय, जराय = जला देती है।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहे में कविवर वृन्द ने स्पष्ट किया है कि अधिक परिचय के कारण उपेक्षा या अनादर होता है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि जिस व्यक्ति की जान पहचान या परिचय अधिक होता है उसकी उतनी ही अधिक उपेक्षा होती है। अधिक परिचय के कारण से अरुचि व अनादर होता है। जिस प्रकार मलयाचल पर चन्दन की अधिकता होती है तथा वहाँ की भीलनियाँ खाना पकाने के लिए चन्दन की लकड़ी को काम में लेते हैं क्योंकि उनके लिये वही ईंधन है अर्थात् वे चन्दन के महत्त्व को नहीं आँकती हैं और उसे साधारण लकड़ी की तरह महत्त्वहीन समझकर उसका अनादर करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में अधिक परिचय को कभी–कभी अत्यन्त दुःखदायी और अपमान का पात्र माना है।
2. इसमें कवि के लोकानुभव की व्यंजना हुई है।
3. अनुप्रास और दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया गया है।
   द्रष्टव्य–घर का जोगी जोगड़ा

(4)

मूरख को पोथी दई वाचन को गुन गाय।
जैसे निरमल आरसी, दई अन्ध के हाथ।।

शब्दार्थ – मूरख = मूर्ख या अज्ञान। पोथी = पुस्तक, वाचन = पढ़ने हेतु, आरसी = दर्पण।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहे में कविवर वृन्द ने मूर्ख व्यक्ति के स्वभाव या दोष को स्पष्ट किया है।

व्याख्या – कविवर वृन्द मूर्ख के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यदि मूर्ख या अज्ञान को सद्‌गुणों से परिपूर्ण ज्ञान की पुस्तक अध्ययन के लिये दी जाये तो वह उस पुस्तक में निहित गुणों का कोई बखान नहीं करेगा बल्कि उनके प्रति अनजान बना रहेगा। जैसे अन्ध व्यक्ति को निर्मल दर्पण दिया जाये तो उसके लिये वह दर्पण व उसक स्वच्छता व्यर्थ है क्योंकि वह अपना प्रतिबिम्ब देखने में असमर्थ है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार अन्धे व्यक्ति के समक्ष दर्पण महत्त्वहीन है वैसे ही मूर्ख के सम्मुख नीति या शिक्षा का कोई महत्त्व नहीं होता है।
2. दुष्ट व्यक्ति सद्‌गुणों के महत्त्व को नहीं जानता है।
3. उदाहरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(5)

घटति बढ़त सम्पत्ति सुमति, गति अरहट की जोय।
रीती घटिका भरति है, भरी सु रीती होय।।

शब्दार्थ – सुमति = अच्छे विचार, अरहट = रहट यंत्र, गति = स्थिति या दशा, घटिका = रहैट की डोलची।

प्रसंग – प्रस्तुत 'वृन्द सतसई' से अवतरित दोहे में कविवर वृन्द ने स्पष्ट किया है कि समय की गति सम्पत्ति का घटना–बढ़ना अपना नियम है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि रहँट–यंत्र की गति की भाँति जीवन सम्पत्ति और सुमति घटती बढ़ती रहती है। यथा – रहँट–यंत्र के चलने पर उसकी डोलचियाँ नीचे पानी में जाकर भर जाती है। अर्थात् रहँट यंत्र के घूमने के क्रम से डोलचियाँ खाली हो–होकर पुनः भरती रहती हैं उसी प्रकार मानव जीवन में उन्नति–अवनति के क्षणों में सम्पत्ति एवं सुमति भी घटती रहती है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में रहँट यंत्र की गति का उदाहरण देकर लोकानुभव की सुन्दर व्यंजना की है।
2. प्रस्तुत दोहा उपदेशात्मक नीति–कथन है।
3. अनुप्रास व दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(6)

उत्तम जन की होड़ करि, नीच न होय रसाल।
कौआ कैसे चल सके, राजहंस की चाल।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – उत्तम जन = श्रेष्ठ व्यक्ति, होड = प्रतिस्पर्धा, रसाल = आम।

प्रसंग – प्रस्तुत 'वृन्द सतसई' से अवतरित दोहे में कवि ने नीच व्यक्ति द्वारा श्रेष्ठ सज्जनों से प्रतिस्पर्धा रखने का वर्णन किया है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि श्रेष्ठ जनों या उत्तम गुणी व्यक्ति से प्रतिस्पर्धा रखने वाला नीच या दुष्ट व्यक्ति उनकी तरह सहृदय नहीं बन सकता है जैसे हंस की चाल चलने या राजहंस के गुणों को कौआ चाहे जितना प्रयास कर ले किन्तु वह उसकी बराबरी नहीं कर सकता है। अर्थात् नीच या दुष्ट व्यक्ति सज्जन या गुणवान व्यक्ति की होड़ करने का निरन्तर प्रयास करता है किन्तु उसका स्वभाव सदैव नीच ही रहता है। वह आम की भाँति गुण या सरल रस से युक्त नहीं बन सकता है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में नीच व्यक्ति का और उसके स्वभाव का वर्णन किया है।
2. कौआ नीचता का तथा राजहंस उत्तमता का प्रतीक है।
3. प्रस्तुत दोहे में उपमा, अनुप्रास और दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया है।

(7)

जो पावै अति उच्च पद, ताको पतन निदान।
ज्यों तपि–तपि मध्यान्ह लौ, अस्त होतु है भान।।

शब्दार्थ – ताको = उसका, पतन = ह्रास या अवनति, निदान = अंतिम फल, भान = सूर्य, मध्यान्ह = दोपहर।

प्रसंग – प्रस्तुत पद 'वृन्द सतसई' से अवतरित है जिसमें कविवर वृन्द ने जीवन की उन्नति व अवनति के क्रम का उदाहरण सहित स्पष्टीकरण किया है।

व्याख्या – कविवर वृन्द जीवन की उन्नति व अवनति के क्रमिक रूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जिस व्यक्ति को सर्वोच्च उन्नति प्राप्त होती है उसका पतन भी अवश्यंभावी है अर्थात् उन्नति के उपरान्त अवनति अवश्य होती है। यह प्रकृति की नियति है जिस प्रकार दुपहर तक निरन्तर तपता हुआ सूर्य उत्कर्ष को प्राप्त करता है किन्तु तत्पश्चात् अपकर्ष के साथ अस्त हो जाता है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में संसार का सामान्य नियम स्पष्ट किया है कि उन्नति के बाद अवनति अवश्य मिलती है।
2. दोहे में उच्च पद प्राप्त करने के बाद मनुष्य को अहंकारी न बनने की प्रेरणा दी गई है।
3. अनुप्रास और उदाहरण अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(8)

करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ।
रोपै बिरवा आँक को, आम कहाँ ते होई।।

शब्दार्थ – चहै = चाहता है, रोपे = स्थापित या उगाना, बिरवा = पौधा, आंक = आंकड़ा।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा कवि वृन्द द्वारा रचित 'वृन्द सतसई' से अवतरित है इसमें कवि ने 'जैसी करनी वैसी भरनी' लोकोक्ति को चरितार्थ किया है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि दूसरों की बुराई या उपेक्षा करने पर यदि स्वयं सुख या प्रशंसा प्राप्त करना चाहे तो यह संभव नहीं है। जिस प्रकार आँक का पौधा लगाकर उससे आम्रफल की प्राप्ति की आशा करें तो यह संभव नहीं है। इसी प्रकार किसी की निन्दा करने से तो किसी को सुख की प्राप्ति हो ही नहीं सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष

1. सुख पाने के लिये भलाई करना आवश्यक है।
2. प्रस्तुत दोहे में काव्यलिंग और दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(9)

धन अरु जीवन को गरब, कबहुँ करिए नांहि।
देखत ही मिट जात है ज्यों बादर की छाँहि।।

प्रसंग – प्रस्तुत 'वृन्द सतसई' से अवतरित दोहे में कवि वृन्द ने जीवन में अहंकार न करने की प्रेरणा दी है और जीवन की नश्वरता को स्पष्ट किया है।

व्याख्या – कविवर वृन्द जीवन की क्षण भंगुरता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मनुष्य को कभी भी अपने जीवन पर व अपने पास उपलब्ध धन या सुख–सुविधाओं पर अहंकार नहीं करना चाहिये क्योंकि धन–दौलत की सुख सम्पन्नता कुछ ही दिनों पश्चात् ठीक उसी प्रकार समाप्त हो जाती है जिस प्रकार बादल की छांव कुछ समय बाद ही मिट जाती है। अर्थात् बादल की छाँव की भाँति जीवन और सम्पत्ति क्षणिक एवं नश्वर हैं अतः इनके कारण गर्व नहीं करना चाहिये।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में क्षणिक सम्पन्नता में अहंकार न करने की प्रेरणा व्यक्त की है।
2. इसमें अनुप्रास और उदाहरण अलंकार का प्रयोग है।

(10)

ओछे नर के पेट मैं, रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र मैं, कैसे सेर समात।।

प्रसंग – 'वृन्द सतसई' से सम्बन्धित प्रस्तुत दोहे में कविवर वृन्द ने ओछे व्यक्ति के स्वभाव का सुन्दर वर्णन करते हुए उसे अपनी रहस्य की या महत्त्वपूर्ण बात न बताने की प्रेरणा प्रदान की है।

व्याख्या – कविवर वृन्द ओछे व्यक्ति के स्वभाव की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ओछे या शूद्र व्यक्ति के हृदय में गोपनीय या महत्त्वपूर्ण बात कभी भी नहीं ठहर पाती है और वह शीघ्र ही उस रहस्य को दूसरों के सामने प्रकट कर देता है जिस प्रकार आधा सेर पदार्थ रखने की क्षमता वाले पात्र में सेर भर सामग्री समाहित नहीं हो सकती है वैसे ही ओछे व्यक्ति के छोटे हृदय में बड़ी बात नहीं समा सकती है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में ओछे व्यक्ति के दोष को स्पष्ट किया है।
2. अनुप्रास तथा दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(11)

सरसुति के भण्डार की बडी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों–त्यों बढे, बिन खरचै घट जात।।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा कविवर वृन्द द्वारा विरचित 'सतसई' से लिया गया है जिसमें कवि ने ज्ञान के प्रसार के महत्त्व को स्पष्ट किया है।

व्याख्या – कविवर वृन्द विद्या की अधिष्ठात्री माँ सरस्वती की महिमा एवं शिक्षा के प्रसार के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सरस्वती अर्थात् विद्या के भण्डार की यह बात अनोखी है कि इसे जितना काम में लिया जाये अर्थात् खर्च किया जाये अर्थात् इसका प्रसार किया जाये यह उतना ही बढती है। अर्थात् उतना ही विकास होता है अर्थात् ज्ञान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भण्डार उतना ही बढ़ता है और ज्ञान को यदि गोपनीय धन की भाँति छुपाकर रखा जाये अर्थात् उसे किसी अन्य को न दिया जाये तो वह शनैःशनैः समाप्त हो जाता है। यही सरस्वती की अनुपम विशेषता है।

विशेष

1. ज्ञान का वितरण करने उसका उपयोग करने से उसमें निरन्तर वृद्धि होती है किन्तु यदि विद्या का अभ्यास न करने से उसका ह्रास ही होता है।
2. प्रस्तुत दोहे में अनुप्रास और विशेषोक्ति अलंकार है।

(12)

दान मान औसर उमंग, अपनी अपनी बात।
छोटै छोटी गत कहीं, माहै माटी मान।।

शब्दार्थ – मान = सम्मान, औसर = अवसर,, गत = दशा।

प्रसंग – कविवर वृन्द द्वारा विरचित 'वृन्द सतसई' के प्रस्तुत दोहे में कवि ने व्यक्ति के भौतिक व सामाजिक स्तर के अनुरूप दान व सम्मान की स्थिति का वर्णन किया है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि जो व्यक्ति जितना शिक्षित सम्पन्न व समर्थ है वह अपने स्तर के अनुकूल दान देता है। सम्मान प्राप्त करता है और प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करता है। छोटे लोग अल्प वस्तु या मात्रा में ही संतुष्ट हो जाते हैं और बड़े लोग उन वस्तुओं को तुच्छ या निरर्थक मानते हैं। अर्थात् बड़े लोग अपनी प्रतिष्ठा व पद के अनुरूप बड़े कार्यों से ही संतुष्ट रहते हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने व्यक्ति विशेष के स्वभाव का चित्रण उसके स्तर के अनुरूप किया है।
2. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया है।

(13)

सुदृढ सूर नाहिनं चलै, कायर लागि इन घात।
देवल लिंग न पवन तै, जैसे ध्वज फहरात।।

शब्दार्थ – नाहिनं = नहीं, चलै = विचलित, रन = युद्ध, देवल = मंदिर, ध्वज = झण्डा।

प्रसंग – प्रस्तुत पद कविवर वृन्द द्वारा विरचित 'सतसई' से लिया गया है, जिसमें कविने स्पष्ट किया है कि कायरों के प्रहार से वीर पुरुष विचलित नहीं होता है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि युद्ध में कायरों के द्वारा घात लगाकर किये जाने वाले आक्रमणों से सच्चे शूरवीर अपने लक्ष्य से कभी भी विचलित नहीं होते हैं। जिस प्रकार मन्दिर पर लगी हुई ध्वजा हवा के झोकों से फहराती रहती है किन्तु मन्दिर में किसी प्रकार की गति या हल–चल नहीं होती है अर्थात् तेज हवा चलने पर भी मन्दिर विचलित नहीं होता है। उसी प्रकार दृढ निश्चयी और पराक्रमी योद्धा कभी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होते हैं और कायर थोड़ी सी परिस्थिति में विचलित हो जाते हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में दृढ निश्चयी पराक्रमी वीरों व कायरों के अन्तर को स्पष्ट किया है।
2. अनुप्रास और उदाहरण अलंकार का प्रयोग है।

(14)

रहै न कबहुँ दोय खल, एक सदन के माहि।
एक म्यान में है छुरी, जैसे भावै नाहि।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – कबहु = कभी भी, दोय = दो, खलु = दुष्ट, सदन = घर।

प्रसंग – कवि वृन्द द्वारा विरचित 'वृन्द सतसई' से सम्बन्धित प्रस्तुत दोहे में कवि ने दुर्जनों के स्वभाव की व्यंजना की है तथा स्पष्ट किया है कि दो दुष्ट व्यक्ति कभी भी एक साथ नहीं रह सकते हैं।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि जिस प्रकार एक म्यान में एक साथ दो छुरी या तलवार नहीं समा सकती है उसी प्रकार एक ही घर में दो दुष्ट व्यक्ति एक साथ नहीं रह सकते हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने दुष्ट व्यक्ति को छुरी से उपमित कर उसके क्रूर स्वभाव को व्यक्त किया है।
2. 'एक म्यान में दो तलवार' लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
3. यह नीति–उपदेशात्मक कथन है।
4. अनुप्रास व उदाहरण अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(15)

गहत तत्व ज्ञानी पुरुष, बात विचारि–विचारि।
मथनिहार तजि छाछ को, माखन लेत निकारि।।

शब्दार्थ – गहत = ग्रहण करता है, मथनिहार = मथनी, तजि = त्याग।

प्रसंग प्रस्तुत दोहा कवि वृन्द द्वारा विरचित 'सतसई' से अवतरित है जिसमें कवि ने ज्ञानी व्यक्ति के स्वभाव का वर्णन किया है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि एक ज्ञानी व्यक्ति प्रत्येक बात को सोच–विचारकर ग्रहण करता है उसमें निहित अच्छाई और बुराई का विचारकर तत्त्व को प्राप्त करता है। जिस प्रकार छाछ बिलोने वाला पहले तो दही को अच्छी तरह मथता है फिर छाछ को छोड़कर मक्खन को निकालकर ग्रहण कर लेता है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने ज्ञानी पुरुष के लिये 'मथनिहार' शब्द का नवीन प्रयोग किया है।
2. प्रस्तुत दोहे में कवि की मौलिकता झलकती है।
3. अनुप्रास, वीप्सा और दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(16)

विद्या लच्छमी पुरुष पै होय नहीं इक ठाँय।
नाहिन सुख द्वै सीति मैं पिय पै एकहि जाँय।।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा कविवर वृन्द द्वारा रचित 'वृन्द सतसई' से अवतरित है जिसमें कवि ने विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती और धन की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के परस्पर विरोध को नवीन रूप में स्पष्ट किया है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि एक व्यक्ति के पास एक ही समय में विद्या (सरस्वती) व धन (लक्ष्मी) एक साथ नहीं रह सकते हैं क्योंकि दोनों में ईर्ष्या भाव है। इस कारण विद्या से युक्त ज्ञानी के पास सदैव धन का अभाव सुनिश्चित है और समृद्ध (धन से युक्त) व्यक्ति के पास विद्या का अभाव रहेगा। जिस प्रकार एक नायक के पास एक साथ दो नायिकाएँ पूर्ण प्रेम सुख प्राप्त नहीं कर सकती हैं। वैसे एक का सामीप्य ही सुखकारी होता है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि की लोक आस्था का भाव व्यक्त हुआ है।
2. धनवान व विद्वान की स्थिति विपरीत होती है।
3. अनुप्रास, रूपक व दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(17)

जो जैसे तिहि तैसिये, करिये नीति प्रकास।
काठ कठिन भेदे भ्रमर, मृदु अरविन्द निवास।।

शब्दार्थ – काठ = लकडी, कठिन = कठोर, भ्रमर = भंवरा, मृदु = मधुर, अरविन्द = कमल।

प्रसंग – कवि वृन्द द्वारा विरचित 'वृन्द सतसई' से उद्धृत प्रस्तुत दोहे में कवि ने जेसे को तैसा व्यवहार करने के समर्थन को व्यक्त किया है।

व्याख्या – कवि वृन्द कहते हैं कि जो जैसी प्रवृत्ति का है उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये, यही नीति–सम्मत ज्ञान की बात है। जैसे – एक भँवरा काठ को कठोरता के कारण उसके साथ कठोर व्यवहार करता है और उसे कोर कर उसमें छेद कर देता है जबकि वही भँवरा कमल को कोमल प्रवृत्ति का जानकर उसके साथ मधुर व्यवहार करता हुआ उसी में निवास करता है। अतः दोनों के साथ उनकी प्रवृत्तिनुसार आचरण करता है।

विशेष

1. कवि ने 'शठे शाठ्यं समाचरेत' अर्थात् जैसे को तैसा नीति को स्पष्ट किया है।
2. अनुप्रास और दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग है।

(18)

कहा बड़े छोटे कहा, जँह हित तहँ चित्त लागि।
हरि भोजन किय विदुर घर, दुरजोधन को त्यागि।।

शब्दार्थ – जहँ = जहाँ, तहँ = वहाँ, हरि = कृष्ण, दुरजोधन = दुर्योधन।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक के 'वृन्द' शीर्षक पाठ से लिया गया है, जो 'वृन्द सतसई' से सम्बन्धित है। इसमें कवि ने स्पष्ट किया है सच्चा हितैषी छोटे या बड़े के अन्तर को महत्त्व नहीं देता है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि चाहे कोई बड़ा हो या छोटा हो, उससे सच्चे हितैषी का कोई सम्बन्ध नहीं होता है क्योंकि जहाँ जिस व्यक्ति से भला होता हो उससे मन स्वतः मिल जाता है अर्थात् वह आत्मीय बन जाता है और उस आत्मीयता में छोटे–बड़े का विचार नहीं किया जाता है। जैसे भगवान् श्रीकृष्ण ने महाराज दुर्योधन का अतुल अतिथ्य को अस्वीकार कर विदुर के घर साग–सब्जी का भोग स्वीकार कर उनका आतिथ्य स्वीकार किया था। क्योंकि विदुर निश्छल हृदय और परम ज्ञानी थे, भले ही उनका स्तर दुर्योधन के राजसी वैभव से कम था।

विशेष

1. दोहे में कवि ने महाभारत के प्रसंग के माध्यम से आत्मीयता की सुन्दर नीति–सम्मत बात को स्पष्ट किया है।
2. अनुप्रास व दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया है।

(19)

मूरख को हित के वचन, सुनि उपजत है कोप।
साँपहि दूध पिवाइये, जो केवल विष ओप।।

शब्दार्थ – कोप = क्रोध, ओप = घर।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा कवि वृन्द द्वारा विरचित 'वृन्द सतसई' से अवतरित है जिसमें कवि ने मूर्ख व दुष्ट व्यक्ति के स्वभाव का चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – कवि वृन्द मूर्ख एवं दुष्ट व्यक्ति के स्वभाव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मूर्ख और दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति को हितकर वचन सुनते ही क्रोध उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि हित की बात करते समय वह केवल अपने आप को समझदार मानता है तथा समझाने वाले व्यक्ति पर क्रोध करता है जिस प्रकार सर्प को दूध पिलाने पर उसके शरीर में विष की ही वृद्धि होती है, उसी प्रकार मूर्ख को सदोपदेश देने पर क्रोध की वृद्धि होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विशेष

1. स्पष्ट किया है कि सर्प के मुख में विष और मूर्ख या दुष्ट के मुख में सदैव क्रोध विद्यमान रहता है। अतः मूर्ख व्यक्ति से हितकर वचन नहीं कहने चाहिये।
2. प्रस्तुत दोहे में अनुप्रास और उदाहरण अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(20)

इक बिन माँगे ही लहै, मागे एक लहै न।
घन जल सर सरिता भरै, चातक चौंच भरै न।।

शब्दार्थ – लहै = प्राप्त करे, घन = बादल, सर = तालाब।

प्रसंग – प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'रीति–रस तरंगिणी' के 'देव' नामक पाठ से अवतरित है जिसे कवि वृन्द द्वारा विरचित 'वृन्द सतसई' से लिया गया है जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि याचना करने वाले को कुछ नहीं मिलता है और अयाचक को सर्वस्व मिल जाता है।

व्याख्या – कविवर वृन्द कहते हैं कि इस संसार में किसी को तो बिना किसी से याचना किये ही इच्छित फल की सम्पूर्ण प्राप्ति हो जाती है और जो निरन्तर याचना अथवा गुहार करता है उसे कुछ भी नहीं मिलता है। जिस प्रकार बादलों के बरसने से सारे सरोवर और नदियाँ जल से परिपूर्ण हो जाते हैं किन्तु स्वाति–जल की याचना करने वाले चातक को थोड़ा भी जल नहीं मिलता है और वह प्यासा ही रह जाता है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में भाव व्यंजित किया है कि याचक बनने से मान सम्मान कम होता है और इच्छित फल भी प्राप्त नहीं होता है।
2. अनुप्रास एवं दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया है।

9.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

9.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 कवि वृन्द का पूरा नाम क्या है?
उत्तर – कवि वृन्द का पूरा नाम 'वृन्दावन' है।

प्रश्न 2 कवि वृन्द का जन्म कब और कहाँ हुआ?
उत्तर – कवि वृन्द का जन्म वि.सं. 1700 में राजस्थान के मेड़ता शहर में हुआ।

प्रश्न 3 कवि वृन्द के माता–पिता का नाम बताइये।
उत्तर – कवि वृन्द के माता का नाम कौशल्या और पिता का नाम रूपजी था।

प्रश्न 4 कवि वृन्द की शिक्षा कहाँ व किससे प्राप्त हुई?
उत्तर – कवि वृन्द ने काशी में ताराजी नामक विद्वान से शिक्षा प्राप्त की।

प्रश्न 5 कवि वृन्द को कृषि भूमि देकर किसने सम्मानित किया?
उत्तर – जोधपुर नरेश जसवंत सिंह ने कवि वृन्द को जागीर देकर सम्मानित किया था।

प्रश्न 6 औरंगजेब ने कवि वृन्द को किस कार्य के लिये नियुक्त किया था?
उत्तर – औरंगजेब ने कवि वृन्द को अपने ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम (बहादुरशाह) तथा पौत्र अजीमुश्शान को पढ़ाने के लिए नियुक्त किया था।

प्रश्न 7 कवि वृन्द का अंतिम समय किसके आश्रय में व्यतीत हुआ था?
उत्तर – कवि वृन्द के जीवन का अंतिम समय किशनगढ़ नरेश राजसिंह के आश्रय में व्यतीत हुआ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रश्न 8 हिन्दी साहित्य जगत में कवि वृन्द की प्रसिद्धि किस रूप में मुख्य रही?
उत्तर – कवि वृन्द ने नीतिकार कवि के रूप में ख्याति प्राप्त की।

प्रश्न 9 वृन्द की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना कौन–सी है?
उत्तर – 'वृन्द विनोद सतसई' कवि वृन्द की सर्वोत्कर्ष रचना है।

प्रश्न 10 कवि वृन्द ने अपनी रचना 'सतसई' का सृजन कब, कहां और किसके लिये किया था?
उत्तर – कवि वृन्द ने 'सतसई' की रचना वि.सं. 1661 में ढाका नगर में शहजादा अजीमुश्शान के मनोविनोद और शिक्षा के लिये किया था।

प्रश्न 11 कवि वृन्द की सतसई में कितने दोहों को स्वीकृत किया गया?
उत्तर – 'वृन्द सतसई' में 705 से 713 दोहे प्राप्त हैं।

प्रश्न 12 कवि वृन्द का जीवनान्त कब और कहाँ पर हुआ?
उत्तर – कवि वृन्द वि.सं. 1780 में किशनगढ़ में पंचतत्त्व में विलीन हो गये।

प्रश्न 13 'नीको पै फीकी लगै' कवि के अनुसार अच्छी बात भी अप्रिय कब लगती है?
उत्तर – प्रतिकूल समय में अथवा अवसर के औचित्य के बिना अच्छी बात भी अप्रिय लगती है।

प्रश्न 14 'अति परिचय ते होत है, अधिक अनादर भाय।' इस कथन के समर्थन में कवि वृन्द ने कौन–सा उदाहरण प्रस्तुत किया है?
उत्तर – मलय पर्वत पर रहने वाली आदिवासी महिला चन्दन को सामान्य लकड़ी समझते हुए ईंधन के रूप में उसे जलाती है। उदाहरण देकर स्पष्ट किया है।

प्रश्न 15 'मूरख को पोथी दई वाचन को गुन गाय' कथन के लिये कवि ने किस सूक्त वाक्य का प्रयोग किया है?
उत्तर – प्रस्तुत अर्थ में 'अन्धे को काँच दिखाना' उक्ति का उदाहरण काम में लिया है।

प्रश्न 16 'उत्तम जन की होड़ करि, नीच न होय रसाल' कथन से वृन्द ने क्या शिक्षा दी है?
उत्तर – प्रस्तुत कथन से स्पष्ट किया है कि जब तक नीच व्यक्ति अपनी नीचता को नहीं छोड़ता है तब तक उसे गुणवान या सज्जन का स्थान प्राप्त नहीं हो सकता है।

प्रश्न 17 'जो पावै अति उच्च पद, ताकौ पतन निदान' प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने किसका दृष्टान्त प्रस्तुत किया है?
उत्तर – प्रस्तुत कथन को स्पष्ट करने हेतु कवि ने मध्यान्ह तक प्रखर तपने वाले सूर्य का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है।

प्रश्न 18 'सरसुति के भण्डार की बड़ी अपूरब बात' कथन क्यों कहा गया है?
उत्तर – कवि ने स्पष्ट किया है विद्या या ज्ञान का जितना प्रयोग किया जाता है वह उतना ही बढ़ता है। विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती की यही बात अनोखी है।

प्रश्न 19 'सुदृढ सूर नाहिन चलै, कायर लगि रन घात' कथन से कवि का क्या अभिप्राय है?
उत्तर – दृढ निश्चयी वीर छोटे–छोटे संकटों में विचलित नहीं होते हैं, वे कायरता का आचरण नहीं करते हैं।

प्रश्न 20 'मथनि तनि छाछ को, माखन लेत निकरि' कवि ने कौन–सा भाव व्यक्त किया है?
उत्तर – ज्ञानीजन चिन्तन मनन करते हैं तथा थोथी बातों को त्यागकर सारगर्भित बातों को ग्रहण करते हैं।

प्रश्न 21 'जो जैसे तिहि तैसिय करिये नीति प्रकास' इस दोहे में कवि ने कौनसा मुहावरा काम में लिया है?
उत्तर – प्रस्तुत पंक्तियों में 'जैसे को तैसा' मुहावरा प्रयुक्त किया है।

प्रश्न 22 'कहां बड़े छोटे कहाँ, जँह हित तहै चित लागि' प्रस्तुत नीति कथन के लिये कवि ने कौन से दृष्टान्त का प्रयोग किया है?
उत्तर – महाभारत प्रसंग में कृष्ण द्वारा महाराज दुर्योधन का अतुल आतिथ्य स्वीकार कर विदुर के घर साग–भाजी का भोग लगाया था, दृष्टान्त लिया है।

प्रश्न 23 'इक बिन माँगे ही लहै, माँगे एक लहै न' का आशय स्पष्ट कीजिये।
उत्तर – इस संसार में कुछ को तो बिना किसी याचना के ही इच्छित फल मिल जाता है और कुछ को याचना करने पर भी कुछ नहीं मिलता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 24 'रहै न कबहूँ दोय खल, एक सदन के माहिं' प्रस्तुत कथन के समर्थन में कौन–सा दृष्टान्त प्रयुक्त हुआ है?
उत्तर – 'एक म्यान मे दो तलवारे नही समाती है।'

प्रश्न 25 'जो जैसे को तैसिय, करिये नीति प्रकास' पंक्ति में कौन–सा मुहावरा प्रयुक्त हुआ है?
उत्तर – प्रस्तुत पंक्ति में 'जैसे को तैसा' मुहावरा है।

प्रश्न 26 'रोपै बिरवा आँक को, आम कहाँ ते होय' प्रस्तुत पंक्ति के समान अर्थ वाली लोकोक्ति बताइये।
उत्तर – 'बोये पेड़ बबूल का आम कहां से खाय' अर्थात् अनुचित कार्य करने पर उचित फल की प्राप्ति नहीं होती।

9.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 'वृन्द विनोद सतसई' का काव्यगत वैशिष्ट्य स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – कविवर वृन्द द्वारा विरचित 'विनोद सतसई' का हिन्दी साहित्य की नीति–प्रधान सतसई रचनाओं में विशिष्ट स्थान है। इसके परिशीलन से कवि वृन्द की व्यापक पैनी दृष्टि का साक्षात्कार होता है। वृन्द अपने जीवनकाल में भ्रमणशील रहे। उनका अधिकतर जीवन राजदरबारों में व्यतीत हुआ जिससे अनेक प्रकार के सुख–विलास देखने का पर्याप्त अवसर मिला। उनकी 'सतसई' में श्रृंगार एवं लोक–जीवन को लेकर सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति हुई है। इतर प्राणी–विषयक नीति के अतिरिक्त शेष सभी नीतियों पर वृन्द ने पर्याप्त लिखा। राज दरबारों के आकर्षण के कारण पशु–पक्षियों के प्रति व्यवहार वर्णन की उपेक्षा उनके द्वारा की गई है और यह स्वाभाविक भी है। इनकी सतसई की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रायः उन्हीं विषयों का उल्लेख नहीं है जिन पर अधिकतर नीतिकार अक्सर लिखते रहते हैं। वृन्द ने अनेक ऐसे तथ्यों पर चर्चा की है जिन पर अन्य कवियों ने नहीं लिखा है। कवि वृन्द ने सूक्तियों, लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग करते हुए सुन्दर दृष्टान्त उपस्थित किये हैं तथा कहीं पर लोक विश्वासों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत कर नीति सम्मत शिक्षा प्रदान की है।

कविवर वृन्द की सतसई का भावपक्ष जितना सहज और प्रभावशाली है, कलापक्ष भी उतना ही स्वाभाविक व सहज है। मधुर कल्पनाओं के साथ लोक जीवन के प्रत्येक तय उपमान ग्रहण किये हैं। श्रृंगार–विलास के साथ–साथ भक्ति–नीति का उन्होंने अच्छा समन्वय किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वृन्द के सतसई का काव्यगत वैशिष्ट्य अत्यन्त प्रभावशाली है।

9.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 सतसई परम्परा का इतिहास बताते हुए उसमें वृन्द सतसई का स्थान निर्धारित कीजिये।

उत्तर – सतसई परम्परा : एक विशिष्ट परम्परा मुक्तक काव्य विधा में यह परम्परा वेदों से प्रारम्भ होकर आज तक वैसी ही चली आ रही है। 'सतसई' शब्द का मूल रूप वास्तव में 'सप्तशतो' है। जिस रचना में सात सौ मुक्तकों का संग्रह जिस रचना में संगृहीत हो उसे हम 'सप्तशती' या 'सतसई' कहते हैं। यह संख्या सात सौ से कुछ कम या कुछ अधिक भी हो सकती है। किसी भी छन्द में इसकी रचना की जा सकती है जैसे दोहा, कवित्त, सवैया आदि।

सतसई परम्परा में सर्व प्राचीन तुलसी सतसई है तथा रहीम सतसई को स्थान प्राप्त है जिन्हें पर्याप्त रूप में लोकप्रियता प्राप्त हुई है। बिहारी सतसई के पश्चात् तो इसकी कतार सी लग गई है। इस परम्परा का समापन आधुनिक काल में वियोगी हरि की 'वीर सतसई' के रूप में प्रायः हो गया।

इस परम्परा में एक बात और देखी गई है कि किसी भी कवि ने सतसई का निर्माण सतसई के रूप में किया हो, ऐसा नहीं है – ऐसे लगता है कि परवर्ती कवियों या रसिकों ने इसका प्रयोग सतसई के रूप में किया हो। संग्रहकर्ताओं ने किसी भी कवि के सात सौ दोहे छाँट लिये तत्पश्चात् उसी के नाम से उसकी प्रसिद्धि कर दी होगी। जैसे गोस्वामी तुलसीदास के 'तुलसी सतसई' में कई दोहे रामचरितमानस से लिये गये हैं। इसी प्रकार बिहारी सतसई के दोहे क्रम में पर्याप्त भिन्नता दिखाई देती है।

सतसई की विषयवस्तु

विषयवस्तु की दृष्टि से सतसई में अनेक भिन्नताएँ मिलती हैं। साधारणतया इन कृतियों में जीवन के अनेक रूप समाहित होते देखे गये हैं। इनके अतिरिक्त श्रृंगार, नीति, भक्ति, उपदेश आदि विषयों पर सृजित दोहे हमें इन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रचनाओं में प्राप्त हो जाते हैं। ख्याति प्राप्त कवियों की सतसई रचना छन्द में ही की गई है। वियोगी हरि ने वीर रस से सम्बन्धित विषयवस्तु को ही स्थान दिया है।

हिन्दी सतसई परम्परा

सतसई परम्परा की प्रेरणा संस्कृत ग्रन्थों से प्राप्त हुई है क्योंकि इन दोनों भाषाओं में सतसई परम्परा का पर्याप्त विकास मिलता है। संस्कृत भाषा में इस परम्परा के हाल कवि रचित 'गाथा सप्तशती' तथा गोवर्धन आचार्य की 'आर्या सप्तशती' ही ऐसी दो रचनाएँ हैं, जिन्होंने हिन्दी कवियों को सतसई लिखने की प्रेरणा प्रदान की।

'गाथा सप्तशती' प्राकृत भाषा में लिखी गई है। जिसमें मानव जीवन से सम्बन्धित अनेक विषयों पर छन्द लिखे गये हैं। यह रचना मूलतः श्रृंगार विषयों पर ही तैयार की गई। इसी प्रकार 'आर्या सप्तशती' की रचना भी श्रृंगार विषय को लेकर ही की गई है।

सूक्ति सतसई – सूक्ति से अभिप्रायः उपयोगी कथन है। सुभाषित सूक्तिकार अपनी बात को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वह सामान्य मानव के मन को छू लेती है। हिन्दी सूक्ति रचनाओं में 'तुलसी सतसई', 'रहीम सतसई' तथा 'छन्द सतसई' प्रमुख मानी गई है। इन सूक्ति रचनाओं को कतिपय विद्वानों ने मार्मिक काव्य माना है, किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें कवित्त की कोटि में नहीं माना है। यहां तक कि वे इन रचनाओं को और इन रचनाकारों को कवि की श्रेणी में भी मानने को तैयार नहीं हैं।

श्रृंगार सतसई – सतसइयों की दूसरी परम्परा श्रृंगार विषय को लेकर चली इस श्रेणी में बिहारी सतसई, मतिराम सतसई, रसनिधि सतसई, राम सतसई, विक्रम सतसई, चन्द सतसई तथा श्रृंगार सतसई की गणना की जाती है। आलोचकों ने इनमें से बिहारी सतसई को ही सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ रचना स्वीकार किया है।

मुक्त काव्य और सतसई – सभी सतसई मुक्तक काव्य विधा के रूप में ही तैयार की गई। इनके स्थान निर्धारण से पूर्व हमें कुछ महत्त्वपूर्ण सतसइयों पर विहंगम दृष्टि डालनी होगी –

1. **तुलसी सतसई** – इसकी रचना सात सर्गों में की गई है। इसमें भक्ति, उपासना, पराभक्ति, रामभजन, आत्मबोध, कर्म–सिद्धान्त, ज्ञान–सिद्धान्त और राजनीति इन सात विषयों का एक–एक सर्ग में वर्णन हुआ है। इसमें जीवन के विविध पक्षों पर नीतिपरक उपदेश दिये हैं। इसमें कुछ छन्द कबीर की साखियों के समान मिलते हैं। जिनमें सांसारिकता से विरक्ति की बात कही गई है। इस सतसई में सात सौं उनचास दोहे हैं।
2. **रहीम सतसई** – यह रचना पूर्णरूप से प्राप्त नहीं है। इसमें शास्त्रानुगत वर्णन न होकर कवि ने अपने जीवन दीर्घकाल में प्राप्त अनुभवों को छन्दबद्ध किया है। इसमें नीति एवं सदाचार की ही प्रधानता है। नीति और उपदेशात्मकता की दृष्टि से यह तुलसी सतसई की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है इसमें सर्वत्र सादगी, सरलता एवं निरलंकृति से साक्षात्कार होता है।
3. **बिहारी सतसई** – इस सतसई पर गाथा सप्तशती एवं अमरुक शतक का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इन ग्रन्थों के अनेक ग्रन्थों की छाया बिहारी की सतसई में निहित दोहों में देखी जा सकती है।

बिहारी सतसई सर्वाधिक लोकप्रिय रही है। इसके प्रमाण में यही कह सकते हैं कि जितनी टीकाएँ इस सतसई की लिखी हुई मिलती है उतनी किसी अन्य की नहीं। इसका अनुवाद फारसी एवं संस्कृत भाषा में भी किया गया है। यह एक श्रृंगारिक रचना है। इसमें रस विवेचन, नायिका भेद, श्रृंगार के दोनों पक्ष–वियोग और संयोग, प्रकृति चित्रण, प्रेम की विभिन्न दशाएँ, हाव–भाव, चेष्टाओं के मनमोहक दृश्य तथा बिहारी के विविध विषयक जीवन व्यापी अनुभव देखने को मिलते हैं। इसमें बिहारी की मौलिक भावनाएँ, भाषा की सरलता, अर्थ गाम्भीर्य, कल्पना की सामासिक शक्ति, अलंकारों की छटा इस मुक्तक काव्य में ही एक साथ देखने को मिलती है।

4. **मतिराम सतसई** – रीतिकालीन उत्कृष्ट मुक्तक काव्यों में बिहारी के पश्चात् मतिराम सतसई का स्थान आता है। इसके लिये ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। इसमें बिहारी की तरह अप्रचलित एवं बिगड़े हुए शब्द–रूपों का प्रयोग नहीं मिलता है। इसके भाव अत्यन्त स्वाभाविक हैं, किन्तु बिहारी के जैसे भावों की गठन चातुरी नहीं है। मतिराम की भाषा शैली कहीं–कहीं पर शिथिल भी हो गई है। फिर भी प्रेम की सुकुमार व्यंजना नख–शिख–वर्णन, संयोग और वियोग श्रृंगार के अत्यन्त मार्मिक चित्रण मतिराम सतसई की विशेषता मानी जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. **रसनिधि सतसई** – इसकी रचना पृथ्वी सिंह 'रसनिधि' ने की थी। इसका प्रमुख विषय प्रेम और श्रृंगार चित्रण ही रहा है। प्रेम चित्रण में तन्मयता होने के फलस्वरूप इसमें कहीं–कहीं अश्लीलता भी है। इसकी भाषा शैली में उर्दू, फारसी का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। इसमें अलंकारों का प्रयोग सुन्दर ढंग से किया गया है।

6. **विक्रम सतसई** – इसकी रचना राजा विक्रमादित्य ने की थी। रीतिकालीन सतसई परम्परा में इसे अंतिम कड़ी माना जाता है क्योंकि इसका विषय रीतिकालीन अन्य सतसइयों की भाँति श्रृंगार वर्णन ही रहा है।

7. **रामसतसई** – इसके रचनाकार रामसहायदास थे। ये काशी नरेश श्री उदित नारायण जी के आश्रित थे। इनका रचना काल सं. 1660–80 तक माना जाता है। इस सतसई में श्रृंगार की प्रधानता है।

8. **वीर सतसई** – इसके रचनाकार वियोगी हरि हैं। यह आधुनिक रचना हे और इसे हिन्दी की सतसई परम्परा की अंतिम कड़ी मानी जाती है, इसका प्रमुख रस वीर है। इसमें सात सौ दोहे हैं जिन्हें सौ–सौ के क्रम में बाँटा गया है। इसमें शास्वत काल से चले आ रहे श्रृंगार और वीर रस के सम्बन्ध को इस रचना में स्वीकार कर लिया गया है।

9. **वृन्द सतसई** – इसके प्रणेता कवियर वृन्द रहे हैं। कवि वृन्द औरंगजेब के शाही दरबार में नवाब मुहम्मद खां के माध्यम से प्रवेश पा सके। औरंगजेब ने इन्हें 'पयोनिधि परचो चाहे मिसरी की पूतरी' नामक समस्या पूर्ति के लिए प्रदान की तो कवि वृन्द ने तत्काल उसकी पूर्ति की। वह इतनी मर्मस्पर्शी थी कि औरंगजेब वाह–वाह कर उठा और उन्हें अपने पुत्र के शिक्षक के रूप में नियुक्त कर दिया गया। कवि वृन्द की प्रसिद्धि इनकी 'वृन्द सतसई' के कारण ही हुई। इस रचना में उन्होंने मानव जीवन को उपादेय बनाने वाली नीतियों का निरूपण किया है। इस सतसई को नीति साहित्य का श्रृंगार माना जाता है।

10. **वृन्द सतसई और उसका स्थान** – सम्पूर्ण सतसई विवेचनोपरान्त कहा जा सकता है कि कविवर वृन्द ने अपने मुक्तक काव्य 'वृन्द सतसई' के लिये श्रृंगार रस एवं तदविषयक नायिका भेद, भावानुभव आदि को नहीं लेकर मानव जीवन को उत्कर्ष प्रदान करने वाली नीतियों को ही ग्रहण किया है।

नियमानुकूल मानव जीवन ही अपने आपको और राष्ट्र को उन्नति पथ पर ले जा सकता है। श्रृंगार रस में डूबा हुआ मानव स्वयं को निष्क्रिय एवं राष्ट्र को पतनोन्मुख ही बनाता है। वृन्द ने मानव जीवन को उपादेय एवं राष्ट्रभक्ति से गरिमपूर्ण बनाने हेतु नीति–साहित्य का सहारा लेकर अपनी सतसई का सृजन किया। इन्होंने मर्मस्पर्शी उपमाओं और दृष्टान्तों के माध्यम से मानव जीवन के विभिन्न पक्षों पर ऐसी अनुपम उक्तियाँ कहीं है कि वे आज भी लोक जीवन का कंठ हार है।

9.3 सारांश

अन्त में हम कह सकते हैं कि यदि उपादेयता और मानव जीवन की सार्थकता को प्राथमिकता दी जाये तो पूर्ववर्ती श्रृंगारी सतसइयों में वृन्द सतसई का अपना अनुपम स्थान है।

9.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. वृन्द सतसई पर प्रकाश डालिए।
2. वृन्द की काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–10 : रीतिकाव्य सिद्धान्त

संरचना

10.0 प्रस्तावना

10.1 'रीतिरात्मा काव्यस्य' का तात्पर्य

10.2 रीति शब्द का तात्पर्य

10.3 रीतियों के भेद

10.4 हिन्दी रीति काव्य का विकास

10.5 'रीति' का लक्षण

10.6 रीतिकालीन काव्य में रीति

10.7 नायक

- 10.7.1 नायक के लक्षण
- 10.7.2 नायक का वर्गीकरण
- 10.7.3 व्यवहार के आधार पर नायक के भेद
- 10.7.4 धर्मानुसार नायक के भेद

10.8 नायिका

- 10.8.1 नायिका भेद निरूपण का आधार
- 10.8.2 आचार्य भरत निरूपित नायिकाएँ
- 10.8.3 प्रकृतिगत अन्य नायिका भेद
- 10.8.4 जातिगत : नायिका भेद
- 10.8.5 धर्मगत : नायिका भेद
- 10.8.6 सारांश
- 10.8.7 अभ्यास प्रश्नावली

10.9 रस

- 10.9.1 रस सिद्धान्त तथा रस सूत्रा
- 10.9.2 रस का अर्थ
- 10.9.3 प्रमुख रस

10.10 अलंकार

- 10.10.1 आचार्य भरत के द्वारा अलंकार निरूपण
- 10.10.2 भामह का काव्यालंकार
- 10.10.3 भामह की परवर्ती परम्परा
- 10.10.4 अलंकार का स्वरूप विवेचन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.10.5 रीति काव्य परम्परा में अलंकार

10.10.6 हिन्दी रीति काव्यों में अलंकार का वर्गीकरण

10.10.7 सारांश

10.10.8 अभ्यास प्रश्नावली

10.0 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में काव्य–सिद्धान्त के साथ जो 'रीति' शब्द प्रयुक्त है, उसके प्रयोग की विस्तृत पृष्ठभूमि, कारण और साहित्यिक आधार रहे हैं। संस्कृत साहित्य में 'रीति' का आशय पद संघटना अथवा काव्य–रचना–मार्ग (शैली) रहा है किन्तु उत्तरवर्ती साहित्य में रीति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रहा है।

10.1 'रीतिरात्मा काव्यस्य' का तात्पर्य

संस्कृत काव्य शास्त्र में सर्वप्रथम रीति सम्प्रदाय का प्रवर्तन करने वाले आचार्य वामन ने रीति को आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित कर कहा कि – 'रीतिरात्मा काव्यस्य' अर्थात् काव्य की आत्मा रीति है। इस प्रकार आचार्य वामन ने सर्वप्रथम रीति साहित्य को व्यापकता प्रदान की। उन्होंने विशिष्ट पद रचना को रीति कहकर यह प्रतिपादित किया कि शब्दगत एवं अर्थगत सौन्दर्य की समृद्धि विशिष्ट पद रचना से होती है और वही काव्य की आत्मा है, गुण उसकी शोभा बढ़ाने वाला तत्त्व है। वे गुण अलंकारों के साथ में उसके सौन्दर्य का संवर्धन करते हैं।

10.2 रीति शब्द का तात्पर्य

'रीङ' (री) धातु से क्तिन् (ति) प्रत्यय लगाने पर 'रीति' शब्द बना है। विशिष्ट पदों की रचना को रीति कहते हैं। भोजराज ने अपने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में रीति को काव्य गुणों का परिचायक तत्त्व माना है। आचार्य विश्वनाथ ने रीति को पद–संघटना वाली तथा रसों का उत्कर्ष बढ़ाने वाली बताया है। कुछ आचार्य उस पद रचना को रीति मानते हैं, जिसमें समासहीनता स्वल्पसमासता, दीर्घ समासता या मध्य समासता रहती है। आचार्य कुन्तक ने रीति का तात्पर्य मार्ग अथवा काव्य रचना का एक विशिष्ट तरीका माना है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में रीति शब्द के लक्षण, अर्थ और काव्य तत्त्वों में उसके महत्त्व पर विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं। इससे काव्य स्वरूप तथा उसके सौन्दर्यवर्धक उपादानों में 'रीति' तत्त्व का महत्त्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

10.3 रीतियों के भेद

सर्वप्रथम नाट्य–शास्त्र में आचार्य भरत ने रीति को प्रवृत्ति कहकर लोक–रूढ़ि के आधार पर चार प्रवृत्तियों का प्रतिपादन किया है–

1. आबन्ती – भारत के पश्चिम भाग की प्रकृति।
2. दक्षिणात्या – दक्षिण भारत की प्रवृत्ति।
3. औड्मागधी – उडीसा तथा मगध आदि पूर्वी भारत की।
4. पांचाली – मध्यप्रदेश की प्रवृत्ति।

भरत मुनि ने नाटकीय वेश–भूषा की दृष्टि से इन प्रवृत्तियों को अपनाया था, परन्तु परवर्ती काल में आचार्यों ने इन प्रवृत्तियों को 'वृत्ति' या 'रीति' नाम से अपनाया तथा इनका देश विशेष के भाषा–व्यवहार के आधार पर नामकरण किया। जैसे विदर्भ देश की वृत्ति वैदर्भी, रीति, गोड देश की गौडी, पांचाल देश की पांचाली रीति, लाट देश की लाटी रीति के नाम से अभिहित की गई।

आचार्य राजशेखर ने रीति को 'प्रवृत्ति' या 'वृत्ति' के रूप में प्रतिपादित करते हुए इसका जो वशीकरण किया है वह देशज–वृत्ति पर आधारित है जिसे निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है –

देश	प्रवृत्ति	वृत्ति	रीति
विदर्भ	दक्षिणात्या	कैशिकी	वैदर्भी
गौड	औड्रमागधी	भारती	गौडी
अवन्ती	आवन्ती	सात्वती–कैशिकी	पांचाली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

असमासता, स्वल्पसमासता, दीर्घसमासता पद–संघटना के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार है–

वैदर्भी रीति	पांचाली रीति	गौडी रीति
असमास	ईषत् समास	समासाधिक्य
स्थानानुप्रास	ईषत् अनुप्रास	अनुप्रास
योग वृत्ति	उपचार	योगवृत्ति परम्परा

आचार्य भोजराज ने रीतियों का विषद विवेचन प्रस्तुत करते हुए वैदर्भी, गौडी, पांचाली तथा लाटी के अतिरिक्त आवन्तिका और मागधी इन दो अन्य भेदों की भी कल्पना की है। शारदातनय ने तो रीतियों की संख्या 105 तक भी स्वीकार की है। आचार्य कुन्तक ने प्रत्येक रीति को 'मार्ग' रूप में स्वीकार कर तीन विभाग किये हैं– सुकुमार मार्ग, विचित्रमार्ग और मध्यम मार्ग। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में काव्यांगों के रूप में रीति का विस्तार से विवेचन किया गया है।

10.4 हिन्दी रीति काव्य का विकास

हिन्दी में 'रीति' के स्वरूप एवं भेदों को लेकर कुछ आचार्यों और समालोचकों ने परम्परानुरूप विचार व्यक्त किये हैं। श्री बिहारीलाल भट्ट ने रीति की परिभाषा या लक्षण यह स्पष्ट किया है –

कविता में पद, अर्थ की संघटना अति होय।
तौन सरस समुदाय को रीति कहत कवि लोय।।

इस तरह संस्कृत के आचार्यों का 'पद संघटन रीतिः' लक्षण का उसमें पूर्णतया अनुकरण किया गया है।

10.5 'रीति' का लक्षण

हिन्दी के अनेक आचार्यों और समालोचकों ने जो लक्षण दिये हैं, उनमें सर्वमान्य लक्षण यह है कि 'किसी कवि या लेखक की शब्द–योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उसकी ध्वनि आदि का नाम 'शैली' है, इसे ही रीति कहते हैं।

डॉ. गुलाब राय ने रीति तत्त्व का अध्ययन करके इसे पाश्चात्य शैली–तत्त्व के रूप में प्रतिपादित कर कहा है कि 'शैली अभिव्यक्ति के उस गुण को कहते हैं, जिन्हें कवि या लेखक अपने मन के प्रभाव समान रूप से दूसरों तक पहुँचाने के लिये अपनाता है। भारतीय समीक्षा में शैली का सम्बन्ध मात्र भाषा से नहीं बल्कि अर्थ से भी है।'

डॉ. भगीरथ मिश्र ने रीति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'रीति का अर्थ है 'शैली' कथन या अभिव्यक्ति का ढंग। रीति सिद्धान्त काव्य शास्त्र का पदन्यास है।'

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, 'पदों की विशिष्ट रचना ही रीति की सर्वमान्य परिभाषा रही है और यह विशिष्टता भी प्रायः शब्द और अर्थ के चमत्कार मानी गई है।'

इस प्रकार रीति के स्वरूप की मीमांसा दो रूपों पर आधारित है – बाह्य–वस्तु–तत्त्व और रस–भाव–चिन्तनाभिव्यक्ति। इन दोनों रूपों को समन्वय के साथ मानने पर ही रीति का उत्कृष्ट स्वरूप निर्धारित कर निरूपित हो सकता है।

10.6 रीतिकालीन काव्य में रीति

लक्षण–हिन्दी साहित्य में रीति का लक्षण करने वाले आचार्यों ने संस्कृत की तरह खण्डन–मण्डन की शैली को नहीं अपनाया है। केशवदास देव, मतिराम, चिन्तामणि आदि रीतिकालीन आचार्यों ने 'रीति' का प्रयोग व्यवहार या पंथ के लिये किया और इसे काव्य शास्त्र से सम्बन्धित माना है। यथा–

1. रीति सु भाषा कवित्त की बरनत बुधि अनुसार। – चिन्तामणि–कविकुल कल्पतरु
2. समुझे बाला बाल कहुँ वर्णन पंथ अगाध। – केशवदास–कविप्रिया
3. सो विश्रब्ध नबोढ यो वरनत कवि रस रीति। – मतिराम–रसराज
4. अपनी अपनी रीति के काव्य और कवि रीति। – देव–शब्द रसायन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार रीतिकालीन काव्य में रीति का उल्लेख या निरूपण सामान्य रूप से हुआ है। आचार्य चिन्तामणि ने रीति के लिये 'काव्य पुरुष' का रूपक प्रस्तुत किया है तो देव ने इसे 'काव्य का द्वार' मानकर रस से रीति का घनिष्ट सम्बन्ध स्वीकार किया है। जिस प्रकार गुण रस के उपकारक और नित्य धर्म होते हैं, इसी प्रकार रीति भी काव्य में गुणों के आश्रित रहकर रस का उपकार करती है। देव का यह मत संस्कृत के आचार्यों के अनुसरण पर आश्रित है। क्योंकि संस्कृत में 'पदसंघटना रीतिः' या 'विशिष्ट पद रचना रीति' कहकर उसे 'उपकत्री रसादीनामं' कहा गया है। अतः आचार्य देव का मत परम्परावादी है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि 'रीति काव्य का एक प्रमुख अंग है। संस्कृताचार्यों ने इसका वृत्ति, प्रवृत्ति या मार्ग के रूप में विवेचन किया है। प्रारम्भ में हिन्दी में संस्कृत के अनुसार ही रीति को काव्य का काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार स्वीकार किया गया है। इस कारण रीति का आशय काव्य–रचना–शैली, काव्य–व्यवहार या काव्य–प्रयोग–पद्धति, काव्य–मार्ग माना गया है परन्तु परवर्ती रीतिकालीन कवियों ने 'रीति' का सम्बन्ध काव्य के सभी तत्त्वों से जोड़ दिया है इस कारण कवि रीति, मुक्तक रीति, कवित्त रीति, छन्दरीति, अलंकार रीति, काव्य रीति तथा इसी प्रकार अनेक नाम अपनाये जाने लगे। वस्तुतः रीति तो वह विशिष्ट काव्य रचना शैली है जिसमें चमत्कार एवं सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है।

बोध प्रश्न

(क) एक वाक्य में उत्तर लिखिये–

1. रीति शब्द की व्युत्पत्ति बताइए।
2. आचार्य भरत ने रीति के लिए कौन–सा शब्द प्रयुक्त किया है?
3. रीतियां कितनी और कौन सी है?
4. बिहारी लाल भट्ट ने रीति के सन्दर्भ में क्या लिखा है?

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. रीतिरात्माकाव्यस्यः .....की उक्ति है।
2. विदर्भ देश की .....रीति है।
3. .....केशवदास का ग्रन्थ है।
4. रीति का अंग्रेजी के .....से सम्बन्ध है।
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का समय.....माना।

10.7 नायक

काव्य में आत्मतत्त्व के रूप में रस को प्रधान माना गया है। रस का आलम्बन या मुख्य आधार नायक होता है। काव्य में वर्णित कथानक का प्रधान पुरुष पात्र नायक कहलाता है। नायक के चरित्र अथवा कार्यों को लेकर ही कथानक का निर्माण होता है।

10.7.1 नायक के लक्षण

नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने नायक के लक्षण बताते हुए कहा है कि 'जो अनेक व्यसन (विपत्ति) और अभ्युदयों में पुरुषत्व के बाहुबल से युक्त है, जो सभी पात्रों में श्रेष्ठ होता है और नाना स्वाभाविक लक्षणों (गुणों) से मण्डित होता है, वह नायक कहलाता है।

आचार्य धनंजय ने अपने 'दशरूपक' ग्रन्थ में नायक के लक्षण स्पष्ट करते हुए कहा है –

'नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्त लोकः शुचिर्वाग्मी रुढवंशः स्थिरो युवा।।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इसी प्रकार का लक्षण आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में दिया है। हिन्दी के आचार्यों ने नायक का लक्षण संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकरण पर दिया है। चिन्तामणि, केशव, मतिराम आदि सभी ने यही तरीका अपनाया है। आचार्य केशव ने 'रसिक प्रिया' में नायक का लक्षण बताते हुए लिखा है–

'अभिमानी त्यागी तरुण, कोक कला प्रवीण।
भव्य क्षमी सुन्दर धनी, शुचि रुचि सदा कुलीन।।'

रीतिकालीन कुछ आचार्यों ने नायक के वर्गीकरण से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है और कुछ विद्वानों ने नायक के लक्षण के बाद वर्गीकरण किया है।

10.7.2 नायक का वर्गीकरण

आचार्य भरत ने 'नाट्य शास्त्र' में अभिनय की दृष्टि से नायक के चार भेद माने हैं– 1. धीरोदात्त, 2. धीरोद्धत, 3. धीर ललित और 4. धीर प्रशान्त। इसके अतिरिक्त नायिका के प्रति व्यवहार के आधार पर उन्होंने पाँच प्रकार के नायकों का भी वर्गीकरण किया है। इसी प्रकार उन्होंने उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के तीन भेद और बताए हैं। 'अग्निपुराण', 'काव्यालंकार' तथा 'सरस्वती कण्ठाभरण' और 'भाव प्रकाश' से भी लगभग इसी प्रकार का ही वर्गीकरण हुआ है।

रीतिकालीन कवि आचार्यों में केशवदास, नन्ददास और देव ने इन्हीं परम्पराओं का अनुसरण किया है, किन्तु कुछ आचार्यों ने भानुदत्त की 'रसमंजरी' को आधार मानकर नायक भेद का एक दूसरा प्रकार भी बताया है–

10.7.3 व्यवहार के आधार पर नायक के भेद

1. अनुकूल नायक – अपनी स्त्री या नायिका से अत्यन्त प्रेम करने वाला तथा पर स्त्री से विमुख अनुकूल नायक कहलाता है। आचार्य मतिराम ने 'रसराज' में स्पष्ट किया है कि –

सदा अपनी नारि सौं, राखे अति ही प्रीति।
पर नारी ते विमुख जो, सो अनुकूल सुरीति।।

इस प्रकार के नायक की श्रेष्ठ या अनुकूल नायक कहते हैं।

2. दक्षिण नायक – जो बहुत–सी नारियों से समान–प्रेम प्रदर्शित करता है अर्थात् नई नायिका से प्रेम होने पर भी पूर्व नायिका के प्रति अपने प्रेम व्यवहार में कमी नहीं आने देता है, वह दक्षिण नायक कहलाता है। इस नायक के लक्षण को स्पष्ट करते हुए मतिराम ने 'रसराज' में कहा है –

'एक भाँति सब तियनि सौं जाको होय सनेह।
सो दच्छिन मतिराम कहि, बरनत है मति गेह।।'

3. शठ नायक – जो स्वयं अपराध करने पर भी नायिका से मीठी–मीठी बातें करता है, अन्य नायिका से प्रेम हो जाने पर भी पूर्वा नायिका से भयवश या स्वार्थवश शृंगारिक चेष्टाएं करता है, उसे शठ नायक कहते हैं। आचार्य केशव ने 'रसिक प्रिया' में इस नायक के लक्षण को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

'गुँह गीठी बातैं कहै निपट कपट जिय जानि।
जानि न डर अपराध को, शठ कर ताहि बखानि।।'

4. धृष्ट नायक – नायिका द्वारा कई–कई बार धिक्कारे जाने पर भी जो लज्जित नहीं होता है, अपराध करने पर भी निःशंक रहता है तथा दोषों के प्रकट हो जाने पर भी मिथ्या भाषण करता है, उसे धृष्ट नायक कहते हैं। 'भाषाभूषण' में धृष्ट नायक का लक्षण इस प्रकार है –

'आवत लाज न धृष्ट को, किये कोटि धिक्कार।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आचार्य केशव ने इसके 'प्रच्छन्न' तथा 'प्रकाश' दो भेद प्रभेद स्वीकार किये हैं। मतिराम, देव, पद्माकर आदि सभी के लक्षण समान है तथा सभी ने साहित्य दर्पण के भेदो का अनुसरण किया है। साहित्य दर्पण में नायक के मुख्य रूप से सर्वप्रथम चार भेद माने गये हैं –

धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीर ललितस्थ।
धीर प्रशान्त इत्यय मुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः।।

अर्थात् नायक के सर्वप्रथम चार भेद माने गये हैं – 1. धीरोदात्त, 2. धीरोद्धत, 3. धीर ललित, 4. धीर प्रशान्त। भरतनाट्शास्त्रानुसार स्त्री–पुरुषों की प्रकृति त्रिविध बताई गई है और काव्य नाट्य में वर्णित उत्तम तथा मध्यम प्रकृति के पुरुषों को धीरोद्धत, धीर ललित, धीरोदात्त और धीर प्रशान्त इन चार प्रकार के नायकों के रूप में निर्दिष्ट किया गया है –

(I) धीरोदात्त नायक –

'अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरो दात्तो दृढवृतः कथितः।।'

आत्मश्लाघा की भावना से रहित, क्षमाशील, अति गम्भीर, दुःख–सुख में प्रकृतिस्थ, स्वभावतः स्थिर और स्वाभिमानी किन्तु विनीत कहा गया है।

(II) धीरोद्धत नायक –

'मायापरः प्रचण्डश्चापलोऽहंकारदर्य भूयिष्ठः।
आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः।।

जो कि मायापटु हो, उग्र स्वभाव वाला हो, स्थिर प्रकृति का न हो, अहंकार और दर्प से युक्त हो तथा जिसे नाट्यकोविद आत्मश्लाघा में निरत कहा करते हैं।

(III) धीर ललित नायक –

'निश्चिन्तो मृदुर्निशं कलापरो धीर ललितः स्यात्।'

अर्थात् जो कि निश्चिन्त रहने वाला हो, स्वभाव से मृदु हो और कला व्यसनी हो।

(IV) धीर प्रशान्त नायक –

'सामान्यर्गुणैर्भूयान द्विजादिको धीर प्रशान्तः स्यात्।'

इसी प्रकार दशरूपककार ने इस नायक का वर्णन इस प्रकार से किया है –

'निश्चिन्तो धीर ललितः कलासक्तः सुखोमृदुः।'

धीर प्रशान्त नायक उसे कहते हैं जिसमें नायक के त्याग आदि सामान्य गुण प्रचुर मात्रा में हों और जो ब्राह्मणादि वर्ण का हो।

10.7.4 धर्मानुसार नायक के भेद

संस्कृत में आचार्यों ने धर्म के अनुसार नायक के भेद नहीं बताये हैं। अपितु भानुदत्त की रस मंजरी से प्रभावित होकर रीतिकालीन आचार्यो ने नायक के तीन भेदों का विवेचन किया है –

(I) पति – स्वकीया नायिका के नायक को पति कहा गया है। यह शास्त्रीय विधि–विधान द्वारा नायिका से विवाह कर लेता है। संस्कृत काव्यशास्त्र मे जो भी विशेषताएँ उत्तम नायक की वर्णित है वही 'पति' नायक की भी हैं। इस संदर्भ में आचार्य कवि मतिराम ने कहा –

'विधि सो ब्याह्यो पति कह्यो, कवि मतिराम सुजान।'

(II) उपपति – जो स्त्री का पति न होकर भी उससे प्रेम सम्बन्ध रखकर उसकी आचार–हानि अथवा धर्मानुष्ठान के नाश का कारण होता है, व्यभिचार में आसक्त रहता है। उसे 'उपपति' या 'जारपति' कहते हैं। इस संदर्भ में आचार्य कवि पद्माकर ने लिखा है –

'उपपति ताहि बखानही जो पर वधु को मीत।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(III) वैशिक – जो नायक वैश्यागमन में पूर्ण रूचि रखता है उसे वैशिक नायक कहते हैं ऐसे नायकों की रति सदा वेश्याओं में होती है और वह उन्हीं का उपयोग करता है। कवि मतिराम का यह कथन दृष्टव्य है –

'प्रीति करै गनिकान सौं वैशिक ताकों जानि।'

इस प्रकार रीतिकालीन आचार्यों ने धर्मानुसार तथा स्वभावानुसार नायक के सात भेद बताए हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र में नायक के उत्तम, मध्यम और अधम जो तीन भेद किये हैं, वे नायिका के प्रति नायक के व्यवहार या स्वभाव के अनुसार स्वीकार किये गये हैं। इस आधार पर अनुकूल नायक के उत्तम, मध्यम तथा अधम नामक तीन भेद होते हैं। इसी प्रकार दक्षिण, शठ तथा धृष्ट के भी तीन–तीन भेद होते हैं, जो सब मिलकर नायक के बारह भेद माने गये हैं।

भानुदत्त ने 'रसमंजरी' में यह वर्गीकरण दूसरे प्रकार से किया है। उसमें सर्वप्रथम नायक के पति, उपपति और वैशिक ये तीन भेद किये हैं। तत्पश्चात् पति और उपपति के अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट – चार भेदों में विभाजित किया है। वैशिक नायक को उन्होंने उत्तम, मध्यम और अधन में विभक्त किया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने मानी, चतुर, प्रेषितपति, प्रोषित वैशिक आदि अनेक उपभेद स्पष्ट किये हैं। साहित्य दर्पण में धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर ललित और धीर प्रशान्त ये चार भेद अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट चार प्रकार होने से नायक के सोलह भेद बताये गये हैं। हिन्दी के आचार्य केशव ने धर्मानुसार तथा स्वभावानुसार भेदों को प्रच्छन्न और प्रकाश नाम से विभाजित किया है। इस प्रकार नायक भेद वर्णन में रीतिकालीन आचार्यों ने नवीन चिन्तन प्रस्तुत किया है।

सही पर्याय चुनिये–

1. नायक शब्द इससे बना है? (क) नेता (ख) अभिनेता (ग) नायिका के विलोम में
2. रस की दृष्टि से नायक के ये भेद हैं– (क) छः (ख) चार (ग) तीन
3. जो बहुत सी नारियों से समान प्रेम प्रदर्शित करना है वह यह कहलाता है (क) धृष्ठ (ख) शठ (ग) दक्षिण
4. भानुदत्त के ग्रंथ का नाम यह है (क) रसमंजरी (ख) कविकल्प द्रुम (ग) कवि प्रिया
5. अनुकूल नायक से यह तात्पर्य है (क) प्रेमी (ख) खलनायक (ग) शठ

10.8 नायिका

काव्यशास्त्र में शृंगार रस के आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायिका निरूपण एक प्रमुख अंग रहा हैं। हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने नायक की अपेक्षा नायिका भेद का निरूपण विस्तार से कर अपनी प्रतिमा और कल्पना का परिचय दिया है।

10.8.1 नायिका भेद निरूपण का आधार

रीतिकाव्य में नायिका भेद निरूपण का आधार सस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा के अनुकरण पर माना है। संस्कृत में सर्वप्रथम नाट्याचार्य भरत ने विस्तार से नायिका भेद पर प्रकाश डाला है। आगे चलकर संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों ने इस विषय पर पर्याप्त विस्तार किया है। भरत ने नाट्य–शास्त्र में आठ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है। परवर्ती आचार्यों ने भरत की नायिकाओं को वयगत अर्थात् अवस्था भेद से तीन प्रकार की माना है– मुग्धा–मध्या और प्रोढा। कुछ ने तो नायक की तरह नायिकाओं के भी उत्तमा–मध्यमा और अधमा ये तीन भेद माने हैं किन्तु ये भेद सर्वथा मान्य नहीं हैं।

काव्यशास्त्र में नायक–नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थों में रुद्रट का 'काव्यालंकार' धनंजय का 'दशरूपक' भोज का 'सरस्वती कण्ठाभरण' और 'शृंगार प्रकाश', वाग्भट का 'वाग्भटालंकार', हेमचन्द्र का 'काव्यानुशासन' तथा शारदातनय का 'भावप्रकाश' महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'साहित्य दर्पण' में आचार्य विश्वनाथ ने दशरूपक के अनुकरण पर प्रगल्भा, मुग्धा तथा मध्या सम्बन्धी भेदों का विस्तार से विवेचन किया है। भानुदत्त ने 'रसमंजरी' में नायिका के नौ भेद दर्शाये हैं। हिन्दी के आचार्यों ने संस्कृत काव्यशास्त्र में वर्णित इन सभी नायिका भेदों को स्वीकार किया है।

10.8.2 आचार्य भरत निरूपित नायिकाएँ

आचार्य भरत मुनि ने नायिकाओं के आठ भेद माने हैं। रीतिकालीन सभी आचार्यों ने इन्हें पूर्णरूपेण विवेचित किया है।

1. प्रोषित पतिका नायिका – जिसका पति या प्रेमी धनार्जन अथवा किसी अन्य उद्देश्य से देशान्तर चला जाये और वह उसके विरह–संताप से व्याकुल रहे, उसे प्रोषित पतिका नायिका कहते हैं, इसे ही प्रोषित–भर्तृका, प्रोषितप्रिया, प्रोषित प्रेयसी–विरहिणी आदि नामों से अभिहित किया गया है। इस संदर्भ में आचार्य कवि मतिराम ने 'रसराज' में कहा है।

2. कलहान्तरिता नायिका – पति का अपमान करने के पश्चात् जो अपने किये पर पुनः खेद प्रकट करती है उसे 'कलहान्तरिता नायिका कहते हैं। पद्माकर ने इसका लक्षण बताया है–

'प्रथम कछु अपमान करि, पिय को फिर पछताय।'

ऐसी नायिका पश्चाताप में ग्रस्त रहती है और अपने प्रिय को मनाने या उसके सामने जाने में लज्जा का अनुभव करती है।

3. खण्डिता नायिका – पर स्त्री के संभोग से चिन्हित नायक जब प्रातःकाल घर लौटता है तो पर स्त्री के कारण ईर्ष्याभाव से ग्रस्त नायिका को खण्डिता नायिका कहते हैं। इसके संदर्भ में कवि मतिराम ने लिखा है –

'पिय तन औरहिं नारि के रति के चिन्ह निहारि।
दुखित होय सो खण्डिता वरनत सुकवि विचारि।।'

4. अभिसारिका नायिका – प्रिय–मिलन हेतु संकेत–स्थल पर स्वयं अभिसरण करने वाली अथवा दूती को प्रियतम के पास अभिसार का संदेश भेजने वाली नायिका अभिसारिका कहलाती है। इसे ज्योत्स्नाभिसारिका, तमिस्त्राभिसारिका व दिवसाभि सारिका भी कहा जाता है –

'जात मिलन अभिसारिका सजि सिंगार सब देह।'

5. उत्कण्ठिता नायिका – जो अपने प्रियतम के संकेत स्थल पर न आने का कारण सोचती है तथा उसकी उत्सुकतापूर्वक प्रतिक्षा करती है, उसे उत्कण्ठिता, विरहोत्कण्ठिका अथवा उत्का नायिका कहते हैं। कवि मतिराम ने इस संदर्भ में लिखा है –

'आप जाय संकेत में, पीउ न आया होय।
ताकौ मन चिन्ता करे, उत्का कहिये सोय।।'

6. विप्रलब्धा नायिका – संकेत स्थल पर प्रियतम को न देखकर व्याकुल हृदया नायिका को विप्रलब्धा कहते हैं। कवि मतिराम ने विप्रलब्धा नायिका के लक्षणों के संदर्भ में लिखा है –

'आप जाय संकेत में मिलै न जाको पीय।
ताहि विप्रलब्धा कहत सोच करत अति जीय।।'

7. वासक सज्जा नायिका – प्रवास से अपने प्रियतम का निश्चित समय या दिन मालूम होने पर उस समय स्वयं सुसज्जित रहती है तथा वास गृह एवं पर्यक आदि को भी सुसज्जित कर लेती है उसे वासक सज्जा नायिका कहते हैं।

'वासक सज्जा तन सजै पिय आवन जिय थाप।'

8. स्वाधीन पतिका नायिका – जिसका पति अभिप्राय के अनुकूल ही उसकी आज्ञा का पालन करता है। अर्थात् नायिका का पति उसकी आज्ञा के वश में होता है उसे स्वाधीन पतिका नायिका कहते हैं–

'सदा रूप गुण रीझि पिय जाके रहे अधीन।
स्वाधीन पतिका नायिका बरनै कवि परवीन।।'

9. प्रवत्स्यत्पतिका नायिका – भानुदत्त ने 'रसमंजरी' में भरत मुनि के उपर्युक्त आठ भेदों के अतिरिक्त यह एक भेद और माना है। जिसका पति कुछ ही क्षणों के बाद प्रवास में जाने वाला है। इस चिन्ता से नायिका उदास हो जाती है, उसे प्रवत्स्यत्पतिका नायिका कहते हैं –

'चलन चहैं परदेस को जा तिय को जब कंत।
ताहि प्रवत्स्यत्प्रेयसी कहत सुकवि मति मन्त।।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10.8.3 प्रकृतिगत अन्य नायिका भेद

आचार्य भानुदत्त ने स्वभाव व प्रकृति के अनुसार तीन नायिकाएँ और प्रतिपादित की हैं। रीतिकालीन लक्षणकारों मतिराम, देव, पद्माकर आदि ने इस वर्गीकरण को स्वीकार किया है– 1. अन्य संभोग दुःखिता, 2. वक्रोक्ति–गर्विता तथा 3. मानवती। मतिराम और देव ने वक्रोक्तिगर्विता के रूपगर्विता और प्रेमगर्विता – दो भेद स्वतंत्र रूप से स्वीकार किये हैं। कृपाराम ने एक अन्य भेद 'गुणगर्विता' भी माना है। इस प्रकार–1. रूपगर्विता, 2. प्रेमगर्विता तथा 3. अन्य संभोगदुःखिता ये तीन भेद सर्वमान्य हैं। इसमें अन्यसंभोगदुःखिता नायिका के लक्षण मतिराम के अनुसार–

'निज पति के रतिचिन्ह जो लखै और तिय देह।
अन्य सुरति दुःखिता कहै करै पेच सो नेह।।'

10.8.4 जातिगत : नायिका भेद

आचार्य भरत तथा भानुदत्त द्वारा प्रदर्शित उक्त नायिका भेदों के अतिरिक्त संस्कृत तथा हिन्दी के कतिपय आचार्यों ने नायिका के अन्य भेद भी स्वीकार किये हैं – ये चार भेद हैं – 1. पद्मिनी 2. चित्रणी 3. शंखिनी तथा 4. हस्तिनी। इनमें पद्मिनी नायिका सर्वश्रेष्ठ मानी गई है; चित्रिणी मध्यम, शंखिनी का तृतीय और हस्तिनी का स्थान अधम माना गया है।

10.8.5 धर्मगत : नायिका भेद

सामाजिक दृष्टि से पुरुष के साथ सम्बन्ध के आधार पर हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों ने सर्व प्रचलित तीन भेदों का उल्लेख किया है। इन भेदों का सर्वप्रथम उल्लेख अग्नि पुराण में मिलता है।

साहित्य दर्पण में स्पष्ट किया है कि

अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रीति।
नायक–सामान्यगुणैर्भवति यथा संभवैर्युक्ता।।
नायिका पुनर्नायक सामान्यगुणैस्त्यागादिभिर्यक्षासंभवैर्युक्ता भवति।
सा च स्वस्त्री अन्यस्त्री साधारण स्त्रीति त्रिविधा।।'

10.8.5.1 स्वीया या स्वकीया नायिका

'विनयार्जवादियुक्ता गृह कर्मपरा पतिवृता स्वीया।'

स्वीया अथवा स्वकीया नायिका वह स्त्री, जिसमें नम्रता व सरलता आदि गुण रहा करते हैं जो गृह–कर्म में तत्पर रहा करती है और पतिवृता हुआ करती है। अथवा पुरुष द्वारा विधि विधान से विवाहिता तथा पति में अनुरक्त नायिका को स्वकीया कहते हैं। इसके नामकरण से ही इसका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। आचार्य केशव ने इस नायिका के लक्षण संदर्भ में लिखा है कि –

सम्पति विपति जो मरनइ, सदा एक अनुहानि।
ताहि स्वकीया जानिये, मन वच कर्म विचारि।।'

आचार्यों ने स्वकीया नायिका में आठ गुणों का निवास बताया है। इसलिये इसे अष्टांगवती नायिका भी कहते हैं। स्वकीया के पुनः 1. मुग्धा नायिका 2. मध्यानायिका तथा 3. प्रौढा नायिका – तीन भेद माने गये हैं। इसमें भी मुग्धा नायिका के दो भेद हैं – 1. ज्ञात यौवना 2. अज्ञात यौवना।

10.8.5.2 मुग्धा नायिका

'कविता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा।'

अर्थात् जिसके शरीर में यौवन अवतरित हो चुका है, जिसके मन में काम का उन्मेष प्रारम्भ हो चुका है, जिसे रति क्रिया से झिझक होती है, जिसका प्रणय कोप कोमलता लिय हुए हो और जो अपनी लल्लाशीलता के कारण प्रेम प्रकाशन में विवश हो।

1. **अज्ञात यौवना** – जिसके शरीर के यौवन का अंकुरण या प्रस्फुटन हो किन्तु जिसे इस यौवन प्रस्फुटन का ज्ञान न हो वह अज्ञात यौवना नायिका है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **ज्ञात यौवना** – जिसे अपनी यौवनावस्था का ज्ञान हो जाता हो उसे ज्ञात यौवना मुग्धा नायिका कहते हैं।

इन दोनों प्रकार की नायिकाओं 'चेष्टाओं' एवं विकारों का केशव और मतिराम ने विस्तार से विवेचन किया है–

विन जाने अज्ञात है जाने जीवन ज्ञात।
मुग्धा के द्वै भेद ये, कवि सब वरनत जात।।

10.8.5.3 मध्या नायिका

'मध्या विचित्रसुरता प्ररुढस्मरयौवना।
ईषत्प्रल्मवचना मध्यमत्रीड़िता मता।।'

मध्या वह (स्वीया) नायिका है जो रंग–बिरंगी रति लीलाओं में निपुण हो चुकी होती है, जिसमें काम पिपासा बढ़ती दिखाई देती है जिसका यौवन उभार पर हो, जिसे प्रणयालाप में हिचक नहीं होती हो और जिसमें रतिक्रिया के प्रति अधिक लज्जा न रही हो।

इसी लक्षण को कवि पद्माकर ने इस प्रकार प्रकट किया है –

'इक समान जब द्वै रहत लाज काम ये दोई।
जा तिय के तन में तबहि मध्या कहिये सोई।।'

10.8.5.4 प्रौढा नायिका (प्रगल्मा)

स्मराधा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा।
भावोन्नता दरब्रीड़ा प्रगल्माकान्तनायका।।'

वह स्वकीया नायिका जिसमें स्मरोन्माद बढ़ रहा हो, जिसका यौवन पूर्ण उभार पर पहुँच गया हो, जिसमें रति–क्रीडा के समस्त कौशल समा चुके हों, जिसके हाव–भाव पूर्ण रूप से विकसित हो चुके हों। जिसमें रति लज्जा की मात्रा बहुत कम हो और वस्तुतः जो रतिक्रिया में पुरुष से अधिक शक्ति रखती हो उसे प्रौढा अथवा प्रगल्भा नायिका कहते हैं। इसी तथ्य को कवि मतिराम ने इस प्रकार स्पष्ट किया है –

'निज पति सौं रति केलि की, सकल कलान प्रवीन।
तासौं प्रोढा कहत हैं, जो कविता रस लीन।।'

10.8.5.5 परकीया नायिका

गुप्त रूप से पर पुरुष से सम्बन्ध रखने वाली नायिका परकीया कहलाती है। साहित्य दर्पण में परकीया नायिका दो प्रकार की मानी है –

'परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा।'

अर्थात् परकीया नायिकाओं के दो भेद होते हैं – 1. परोढा (पर–परिणिता) 2. कन्यका (अपरिणीता)

परोढा नायिका – 'यात्रादिनिरताऽन्योढा कुलटा गलितत्रपा' – अर्थात् जो यात्रा, भीड–भाड आदि की शौकीन हो, दूसरे लोगों से हर प्रकार की बातें करने में न झिझकती हो और दूसरों से प्रेम प्रसंग के लिये लालायित हो, पुरुषों के साथ रहना पसन्द करती हो और जिसे किसी भी पुरुष से बातचीत या संग–साथ में लज्जा न हो।

कन्यका (अपरिणीता) – 'कन्यां त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना' – अर्थात् जो नवयुवती और लज्जाशील हो तथा जो अविवाहिता हो।

वैसे हिन्दी आचार्यों ने परकीया नायिका के छः भेदों को स्वीकार किया है जिनका संक्षिप्त स्वरूप विवेचन इस प्रकार है –

(1) विदग्धा नायिका – अपनी आन्तरिक भावना को वाणी तथा क्रिया की निपुणता से प्रकट करने वाली नायिका विदग्धा कहलाती है। यह भी वाग्विदग्धा तथा क्रिया विदग्धा दो प्रकार की होती है।

(2) लक्षिता नायिका – जिसका पर पुरुष प्रेम उसके द्वारा छिपाये जाने पर भी लक्षित हो जाता है। इसके आचरण में प्रेम गोपन अथवा छुपाव का आचरण रहता है।

(3) गुप्ता नायिका – जिसने पर पुरुष के साथ रतिक्रीडा की किन्तु अपनी सूरत का गोपन करने वाली परकीया को गुप्ता नायिका कहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(4) कुलटा नायिका – जिसे रतिक्रिया (सामान्य) से तृप्ति नहीं होती है अथवा अनेक पुरुषों के साथ पर्याप्त रतिक्रिया करने पर भी अतृप्त रहती है उसे कुलटा परकीया कहते हैं।

(5) मुदिता नायिका – जो प्रिय मिलन को ही निश्चय या आवश्यक समझती है और उसी आनन्द में प्रफुल्लित रहती है उसे मुदिता नायिका कहते हैं।

(6) अनुशयना नायिका – पश्चाताप करने वाली नायिका को अनुशयना नायिका कहते हैं। प्रियतम के साथ रतिक्रिया की भूल करने या प्रियतम द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर न पहुँचने का इसे पश्चाताप रहता है।

10.8.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि काव्यशास्त्र में नायिका भेद का विवेचन विस्तार से किया गया है। आचार्य भरत ने आठ तथा भानुदत्त ने नौ प्रकार की नायिकाओं को प्रमुख रूप से माना है। परवर्ती आचार्यों तथा रीतिकालीन कवियों में जातिगत चार, स्वभावगत तीन, धर्मगत बारह तथा मानगत धीरा, अधीरा और धीरा धीरा नाम से तीन भेद स्वीकार किये हैं। इस प्रकार नायिकाओं के विविध भेद उपभेद रीतिकालीन काव्यशास्त्र में दर्शाये गये हैं। आचार्य केशव, भिखारीदास, मतिराम, पद्माकर और देव ने इन सभी प्रकार की नायिकाओं के लक्षण प्रस्तुत किये हैं।

10.8.7 अभ्यास प्रश्नावली

एक वाक्य में उत्तर लिखिये–

1. भरतमुनि ने नायिका के कितने भेद माने हैं?
2. धनंजय की रचना का नाम लिखिए।
3. मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा किसके भेद हैं?
4. कलहन्तरिका नायिका का लक्षण बताइए।
5. स्वकिया नायिका और परकिया नायिका में क्या भेद है?

10.9 रस

संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य–तत्त्वों का विषद विवेचन किया गया है तथा इस दृष्टि से काव्य–शास्त्र की परम्परा अति प्राचीन है। इसमें समय–समय पर अनेक सिद्धान्त तदनुसार सम्प्रदाय प्रवर्तित हुए हैं। सर्वप्रथम नाट्यशास्त्राचार्य भरत मुनि ने रस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जो आगे चलकर रस–सम्प्रदाय का आधार बना। आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य का आत्मतत्त्व मानकर अपने ध्वन्यालोक ग्रन्थ में उसका विस्तृत विवेचन किया है। उसके अनुसार ध्वनि सम्प्रदाय का प्रवर्तन हुआ। इससे पूर्व आचार्य भामह ने अलंकार सम्प्रदाय का प्रवर्तन कर दिया। वामनाचार्य ने 'रीतिरात्माकाव्यस्य' कहकर रीति सम्प्रदाय ओर कुन्तक ने वक्रोक्ति सम्प्रदाय तथा क्षेमेन्द्र ने काव्य में विविध रूपों के औचित्य का निर्वाह परमावश्यक मानने से औचित्य सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र में छः सम्प्रदाय प्रचलित हुए। इनमें रस और ध्वनि सम्प्रदाय को परस्पर समन्वित माना जाता है और अलंकार सम्प्रदाय इसके अंग के समान ही है।

10.9.1 रस सिद्धान्त तथा रस सूत्र

भारतीय काव्यशास्त्र की सबसे बड़ी उपलब्धि 'रस–सिद्धान्त' है। इस सिद्धान्त के आधार पर भारतीय वाङ्मय और भारतीय समीक्षाशास्त्र सर्वाधिक समृद्ध माना जाता है। वस्तुतः रस सिद्धान्त काव्य का मूल–तत्त्व है। इस सिद्धान्त की व्याख्या सर्वप्रथम आचार्य भरत मुनि ने अपने विशाल ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में प्रस्तुत की। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय समीक्षाशास्त्र के प्रथम महान आचार्य भरत मुनि ने अपना प्रसिद्ध रस–सूत्र प्रस्तुत किया, जिसके द्वारा रस की प्रथम प्रतिष्ठा हुई।

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'

भरत मुनि के लोक विश्रुत इस रस–सूत्र का आशय है – काव्य या नाट्य में वर्णित विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति हुई है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Tehnun

10.9.2 रस का अर्थ

रस शब्द से हमारा अभिप्राय आनन्द है। उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा को रस स्वरूप माना गया है 'रसौ वै सः'। आत्मा परमात्मा का स्वरूप इसलिय माना गया है कि आत्मा परमात्मा का अंश है। जिस प्रकार जमीन पर पड़ी हुई धूप लाखों मील दूर स्थित सूर्य का अंश होती है, ठीक उसी प्रकार आत्मा भी परमात्मा का एक अंश है। परमात्मा सत् चित् व आनन्द रूप है अतः परमात्मा का अंश रूप होने से आत्मा भी सत् चित् और आनन्द रूप है। हमारा लौकिक आनन्द कावरणवश सम्प्राप्त आनन्द होता है, जो कारण के समाप्त होते ही समाप्त हो जाता है। जैसे जेब में पैसे होते हैं तो मन में आनन्द रहता है और समाप्त होते ही आनन्द भी तिरोहित हो जाता है किन्तु आत्मा आनन्दरूप ही है। वह अज्ञान से उसी तरह ढँकी रहती है जैसे (विशेष प्रकार का कटोरा जैसा ढक्कन) से दीपक या धूल से शीशा ढँक जाता है इनको हटाने या साफ करने से दर्पण स्वयं प्रकाशित होता है, उसी प्रकार अज्ञान समाप्त होने पर आत्मा स्वयं आनन्द रूप हो जाती है उसका आनन्द पुनः समाप्त नहीं होता है तब वह व्यक्ति का चित्त ही स्वयं अभिव्यक्त होकर आत्मा के स्वरूप में तल्लीन हो स्वयं ही रस रूप आनन्द में आलोकित रहती है।

आचार्य भरत ने दर्शन में प्रयुक्त उपर्युक्त रस शब्द को काव्य और नाटकों से प्राप्त आनन्द को अभिहित करने के लिये प्रयुक्त किया। इसका कारण था, संसार में सभी व्यक्ति स्वार्थी होते हैं और सभी स्वयं के ही सुख–दुःख में हसते या रोते हैं। किन्तु काव्य या नाटक में ऐसी क्षमता होती है कि वह व्यक्ति को पराये सुख–दुःख से संवेदनायुक्त करता है। इसका अर्थ है कि काव्य व्यक्ति को सांसारिक स्वार्थ–भावना की परिधि से ऊँचा उठाकर कुछ समय के लिये आत्मा के आनन्द को उसकी अनुभूति का विषय बना देता है। किसी भी कलात्मक माध्यम से प्राप्त इस लोक–निरपेक्ष, स्वार्थ भावना से परे उत्पन्न आनन्द को भरत तथा परवर्ती साहित्य आचार्यों ने 'रस' संज्ञा से अभिहित किया है। इस प्रकार 'रस' वह आनन्द है, जिसकी अनुभूति व्यक्ति किसी कलात्मक कार्य में तल्लीन होकर प्राप्त करता है। काव्यानुशीलन एवं तन्मयता से उत्पन्न आनन्द का नाम ही 'रस' है। रस ऐकोतिक आनंदमय होता है। सुख एवं दुख में आनंद प्राप्त होता है।

विभाव अनुभाव और संचारी भाव – रस की सम्पूर्ण रूप से निष्पत्ति कैसे होती है? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यों का मत है कि व्यक्ति चेतना में निष्पन्न स्थायी भाव ही सत्योद्रेक से जागृत होकर रस–रूप में परिणत होकर अनुभूति या आस्वाद का विषय बनते हैं।

10.9.2.1 स्थायी भाव

व्यक्ति की चेतना में स्थायी रूप से रहने वाले कुछ भाव होते हैं। ये भाव व्यक्ति के अवचेतन में सुषुप्त रूप से रहते हैं और बाहर किसी कारण उपस्थित होते ही जागृत हो जाते हैं और मनुष्य की सम्पूर्ण चेतना को अविच्छिन्न कर लेते हैं। जैसे 'रति' मनुष्य की चेतना में रहने वाला स्थायी भाव है। व्यक्ति जैसे ही किसी सुन्दर युवती को देखता है तो उसके मन का यह स्थायी भाव जागृत होकर उसकी सारी चेतना को आवृत कर लेता है। इसी प्रकार क्रोध एक स्थायी भाव है, जैसे ही मनुष्य किसी अनुचित कार्य को अपने सामने होते हुए देखता है तो उसका यह स्थायी भाव जागृत हो जाता है। इस प्रकार यह स्थायी भाव हमारे दैनिक जीवन में अनेक बार जागृत और तिरोहित होते हैं। काव्य पढने, सुनने या नाटक देखने से भी ये भाव जागृत होते हैं, किन्तु सामान्य जीवन में जागृत हुए स्थायी भाव और कलात्मक माध्यम से जागृत हुए स्थायी भाव सदैव ही आनन्द देने वाले होते हैं। किन्तु लौकिक जीवन में अद्भूत हुए स्थायी भाव सदैव सदैव आनन्ददायक नहीं होते हैं। जैसे सामान्य जीवन में यदि किसी के प्रिय व्यक्ति की मृत्यु हो जाये तो व्यक्ति का शोक स्थायी भाव जागृत हो जाता है और वह दुःख में डूब जाता है किन्तु काव्य या नाटक में किसी प्रिय व्यक्ति का दुःखी होता हुआ दृष्टा विचित्र आनन्द प्रदान करता है। इसीलिये लोग दुःखान्त नाटकों या उपन्यासों को बार–बार पढते हैं। व्यक्ति के अवचेतन में अनिवार्य रूप से रहने वाले ये स्थायी भाव संख्या में नौ माने गये हैं –

'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायी भावाः प्रकीर्तिताः।।'

अर्थात् रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय ये स्थायी भाव कहलाते हैं। शान्त को भी रस मानते हैं। इसका निर्वेद भी स्थायी भाव है। इन स्थायी भावों पर आधारित नौ रस निम्नलिखित हैं –

स्थायी भाव	रस
1. रति	शृंगार रस
2. हास	हास्य रस
3. शोक	करुण रस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. क्रोध	रौद्र रस
5. उत्साह	वीर रस
6. भय	भयानक रस
7. जुगुप्सा	वीभत्स रस
8. विस्मय	अद्‌भुत रस
9. निर्वेद	शान्त रस

स्थायी भाव के जाग्रत होने और उसके रस रूप में परिणत होने तक की प्रक्रिया में विभाव अनुभाव और संचारी भावों का उपयोग और प्रदर्शन होता है। इस संदर्भ में काव्य प्रकाश सृजनकर्त्ता मम्मट का यह वक्तव्य स्मरणीय है –

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनों लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचरिणः।
व्यक्तः स तैः विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।।

अर्थात् सामान्य लोक जीवन में जो कारण उनके कार्य और सहकारी कारण होते हैं, काव्य और नाट्य में वर्णित होने पर ही वे क्रमशः विभाव, अनुभाव और संचारीभाव कहलाते हैं। इनके द्वारा अभिव्यक्त वासना रूप स्थायी भाव ही 'रस' कहलाते हैं।

(विद्यार्थीगण कृपया ध्यान दें – आचार्य मम्मट का प्रस्तुत श्लोक स्थायी रूप से याद कर लेना चाहिये।)

10.9.2.2 विभाव

जैसाकि स्पष्ट किया गया है – विभाव अवचेतन के स्थायी भाव को जागृत करने में कारण रूप होते हैं। सामान्य जीवन में जब कोई पुरुष किसी सुन्दर युवती के मुख, स्तन, नितम्ब आदि को देखकर प्रभावित होता है तो उसके अवचेतन में स्थित रति स्थायी भाव जागृत हो जाता है। ठीक यही स्थिति यदि काव्य के माध्यम से घटित होती है तो सौन्दर्य से युक्त युवती आलम्बन विभाव कहलायेगी और उसके सौन्दर्य से जिसके मन में रति स्थायी भाव जागेगा, वह नायक आश्रय कहलायेगा। आश्रय या आलम्बन के मन जगे स्थायी भाव को पुष्ट और घनीभूत करने वाले उपादान उद्दीपन भाव कहलायेंगे। नायक–नायिका का एकान्त मिलन, चन्द्रिका, उपवन, अनुकूल वातावरण एवं नायिका द्वारा नायक को आकर्षित करने वाली चेष्टायें जैसे – आँखों में रति भाव, अंग प्रत्यंगों का स्पर्श या प्रदर्शन उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं जैसे –

'भौहनु त्रासति, मुंह नटति आंखिन सों लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करुं, इंची आगे आवत जाति।।'

नायिका का नायक को भौंहों से डराना, मुँह से ना ना करना किन्तु आँखों से लिपट जाने की ललक का प्रदर्शन करना। एक ओर हाथ छुड़ाने की कोशिश करना और दूसरी ओर अपने आप ही आगे आकर शरीर से छूने का प्रयास करना आदि नायिका की सभी क्रियाएँ (अनुभाव) नायक के मन में जागृत रति भाव को और उद्दीप्त करते हैं। इसी कारण ये सभी क्रियाएँ या कारण नायिकागत उद्दीपन विभाव कहलायेंगे।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि विभाव स्थायी भाव के जागृत होने के कारण रूप होते हैं, इसके दो भेद होते हैं –

(1) आलम्बन विभाव – वह पात्र या नायक, जिराके आश्रय रो स्थायी भाव जाग्रत हो।
(2) उद्दीपन विभाव – आलम्बन की वे चेष्टाएँ अथवा ऋतु सौन्दर्य, उपवन, एकान्त तथा नायिका द्वारा अंग–प्रत्यंगों की चेष्टाएँ जिसके कारण आश्रय की चेतना का जागृत भाव और अधिक उद्दीप्त हो उठता है।

10.9.2.3 अनुभाव

आचार्य मम्मट की परिभाषा के अनुसार स्पष्ट है कि अनुभाव विकास से उद्दीप्त स्थायी भाव के परिणामस्वरूप होते हैं। व्यक्ति के हृदय में जब कोई भाव उत्पन्न होता है तो उसके विकास या चिन्ह उसके शरीर में व्यक्त हो जाते हैं। जैसे अपने प्रियतम को समक्ष पाकर नायिका को रोमांच हो उठता है। उसकी काया स्वेद से सिक्त हो उठती है शरीर में कम्पन का भाव उत्पन्न होने लगता है। लज्जा से चेहरा लाल हो उठता है। ये सभी अनुभाव हैं। इसी प्रकार

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शत्रु को समक्ष देखकर वीर पुरुष का चेहरा लाल हो जाता है। प्रोषित पतिका नायिका अपने प्रियतम के आने की खबर सुनते ही आनन्द का अनुभव करने लगती है। बिहारी ने उसे स्पष्ट करते हुए लिखा है –

कहि पठई जिय–भावती, प्रिय आबन की बात।
फूली आंगन में फिरै, अंग न अंग समान।।

10.9.2.4 संचारी भाव

उद्भावित स्थायी भाव की अल्प समय की सहायता कर तिरोहित होने वाले भावों को संचारी भाव कहते हैं। ये जब सामान्य लोक जीवन में घटते हैं तो ये व्यभिचारी नहीं कहलाते हैं, किन्तु काव्य में अभिव्यक्त होकर ये व्यभिचारी कहलाते हैं। जैसे – रति स्थायी भाव से उत्पन्न शृंगार रस के प्रसंग में आनन्द से नायिका शरीर जड़ हो जाता है। रतिक्रिया से शरीर में श्रम और आलस्य का भाव आता है। वासना के आधिक्य से व्यवहार में चपलता और आवेग का समावेश हो जाता है – ये सभी जड़ता आवेग, चपलता आदि व्यभिचारी भाव हैं। ये यथार्थ जीवन में घटने वाली विभिन्न स्थितियों की काव्य में अभिव्यंजना रूप है और इसके द्वारा हृदय का कोई एक विशद या स्थायी भाव पुष्ट होता है।

संचारी भाव संख्या में तैतीस हैं – 1. निर्वेद 2. आवेग 3. दैन्य 4. श्रम 5. मद 6. जड़ता 7. उग्रता 8. मोह 9. विबोध 10. स्वप्न 11. अपस्मार 12. गर्व 13. मरण 14. अलस्य 15. अमर्ष 16. व्याधि 17. निद्रा 18. अवहित्था 19. औत्सुक्य 20. उन्माद 21. शंका 22. स्मृति 23. मति 24. त्रास 25. लज्जा 26. हर्ष 27. असूया 28. विषाद 29. वितर्क 30. धृति 31. चपलता 32. ग्लानि 33. चिन्ता।

इस प्रकार काव्य के परिशीलन अथवा नाट्य के अवलोकन–पठन से जो विशिष्ट आस्वादमय आनन्द मिलता है उसे ही हम 'रस' कहते हैं।

10.9.3 प्रमुख रस

10.9.3.1 शृंगार रस

सभी रसों में शृंगार रस को सर्वश्रेष्ठ एवं रसराज कहा जाता है। यह अतीव आनन्दमय एवं सुख रूप माना जाता है। महान काव्यशास्त्री आनन्दवर्धन ने शृंगार रस की प्रशसा करते हुए कहा है कि **'शृंगार एव मधुरः परः प्रह्लादनो रसः।'** अर्थात् शृंगार रस ही महान आनन्द प्रदान करने वाला रस है।

आलम्बन विभाव – नायम–नायिका अथवा प्रेमी–प्रेमिका।
उद्दीपन विभाव – एकान्त, वन–उपवन, चन्द्र ज्योत्सना, वसंत ऋतु, पुष्पसौरभ, नायिका का अंग सौन्दर्य।
अनुभाव – परस्परालिंगन, कटाक्ष–पात, अधरपान, चुम्बन, श्वेद आदि।
संचारी भाव – तैतीस संचारी भावों में उग्रता, मरण, आलस्य, जुगुप्सा आदि भावों को छोड़कर सभी का समावेश शृंगार रस में होता है।

शृंगार रस के भेद–शृंगार रस के दो भेद होते हैं–

1. संयोग शृंगार–इसमें नायक–नायिका के संयोग की स्थिति रहती है। इसे संभोग शृंगार भी कहते हैं। जैसे–

मसल दिये गोरे कपोल गोल,
चौक पडी युवती, चकित चितवन निज चारों फेर,
हेर प्यारे को सेज पर, नम्रमुखी हंसी खिली,
खेल प्यारे के संग।

2. वियोग शृंगार–नायक नायिका के बिछुड़ने या दूर देश में रहने की स्थिति का वर्णन वियोग शृंगार की व्यंजना करता है –

हेम पुंज हेमन्त काल के इस आतप पर वारुँ।
प्रिय स्पर्श की पुलकावलि मैं कैसे आज बिसारुँ।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस उदाहरण में वियोग की 'स्मरण' दशा की अभिव्यक्ति हुई है। विप्रलम्भ या वियोग शृंगार की दस अवस्थाएँ होती हैं – 1. अभिलाषा 2. चिन्ता 3. स्मरण 4. गुण कथन 5. उद्वेग 6. प्रलाप 7. उन्माद 8. व्याधि 9. जडता और 10. मरण। इसमें अंतिम अवस्था के स्थायी होने पर विप्रलम्भ शृंगार रस करुण रस में बदल जाता है।

10.9.3.2 हास्य रस

हास्य रस का स्थायी भाव हास है। किसी व्यक्ति विशेष की विकृत वाणी, विकृत वेश एवं चेष्टा आदि को देखकर या सुनकर हंसी उत्पन्न होती है। जहाँ पर इस प्रकार का वर्णन होता है, वहाँ पर हास्य रस होता है। इसमें विरूप पुरुष उद्दीपन विभाव, उसका गाल फुलाना आदि अनुनाव तथा अवहित्था आदि संचारी भाव होते हैं जैसे –

विन्ध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारी दुखारे।
गौतम तियतरी, तुलसी से कथा सुनि मे मुनि वृन्द सुखारे।।
व्है है सिला सब चन्द्रमुखी परसै पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हि भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे।।

10.9.3.3 करुण रस

इसका स्थायी भाव शोक है। प्रिय वस्तु के नाश व अनिष्ट की प्राप्ति से चित्त में जो विकलता आती है, उसमें नायक–नायिका आलम्बन विभाव, प्रिय वियोग उद्दीपन विभाव, अश्रुपात, दैन्य आदि अनुभाव और ग्लानि आदि संचारी भाव हैं जैसे –

फिर पीट कर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई।
कुररी सदृश करुण गिरा से दैन्य दरसाती हुई।।
बहुविध विलाप–प्रलाप वह करने लगी उस शोक में।
निज प्रिय–वियोग समान होता न कोई लोक मे।।

10.9.3.4 रौद्र रस

इसका स्थायी भाव क्रोध है। अपने विरोधी, अशुभ चिन्तक आदि की अनुचित चेष्टाओं से, अपमान से, अनिष्ट आदि कारणों से जो क्रोध उत्पन्न होता है, उसमें मात्सर्य आदि उद्दीपन विभाव, मुष्टि प्रहार आदि अनुभाव और अमर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव होते हैं। इसमें शत्रु पक्ष या विरोधी आलम्बन विभाव होता है। जैसे–

श्री कृष्ण के वचन सुन अर्जुन क्रोध से जलने लगे।
सब शोक अपना भूल करतल युगल मलने लगे।।
संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पडे।
करते हुए यों घोषणा वे हो गये उठ कर खडे।।
उस काल मारे क्रोध के तन काँपने उनका लगा।
मानो हवा के जोर से सोता हुआ सागर जगा।।

10.9.3.5 वीर रस

इसमें स्थायी भाव उत्साह है। युद्ध में विपक्षी को देखकर, ओजस्वी घोषणाएँ या वीर गीत सुनकर तथा उत्साहवर्धक कार्य–कलापों को देखकर उत्साह जागृत होता है। इसमें नायक आलम्बन विभाव प्रभाव, बल, मद आदि संचारी भाव होते हैं। आचार्यों ने वीर रस के चार भेद माने हैं– युद्ध वीर, दयावीर और धर्मवीर व दानवीर। जैसे –

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर,
रावण सदम्भ पर रघुकुल राज हैं।
पौन परिवाह पर, संभु रति नाह पर,
ज्यों सहस्त्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर
भूषण वितुण्ड जिमि कंस पर
त्यों मलेच्छ वंश पर सेर सिवराज हैं।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.9.3.6 भयानक रस

इसका स्थायी भाव भय है। सिंह, सर्प आदि हिंसक भयंकर जीव और भयंकर प्राकृतिक दृश्यों को देखकर, उसका वर्णन सुनकर भय उत्पन्न होता है। इसमें स्त्री, नीच मानव, बालक आदि आलम्बन विभाव है, व्याघ्र आदि उद्दीपन विभाव हैं, कम्पन्न आदि अनुभाव और मोह, त्रास आदि संचारी भाव हैं। जैसे –

उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग।
सोइ निसि–दिन सगवग चली जाती है।।
अति अकुलाती मुरझाती न छिपाती गात।
बात न सुहाती बोले अति अनखाती है।।
भूषण भनत बली साही के सपूत सिवा है।
तेरी धाक सुन अरि नारी बिललाती है।।
जोन्ह में न जाती वे धूपे चली जाती पुनि।
कोउ करै धाती कोउ रीती पीटि छाती है।।

10.9.3.7 वीभत्स रस

इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है। दुर्गन्धयुक्त वस्तुओं, रक्त, मांस, मृतजीव आदि को देखकर मन में घृणा होती है। इसमें दुर्गन्ध, मांस आदि आलम्बन विभाव हैं, उनमें कीड़े पड़ना उद्दीपन विभाव हैं। उद्‌वमन आदि अनुभाव, मोह आदि संचारी भाव हैं।

कहुँ सुलगति कोई चिता कहु कोउ जाति बुझाई।
एक लगाई जाति, एक की राख जाति जाति बुझाई।।
विविधि रंगाई की उठति ज्वाल दुर्गन्धित महकती।
कहुँ चरबी सों चटचटाती कहुँ दह–दह दहकती।।

10.9.3.8 अद्‌भुत रस

इसका स्थायी भाव विस्मय है। अलौकिक एवं आश्चर्यजनक वस्तुओं या घटनाओं को देखकर जो विस्मय भाव हृदय में उत्पन्न होता है, उसमें अलौकिक वस्तु आलम्बन विभाव और (इन्द्रजाल) माया आदि उद्दीपन विभाव हैं। रोमांच, नेत्र विकास आदि अनुभाव और स्तम्भ, वितर्क आदि संचारी भाव हैं। जैसे –

बिछा कार्यों का गुरुतर भार,
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
सूण्य शैया में श्रमित अपार,
जुडातीजब में आकुल प्राण,
न जाने मुझे स्वप्न में कौन,
फिराता छाया जग में मौन।

10.9.3.9 शान्त रस

इसका विषय वैराग्य एवं स्थायी भाव निर्वेद है। संसार की अनित्यता एवं कष्टों की अधिकता को देखकर मन में विरक्ति उत्पन्न होती है। सांसारिक अनित्यता दर्शन आलम्बन और सत्संगति उद्दीपन विभाग, क्षमा अनुभाव और स्तम्य, मति आदि संचारी भाव हैं। साहित्य दर्शन में स्थायी भाव 'शम' बतलाया है। जैसे –

हरि बिन कोउ काम न आवै।
यह माया झूँठी प्रपंच लगि रतन सौं जनम गवायौ।
कंचन कलस विचित्र चित्र करि रचि पचि भवन बनायौ।।
तामे ते तिन्ह छिन ही बाढ़यो पल भर रहन न पायौ।
तेरे संग जरौंगो यह कहि त्रिया धूत धनि खायौ।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.9.3.10 वात्सल्य रस

इसका स्थायी भाव 'वत्सल' है। इसमें अबोध शिशु आलम्बन विभाव, उसकी बाल चेष्टाएँ उद्दीपन और उसके मासूम शरीर के प्रति स्नेह अनुभाव तथा उसकी मति, चपलता आदि संचारी भाव होते हैं। माता–पिता के मन में संतान के प्रति स्नेह का भाव इसमें मुख्यतः रहता है। सूरदास इस रस के सम्राट माने जाते हैं। यथा –

मीठे मेवे मृदुल नवनीत और पकवान नाना
धीरे हाथों सहित सुत को कौन होगी खिलाती।
प्रातः बीता सुपय कजरी गाय का चाव से था
हा! पीता है न अब इसको प्राण प्यारा हमारा।।

इस प्रकार सभी रसों की सोदाहरण पुष्टि की गई है।

स्वयं अध्ययन के प्रश्न
एक वाक्य में उत्तर लिखिए–

1. रस के अंगों के नाम लिखिए।
2. श्रृंगार रस का स्थायी भाव क्या है?
3. रस को अलौकिक आनन्द क्यों माना गया है?
4. संचारी भावों की संख्या कितनी है?
5. वात्सल्य रस का सम्राट किसे कहा है?

10.10 अलंकार

भावाभिव्यक्ति को सहज तरंगों द्वारा ही अनादिकाल से अलंकारों का अनायास प्रयोग होता आया है। भारतीय वाङ्मय में वैदिक साहित्य में अलंकारों का स्वतः ही प्रयोग हुआ है और उसमें कई स्थानों पर तो अर्थालंकारों की सुन्दर योजना दिखाई देती है। उपनिषद् साहित्य में भी उपमा तथा रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। इस तरह वैदिक साहित्य में अलंकारों का प्रयोग भावाभिव्यक्ति के लिये होता था किन्तु उस समय उनका शास्त्रीय दृष्टिकोण नहीं था।

यास्क ने सर्वप्रथम निरूक्त में अलंकारों के पांच भेद – कर्मोपमा, भूतोपमा, सिद्धोपमा, अर्थोपमा व लुप्तोपमा नाम से स्पष्ट किये हैं। इस प्रकार ईसा से 500 वर्ष पूर्व गार्ग्य और यास्क ने अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन प्रारम्भ कर दिया था। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में उपमा, उपमान, उपमित और सामान्य जैसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर उपमा के चारो अंगों का वर्णन किया। इस प्रकार इस परम्परा का अनुकरण कात्यायन तथा पातंजलि ने भी किया और 'गौरिव गवयः' आदि उदाहरण भी दिये गये।

10.10.1 आचार्य भरत के द्वारा अलंकार निरूपण

साहित्यशास्त्र में अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन सर्वप्रथम भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में किया गया। नाट्यशास्त्र के सत्रहवें अध्याय में नाटक के प्रसंग में केवल उपमा, रूपक, दीपक और यमक इन चार अलंकारों का निरूपण किया गया और इन्हें वाचिक अभिनय का एक अंग (सहायक तत्त्व) माना गया।

10.10.2 भामह का काव्यालंकार

भरत मुनि के बाद भामह के 'काव्यालंकार' में अलंकारों का विस्तृत विवेचन मिलता है। भामह को ही अलंकार सम्प्रदाय का प्रवर्तक तथा प्रथम आचार्य मानने का कारण भी यही है कि इन्होंने श्रव्य काव्य का विवेचन करते हुए अलंकारों का बड़ा ही सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक विवेचन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि भामह से पूर्व भी कोई अलंकार शास्त्र था जो कि कालान्तर में लुप्त हो गया। क्योंकि भामह ने 'मेधाविन्' नामक आचार्य का अलंकारों के विवेचन में सम्मान के साथ उल्लेख किया है।

भामह ने कुल 38 अलंकार माने हैं और वक्रोक्ति को सभी अलंकारों का जीवन माना है। अलंकार को काव्य का प्रधान अंग मानते हुए भामह ने रस और भाव का भी उसी में समावेश किया है। वक्रोक्ति को काव्य का प्राण स्वीकार कर सूक्ष्म, हेतु और श्लेष को अलंकार नहीं माना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.10.3 भामह की परवर्ती परम्परा

भामह के पश्चात् आचार्य दण्डी ने अलंकार शास्त्र को परिपुष्ट किया। उन्होंने **'काव्य शोभाकरान धर्मान अलंकारान प्रचक्षते'** कहकर अलंकार को काव्य का शोभावर्धक धर्म कहा है। दण्डी ने कुल 35 अलंकार स्वीकार किये हैं तथा वक्रोक्ति के साथ पर अतिशयोक्ति को काव्य का प्रधान तत्त्व माना है। भामह और दण्डी का अभिप्रायः केवल शब्दगत चमत्कार को श्रेष्ठता प्रदान करना रहा है, तत्पश्चात् आचार्य उद्भट, रुद्रट और वामन ने अलंकारों का विवेचन विस्तार से करने का प्रयास किया, उसमें भी रुद्रट का अलंकार सम्प्रदाय को विशेषः योगदान रहा। इसके बाद भोजराज और मम्मट ने अलंकारों का परिवर्धन कर रुद्रट के समय में प्रचलित 50 अलंकारों से उसकी संख्या 70 या 62 की। मम्मट ने 6 शब्दालंकार तथा 64 अलंकार मानें हैं। तत्पश्चात् रुय्यक, भग्भट्ट, अमरचन्द, देवेश्वर, विश्वनाथ, केशव मिश्र, कवि कवर्णपूर, आशाधर भट्ट, विश्वेश्वर आदि अनेक आचार्यों ने अलंकार विषयक ग्रन्थों की रचनाकर उस सम्प्रदाय को परिपुष्ट किया। जयदेव ने 'चन्द्रालोक' में तथा अप्पय दीक्षित ने 'कुवलयानन्द' में इन सभी आचार्यों के द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण को नये ढंग से उपस्थित कर शताधिक अलंकारों के लक्षण उदाहरण दिये।

इस प्रकार अलंकार सम्प्रदाय का उत्तरोत्तर विकास होने पर इसे धरोहर के रूप में हिन्दी के आचार्यों ने भी अपना लिया। हिन्दी के सभी आचार्यों ने उस परम्परा का अनुकरण करते हुए अलंकारों के समान लक्षण उदाहरण दिये हैं।

10.10.4 अलंकार का स्वरूप विवेचन

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रारम्भिक काल में अलंकार शब्द का प्रयोग केवल शब्द और अर्थ के चमत्कार विधायक काव्य–तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया। आचार्य दण्डी ने 'काव्य की शोभा के विधायक धर्म' को अलंकार कहकर इसके काव्यपक्षीय महत्त्व का संवर्धन किया तो आचार्य वामन ने काव्य के अलंकार से ही ग्राह्य माना और काव्यगत सौन्दर्य तत्त्व को अलंकार स्वीकार किया गया। इस प्रकार प्रारम्भ से लेकर वामनाचार्य तक अलंकार का काव्य के चारुत्व प्रकाशन में अतिशय महत्त्व स्वीकार किया गया, किन्तु आचार्य आनन्दवर्धन और मम्मटाचार्य ने अलंकार को काव्य का बाह्य एवं अस्थिर धर्म माना और काव्य में रसोत्कर्ष होने पर अलंकार की उपयोगिता को कम बताया। इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र में अलंकार को काव्य का शब्दार्थगत चमत्कारवर्धन करने वाला अनित्य धर्म मानकर रस या ध्वनि–सिद्धान्त के सम्मुख इसका कम ही महत्त्व प्रतिपादित किया है क्योंकि रस या व्यंग्यार्थ काव्य का सौन्दर्य स्वाभाविक है, इससे काव्य आस्वाद बनता है जबकि अलंकार तो मात्र बाहरी तत्त्व है। यदि आत्म तत्त्व रस या व्यंग्य है तो काव्य की शोभा उससे स्वतः हो जायेगी। यदि नायिका स्वभाव व चरित्र से सुन्दरी है तो उसके सौन्दर्य वृद्धि के लिये अलंकारों की आवश्यकता नहीं है। वैसे भी अधिक अलंकार तो काव्य के स्वरूप को विकृत ही करते हैं।

अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति – अलम् धातु से अलंकार शब्द बना है। सौंदर्य विधायक तत्त्व ही अलम है। 'अलम्' का आशय पर्याप्त या विशिष्ट भाव से है। इस विशिष्ट भाव से सम्मानित तत्त्व ही अलंकार है। व्याकरणशास्त्र के अनुसार अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति दो रूपों में की है –

(1) अलंकरोतीति अलंकारः – अर्थात् जो काव्य आदि को सुशोभित करता है, अतः शोभा बढ़ाने में सहायक होता है, वह अलंकार है।

(2) अलंक्रियतेऽनेनेति अलंकारः – अर्थात् जिसके द्वारा कोई सुशोभित होता है। अतः शोभा बढ़ाने वाला साधन अलंकार और उसकी शोभा बढ़ाई जाये वह 'अलंकार्य' है।

इन दोनों व्युत्पत्तियों में सामान्य अन्तर यह है कि एक व्युत्पत्ति में साक्षात् शोभावर्धक धर्म अलंकार माना गया है, जबकि दूसरी व्युत्पत्ति में अलंकार केवल शोभाजनक साधन रह जाता है। वर्तमान में दूसरी व्युत्पत्ति वाला अर्थ ही घटित होता है। क्योंकि अलंकार मात्र काव्य की शोभा बढाने वाला साधन है। वह शब्द व अर्थ के द्वारा काव्य का सौन्दर्य बढ़ाने वाला सौन्दर्यवर्धन अस्थिर धर्म है। रस तथा गुण काव्य के सहज व अनिवार्य तत्त्व है, परन्तु अलंकार के बिना भी उत्तम काव्य में चमत्कार की कमी नहीं आती है। इसलिये अलंकार काव्य सौन्दर्य में चमत्कारोत्पादक बाह्य तत्त्व के रूप में ही सर्वमान्य है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10.10.5 रीति काव्य परम्परा में अलंकार

पहले अलंकार शास्त्र का जो विवेचन किया गया है, उसमें रीतिकालीन कवि आचार्य अत्यधिक प्रभावित रहे। रीतिकालीन परम्परा में तीन सम्प्रदाय अधिक प्रचलित रहे – रस सम्प्रदाय, अलंकार सम्प्रदाय और पिंगल शास्त्रीय सम्प्रदाय। रीतिकालीन आचार्यों ने अलंकारों का स्वरूप निर्धारित संस्कृत आचार्यों के अनुसरण पर किया है। उन्होंने चमत्कार को काव्य का प्रमुख तत्त्व माना है। इस कारण रस के साथ ही अलंकार चित्रण के प्रति अपना मोह प्रकट किया है। ऐसे रीतिसिद्ध व रीतिबद्ध कवियों ने नायिका भेद एवं नख–शिख वर्णन के साथ ही अलंकारों को प्रमुखता से विवेचित किया है। इसी कारण रीतिकाल के कवि–आचार्यों को चमत्कारवादी कहा गया है। इनकी अलंकारवादी चेतना का पता आचार्य केशव के इस कथन से चल जाता है –

जदपि सुजान सुलच्छिनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न विराजई, कविता वनिता मित्र।।

इस कथन से स्पष्ट होता है कि कोरा पाण्डित्य प्रदर्शन, दरबारी चकाचौंध एवं शृंगार विलास से रीतिकालीन आचार्य सरस काव्य को भी चमत्कारवादी दृष्टिकोण से देखते रहे हैं और अलंकार कासे ही काव्य का व्यापक तत्त्व मानते हैं।

10.10.6 हिन्दी रीति काव्यों में अलंकारों का वर्गीकरण

हिन्दी रीति काव्यों में अलंकारों का वर्गीकरण संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार होता है। इस दिशा में सर्वप्रथम आचार्य केशव ने प्रयास किया। उन्होंने सम्पूर्ण अलंकारों को सर्वप्रथम सामान्य अलंकार वर्ग और विशेष अलंकार वर्ग में विभक्त किया। पुनः विशेषालंकार वर्ग के आठ उपवर्ग किये केशव ने किसी वर्ग को कोई नाम नहीं दिया और न कोई आधार ही बनाया। जैसे – 'कविप्रिया' के बारहवें 'प्रभाव' में केशव ने वक्रोक्ति, अन्योक्ति आदि पाँच अलंकारों को एक साथ रखा, किन्तु इसका कोई आन्तरिक उद्देश्य नहीं बताया। केशव ने आक्षेप, उपमा, यमक और चित्रालंकारों का वर्णन एक–एक प्रभाव में विस्तार से किया किन्तु अपने वर्गीकरण का कोई विशेष सिद्धान्त नहीं बताया।

भिखारीदास ने केशव की अपेक्षा अलंकारों का वर्गीकरण बडी मौलिकता से किया। उन्होंने 96 अलंकारों को 11 वर्गों में विभाजित किया है तथा प्रत्येक वर्ग का नाम प्रथम वर्णित अलंकार के नाम के साथ रखा है – यथा उपमावर्ग, उत्प्रेक्षावर्ग, स्वभावोक्तिवर्ग आदि। भिखारीदास के बाद ब्रजरत्न ने अलंकारों का वर्गीकरण किया है। इन सभी का वर्गीकरण संस्कृताचार्य रुय्यक या आचार्य दण्डी के अनुकरण पर ही दिखाई देता है। 'भाषा भूषण' ग्रन्थ में अलंकारों का सादृश्य के आधार पर वर्गीकरण दिखाया है।

संक्षेप में संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकरण पर रीतिकालीन आचार्यों ने अलंकारों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूपों में प्रस्तुत किया है जिनको केवल नामोल्लेख के साथ स्पष्ट किया जा रहा है –

(1) साधर्म्य वाच्यौपम्यमूलक – इस वर्ग के दो उपभेद माने गये हैं सादृश्य वर्णन में भेद प्रधानता तथा अभेद प्रधानता रहती है। उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, स्मरण, प्रतीप अलंकार की गणना भेदाभेद प्रधान वर्ग में होती है। रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रान्तिमान, उल्लेख, अपवृत्ति, उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति की गणना अभेद प्रधान वर्ग में होती है।

(2) साधर्म्य गम्यौपम्यमूलक – इसमें सादृश्य वर्णन व्यंग्य रूप में रहता है। तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तुपमा, दृष्टान्त, निदर्शना आदि अलंकार इस वर्ग में आते हैं।

(3) विरोधमूलक अलंकार – इनका मुख्य लक्ष्य विरोधात्मक वर्णन करना है – विभावना, अतद्गुण, विशेष, भावित, असंगति और विशेषोक्ति आदि अलंकार इस वर्ग में आते हैं

(4) शृंखलामूलक अलंकार – एक के बाद एक क्रम में गुम्फित वर्णन वाले अलंकारों को इस वर्ग में रखा है। यथा – कारणमाला, एकावली, मालादीपक और सार अलंकार।

(5) तर्कन्यायमूलक अलंकार – तर्क और न्याय के आधार पर स्वीकृत सत्य को वर्णन करने वाले अलंकार इस वर्ग में आते हैं – अनुमान, काव्यलिंग और अर्थान्तरन्यास अलंकार।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(6) वाक्य न्यायमूलक अलंकार – इस वर्ग में यथा संख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, अर्थापत्ति, विकल्प, समुच्चय, समाधि आदि अलंकारों को लिया गया है।

(7) लोक न्याय मूलक अलंकार – इस वर्ग में प्रत्यनीक, सामान्य तद्गुण, उत्तर और अतद्गुण अलंकारों की गणना होती है। इसमें लोक व्यवहार में प्रचलित प्रयोग या लोक न्याय पर आधारित वर्णन का समावेश होता है।

(8) गूढार्थ प्रतीतपरक अलंकार – इस वर्ग में सूक्ष्म व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त, सहोक्ति युक्ति, विवृतोक्ति आदि का समावेश किया गया है। इसमें अलंकार के माध्यम में गूढार्थ का प्रकशन होता है।

इस प्रकार संस्कृत की परम्परा के अनुकरण पर रीति काव्य परम्परा में अलंकारों का आठ प्रकार के वर्गों में विभक्त किया है।

10.10.7 सारांश

हम कह सकते हैं कि संस्कृत काव्यशास्त्र में अलंकार सम्प्रदाय का जो महत्त्व माना गया है उसको उससे भी अधिक आग्रह के साथ हिन्दी के रीतिकालीन कवि आचार्यों ने अपनाया है।

10.10.8 अभ्यास प्रश्नावली

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में लिखिए–

1. अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति लिखिए।
2. आ. भामह ने किस संप्रदाय का प्रवर्तन किया?
3. काव्य के शोभा विधायक धर्म कथन किसका है।
4. आ. केशव ने अलंकारों के संबंध में क्या कहा है?
5. एक शब्दालंकार कानाम तथा उदाहरण लिखिए।

❑❑❑

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. रीति

स्वय अध्ययन के प्रश्न के उत्तर–

एक वाक्य में उत्तर

1. रीति शब्द की व्युत्पत्ति रीड्. धातु से हुई है।
2. आचार्य भरत ने रीति के लिए 'प्रवृत्ति' शब्द का प्रयोग किया है।
3. रीतियां चार हैं–1. आवन्ति 2. दक्षिणात्मा 3. औड्रमागधी 4. पांचाल
   दाक्षिणात्य को वैदर्भी औड्रमागधी को गौडी आवन्ति को पांचाली और लाट प्रदेश की लटियां मानी गयी है।
4. बिहारी भट्ट ने रीति के संदर्भ में यह लिखा कि–
   कविता में पद अर्थ की संघटना अति होय।
   तौन सरस समुदाय को रीति कहत कवि लोय।।

रिक्त स्थानों की पूर्ति –

1. आचार्य वामन
2. वैदर्भी
3. कविप्रिया
4. स्टाइल (शैली)
5. स्वन 1700 ये 1800

2. नायक

1. क 2. ख 3. ग 4. क 5. क

3. नायिका

1. भरतमुनि ने नायिका के नौ भेद माने हैं।
2. धनंजय की रचना दशरूपक है।
3. नायिका के अवस्थागत भेद हैं।
4. पति का अपमान करने के पश्चात जो अपने किये पर पुनः खेद प्रकट करती है उसे कलहान्तरिता नायिका कहते हैं। पद्माकर के मत से –
   प्रथम कछु अपमान करि पिय को फिर पछताय।
5. स्वकीया नायिका नायक की पत्नी होती है तो परकीया गुप्त रूप से प्रेम रखनेवाली होती है।

4. रस

1. स्थायीभाव, विभाव, संचारीभाव और अनुभाव रस के अंग है।
2. श्रृंगार रस का स्थायीभाव रति है।
3. रसनिष्पति साधारणीवृत दशा में और आनंदमय होती है यह सत्वोद्रेक से उत्पन्न आनंद है इसलिए रस को अलौकिक आनद कहा गया है।
4. संचारी भावों की संख्या तैंतिस है।
5. वात्सल्य रस का सम्राट सूरदास को कहा गया है।

5. अलंकार

1. अलंकार शब्द 'अहम्' धातु से बना है।
2. आ. भामह ने अलंकार संप्रदाय का प्रवर्तन किया।
3. आ. दण्डी का कथन है।
4. जदपिजाति सुलच्छनी सुबरम सरस सुवृत भूषण बिनु न राजई कविता बनिता मित्र।
5. अनुप्रास उदा. कपट–कपाट (बिहारी)

अतिरिक्त अध्ययन :

1. डा. देशराज सिंह भाटी–भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र
2. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त–भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त
3. डॉ. जगदीशप्रसाद कौशिक–भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमान
4. डॉ. सुरेश माहेश्वरी एवं डॉ. तिवारी सुगम काव्यशास्त्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातक (बी.ए.) द्वितीय वर्ष

विषय : हिन्दी साहित्य

प्रथम पत्र : रीतिकालीन काव्य साहित्य

संवर्ग

संवर्ग– 1 रीतिकालीन काव्य का इतिहास, केशवदास
संवर्ग– 2 बिहारी, घनानन्द
संवर्ग– 3 देव, सेनापति
संवर्ग– 4 भूषण, मतिराम
संवर्ग– 5 वृन्द, रीतिकालीन काव्य परम्पराओं एवं धाराओं से संबंधित प्रश्नोत्तर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. नन्दलाल कल्ला**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

2. **प्रो. वेदप्रकाश शर्मा**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज)

3. **प्रो. जगमालसिंह**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   मेघालय विश्वविद्यालय, मेघालय (आसाम)

4. **डॉ. ममता खाण्डल**
   सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग,
   राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ़, (राज.)

5. **प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी**
   निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
   जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

6. **प्रो. समणी ऋजुप्रज्ञा**
   आचार्या, जैन विश्वभारती संस्थान,
   लाडनूँ (राज.)

लेखक

कैलाश भट्ट 'आकाश'

संपादक

प्रोफेसर नन्दलाल कल्ला

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 700

प्रकाशक

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341 306 (राज.)

Printed at

M/s Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	**रीतिकालीन काव्य का इतिहास** (नामकरण, सीमा निर्धारण, प्रमुख प्रवर्तक, प्रेरक परिस्थितियाँ, प्रमुख कवि, प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख विशेषताएँ)	1–19
2.	**केशवदास** (कवि परिचय, प्रमुख व्याख्याएँ, काव्यगत विशेषताएँ और महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर)	20–44
3.	**बिहारी** (कवि परिचय, महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	47–77
4.	**घनानन्द** (कवि परिचय, महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	78–101
5.	**देव** (कवि परिचय, महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	102–123
6.	**सेनापति** (कवि परिचय, महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	124–144
7.	**भूषण** (कवि परिचय, महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	145–160
8.	**मतिराम** (कवि परिचय, महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	161–174
9.	**वृन्द** (कवि परिचय, महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	175–187
10.	**रीतिकालीन काव्य परम्पराओं एवं धाराओं से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर** (नायक–नायिका भेद, रस निष्पत्ति तथा अलंकार सम्प्रदाय)	188–208

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun